

Visit

**Dwarkadheeshvastu.com**

For

**FREE**

**Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos  
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers**

\*\*\*\*

All Music is also available in **CD** format. **CD Cover** can also be print with your Firm Name

\*\*\*\*

We also provide this whole Music and Data in **PENDRIVE** and **EXTERNAL HARD DISK**.

Contact : Ankit Mishra ( +91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com )

# **Adhyatma-Ramayan**

# **Hindi**

श्रीहरि:

## विषय-सूची

+—————+

| संग  | विषय        | पृष्ठ | संग  | विषय  | पृष्ठ       |     |
|--|-------------|-------|--|---|-------------|-----|
| १-माहात्म्य  | ... ... ... | ३०    | रा   | ६-भगवान् राम और भरतका मिलन, भरतजीका अयोध्यापुरीको लौटना और श्रीरामचन्द्रजीका अतिमुनिके आश्रमपर जाना | ६२          |     |
| वालकाण्ड   |             |       |  | अरण्यकाण्ड  |             |     |
| १-रामहृदय  | ... ... ... | ३     | १-विराग्र-वध   | ... ... ...   | १०३         |     |
| २-भारपीडिता पृथिवीका ब्रह्मादि देवताओं-<br>के पास जाना और भगवान् का उनकी<br>प्रार्थनासे प्रकट होकर उन्हें धैर्य वंधाना               | ... ...     | ६     | २-शरभंग तथा सुतीक्ष्ण आदि मुनीश्वरों-<br>से भेंट                             | ... ... ...   | १०७         |     |
| ३-भगवान् का जन्म और वाल-लीला   | ... ...     | १२    | ३-मुनिवर अगस्त्यजीसे भेंट  | ... ... ...   | १११         |     |
| ४-विश्वामित्रजीका वागमन; राम और<br>लक्ष्मणका उनके साथ जाना और<br>ताटकाका वध करना   | ... ...     | १८    | ४-पञ्चवर्दीमें निवास और लक्ष्मणजीको<br>उपदेश                                 | ... ... ...   | ११६         |     |
| ५-मारीच और सुवाहुका दमन तथा<br>अहल्योद्धार   | ... ...     | २१    | ५-शूर्पणखाको दण्ड, खर आदि राधासों-<br>का वध और शूर्पणखाका रावणके<br>पास जाना | ... ... ...   | १२०         |     |
| ६-धनुभंड और विवाह  | ... ...     | २७    | ६-रावणका मारीचके पास जाना  | ... ... ...   | १२६         |     |
| ७-परशुरामजीसे भेंट   | ... ...     | ३३    | ७-मारीचवध और सीताहरण   | ... ... ...   | १२६         |     |
| अयोध्याकाण्ड   |             |       |  | ८-सीताजीके वियोगमें भगवान् रामका<br>विलाप और जटायुसे भेंट   | ... ... ... | १३५ |
| १-भगवान् रामके पास नारदजीका आना  | ... ...     | ४१    | ९-कवन्धोद्धार  | ... ... ...   | १४०         |     |
| २-राज्यामिषेककी तैयारी तथा वसिष्ठजी<br>और रघुनाथजीका संवाद   | ... ...     | ४४    | १०-शवरीसे भेंट   | ... ... ...   | १४५         |     |
| ३-राजा दशरथका ईक्षेयीको वर देना  | ... ...     | ५१    |  |   |             |     |
| ४-भगवान् रामका मातासे विदा होना<br>तथा नीता और लक्ष्मणके सहित<br>यन्नगमनकी तैयारी करना   | ... ...     | ५८    |  |   |             |     |
| ५-भगवान् का यन्नगमन  | ... ...     | ६५    |  |   |             |     |
| ६-गंगोत्तरण तथा भरद्वाज और<br>वालमीकिजीसे भेंट   | ... ...     | ७०    |  |   |             |     |
| ७-खुमन्त्रका प्रत्यागमन, राजा दशरथका<br>स्वर्गवास तथा भरतजीका ननिहालसे<br>आना और वसिष्ठजीके आदेशसे<br>पिताका अन्त्येष्टि-संलकार करना | ... ...     | ७८    |  |   |             |     |
| ८-भरतजीका वनको प्रख्यान, मार्गमें गुह<br>और भरद्वाजजीसे भेंट तथा चित्रकूट-<br>दर्शन  | ... ... ... | ८७    |  |   |             |     |

| सर्ग   | विषय    | पृष्ठ | सर्ग  | विषय    | पृष्ठ |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
|--|---------|-------|---|---------|-------|--|---------|-----|---|---------|-----|--------------------------------|---------|-----|---|---------|-----|---|---------|-----|---|---------|-----|-----------------------------------|-----|--|---------|-----|-----------|---------|-----|----------------|---------|-----|--|---------|-----|
| ७-वानरोंका प्रायोपवेशन और सम्पाति-से भेट   | ... ... | १८८   | ६-मैत्रनाद-वध   | ... ... | २७६   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ८-सम्पातिकी आत्मकथा  | ... ... | १६३   | १०-रावणका यज्ञ-विघ्नवंस तथा उसका मन्दोदरीको समझाना  | ... ... | २८२   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ९-समुद्रोलहूनकी मन्त्रणा   | ... ... | १६७   | ११-राम-रावण-संग्राम और रावणका वध  | ... ... | २८७   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| <b>सुन्दरकाण्ड</b>   |         |       |   |         |       |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| १-हनुमानजीका समुद्रोलहून और लंका-प्रवेश  | ... ... | २०३   | १२-विभीषणका राज्याभिषेक और सीताजीकी अग्नि-परीक्षा   | ... ... | २९४   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| २-हनुमानजीका वाटिकामें जाना तथा रावणका सीताजीको भय दिखलाना                                 | ... ... | २०८   | १३-देवताओंका भगवान् रामकी स्तुति करना, सीताजीसहित अग्निदेवका प्रकट होना, व्योध्याके लिये प्रस्थान | ... ... | ३०१   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ३-जातकीजीसे भेट, वाटिका-विघ्नवंस और ब्रह्मपाश-बन्धन  | ... ... | २१३   | १४-अयोध्या-यात्रा, भरहाज मुनिका आतिथ्य तथा भरत-मिलाप  | ... ... | ३०७   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ४-हनुमान् और रावणका संवाद तथा लङ्घादहन   | ... ... | २२०   | १५-श्रीराम-राज्याभिषेक  | ... ... | ३११   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ५-हनुमानजीका सीताजीसे विदा होना और श्रीरामचन्द्रजीको उनका सन्देश सुनाना                    | ... ... | २२६   | १६-वानरोंकी विदा तथा ग्रन्थप्रशंसा  | ... ... | ३२२   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| <b>युद्धकाण्ड</b>  |         |       |   |         |       |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| १-वानर-सेनाका प्रस्थान   | ... ... | २३३   | <b>उत्तरकाण्ड</b>   |         |       |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| २-रावणद्वारा विभीषणका तिरस्कार   | ... ... | २३७   | ३-विभीषणकी शरणागति, समुद्रका त्रास तथा सेतु-बन्धका आरम्भ  | ... ... | २४१   | १-भगवान् रामके यहाँ अगस्त्यादि मुनीश्वरोंका आना और रावणादि राक्षसोंका पूर्वचरित्र सुनाना | ... ... | ३२६ | ४-समुद्र-तरण, लङ्घा-निरीक्षण तथा रावण-शुक-संवाद | ... ... | २४८ | २-राक्षसोंके रावणस्यानका विवरण | ... ... | ३३४ | ५-शुकका पूर्व-चरित्र, माल्यवान्का रावणको समझाना तथा वानर-राक्षस-संग्राम | ... ... | २५३ | ३-वाली और सुग्रीवका पूर्वचरित्र तथा रावण-सनतकुमार-संवाद | ... ... | ३४१ | ६-लक्ष्मण-मूर्छा, राम-रावण-संग्राम, हनुमानजीका ओपथि लेने जाना और रावण-कालनेमि-संवाद | ... ... | २५६ | ४-रामराज्यका वर्णन तथा सीता-वनवास | ३४६ | ७-कालनेमिका कपट, हनुमानजीद्वारा उसका वध, लक्ष्मणजीका सचेत होना और रावणका कुम्भकर्णको जगाना | ... ... | २६५ | ५-रामगीता | ... ... | ३५१ | ८-कुम्भकर्ण-वध | ... ... | २७० | ६-लवण-वध, भगवान् रामके यज्ञमें कुश-लघके सहित महर्षि वाल्मीकिका पधारना और कुशको परमार्थोपदेश करना | ... ... | ३६० |
| ३-विभीषणकी शरणागति, समुद्रका त्रास तथा सेतु-बन्धका आरम्भ                                   | ... ... | २४१   | १-भगवान् रामके यहाँ अगस्त्यादि मुनीश्वरोंका आना और रावणादि राक्षसोंका पूर्वचरित्र सुनाना          | ... ... | ३२६   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ४-समुद्र-तरण, लङ्घा-निरीक्षण तथा रावण-शुक-संवाद  | ... ... | २४८   | २-राक्षसोंके रावणस्यानका विवरण  | ... ... | ३३४   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ५-शुकका पूर्व-चरित्र, माल्यवान्का रावणको समझाना तथा वानर-राक्षस-संग्राम                    | ... ... | २५३   | ३-वाली और सुग्रीवका पूर्वचरित्र तथा रावण-सनतकुमार-संवाद   | ... ... | ३४१   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ६-लक्ष्मण-मूर्छा, राम-रावण-संग्राम, हनुमानजीका ओपथि लेने जाना और रावण-कालनेमि-संवाद        | ... ... | २५६   | ४-रामराज्यका वर्णन तथा सीता-वनवास   | ३४६     |       |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ७-कालनेमिका कपट, हनुमानजीद्वारा उसका वध, लक्ष्मणजीका सचेत होना और रावणका कुम्भकर्णको जगाना | ... ... | २६५   | ५-रामगीता   | ... ... | ३५१   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |
| ८-कुम्भकर्ण-वध   | ... ... | २७०   | ६-लवण-वध, भगवान् रामके यज्ञमें कुश-लघके सहित महर्षि वाल्मीकिका पधारना और कुशको परमार्थोपदेश करना  | ... ... | ३६०   |  |         |     |   |         |     |                                |         |     |   |         |     |   |         |     |   |         |     |                                   |     |  |         |     |           |         |     |                |         |     |  |         |     |

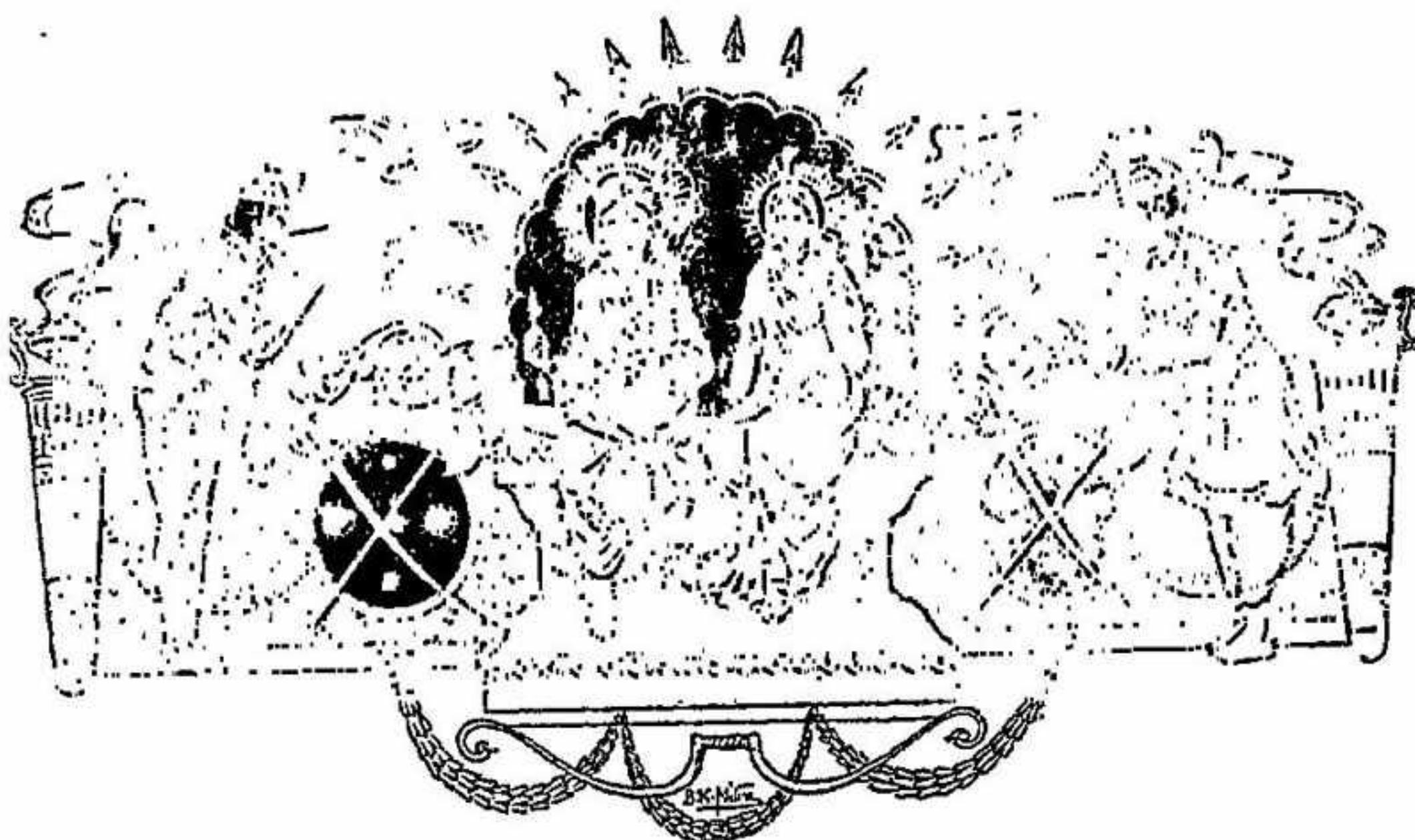
**चित्र-सूची**

|                       |            |                                    |     |
|-----------------------|------------|------------------------------------|-----|
| १-रामचतुष्य (रंगीन)   | ... आदिमें | ५-दासभक्त हनुमानजी (रंगीन) ...     | १५१ |
| २-सदाप्रसन्न राम (,,) | ... ३      | ६-अशोकवाटिकामें सीताजी (,,) ...    | २०३ |
| ३-श्रीसीताराम (,,)    | ... ४१     | ७-श्रीराम-रावण-युद्ध (,,) ...      | २३३ |
| ४-रामजदायु (सादा)     | ... १०३    | ८-क्रीडावनमें श्रीरामसीता (सुनहरी) | ३२६ |
| —(अंतिमपृष्ठ) —       |            |                                    |     |

ॐ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॒

## अध्यात्मरामायण

हिन्दी-अनुवादसहित



मायातीतं माधवमाद्यं जगदादि, मानातीतं मोहविनाशं सुनिवन्धय ।  
योगिष्ठ्येयं योगविधानं परिपूर्णं, वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥





# अध्यात्मरामायण

— श्रीरामचन्द्रस्तुति —

## सहस्रात्मक

रामं विश्वमयं वन्दे रामं वन्दे रघूद्वहम् । रामं विश्ववरं वन्दे रामं श्यामाग्रजं भजे ॥  
यत्य चागंशुतश्चृतं रम्यं रामायणामृतम् । शैलजासेवितं वन्दे तं शिवं सोमस्त्रिष्णम् ॥  
सञ्जिदानन्दसन्दोहं भक्तिविभूषणम् । पूर्णानन्दमहं वन्दे सद्गुरुं शङ्करं स्वयम् ॥  
अज्ञानध्वान्तसंहतीं ज्ञानालोकाविलासिनीं । चन्द्रचूडवचश्चन्द्रचन्द्रिकेयं विराजते ॥

अप्रमेयत्रयातीननिर्मलज्ञानमूर्तये ।  
मनोगिरां विद्वराय दक्षिणामूर्तये नमः ॥ १ ॥

रूत उवाच

कदाचिन्नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया ।  
पर्यटन्सकलाँल्लोकान्सत्यलोकमुषागमत् ॥ २ ॥  
तत्र द्वामूर्तिमद्विश्वन्दोभिः परिवेष्टितम् ।  
वालक्षण्यभया सम्यग्भासयन्तं सभागृहम् ॥ ३ ॥  
मार्कण्डेयादिमुनिभिः स्तूयमानं मुहुर्मुहुः ।  
सर्वार्थगोचरज्ञानं सरखत्या समन्वितम् ॥ ४ ॥  
चतुर्मुखं जगन्नाथं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ।  
प्रणम्य दण्डवद्वक्त्या तुष्टाव मुनिपुङ्गवः ॥ ५ ॥  
भन्तुप्रस्तं मुनिं प्राह स्वयम्भूर्वैष्णवोत्तमम् ।  
किं प्रपुकामस्त्वमसि तद्विष्यामि ते मुने ॥ ६ ॥  
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनिर्ब्रह्माणमववीत् ।  
त्वत्तः श्रुतं मया सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम् ॥ ७ ॥  
ददानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं गुरसत्तम ।  
तद्रहस्यमपि त्रृहि यदि तेऽनुग्रहो मयि ॥ ८ ॥

जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे परे, त्रिगुणातीत, मलहीन, ज्ञानस्वरूप और मन, वाणी आदिके अविषय हैं उन दक्षिणामूर्ति भगवान् (सदाशिव) को नमस्कार है ॥ १ ॥

श्रीसूतजी घोले—एक समय योगिराज नारदजी दूसरोंपर कृपा करनेके लिये समस्त लोकोंमें विचरते हुए सत्यलोकमें पहुँचे ॥ २ ॥ वहाँ मूर्तिमान् वेदोंसे धिरे हुए, अपनी बालसूर्यके समान प्रभासे सभाभवन-को पूर्णतया देढीप्यमान करते हुए, मार्कण्डेय आदि मुनिजनोंसे वारम्बार स्तुति किये जाते हुए, सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान रखनेवाले और भक्तोंको इच्छित फल देनेवाले सरस्वतीयुक्त जगत्पति ब्रह्माजीको देखकर मुनि-श्रेष्ठ नारदजीने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और भक्तिभावसे स्तुति की ॥ ३-५ ॥

तब स्वयम्भू ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर वैष्णवाग्रणी श्रीनारदजीसे कहा—“मुने ! तुम क्या पूछना चाहते हो ? मैं तुमसे वह सब कहूँगा” ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीके ये वचन सुनकर नारदजीने उनसे कहा, “हे देवश्रेष्ठ ! शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन तो मैं आपसे पहले ही सुन चुका हूँ । अब मुझे एक ही बात और सुननी है; यदि मुझपर आपकी कृपा है तो गोपनीय होनेपर भी वह सुनाइये ॥ ७-८ ॥ अब घोर कलियुगके आनेपर

प्राप्ते कलियुगे थोरे नराः पुण्यविवर्जिताः ।  
 दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखाः ॥१॥  
 परापवादनिरताः परद्रव्याभिलापिणः ।  
 परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः ॥२॥  
 देहात्मदृष्टयो मृढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः ।  
 मातापितृकृतदेषाः स्त्रीदेवाः कामकिङ्कराः ॥३॥  
 विश्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः ।  
 धनार्जनार्थमस्यस्तविद्या मदविमोहिताः ॥४॥  
 त्यक्तखजातिकर्मणः प्रायशः परवश्वकाः ।  
 क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥५॥  
 तद्वच्छ्राश्च ये केचिद्वाक्षणाचारतत्पराः ।  
 स्त्रियश्च ग्रायशो ऋषा भर्त्रपञ्चाननिर्भयाः ॥६॥  
 शशुरद्रोहकारिण्यो भविष्यन्ति न संशयः ।  
 एतेषां नष्टबुद्धीनां परलोकः कथं भवेत् ॥७॥  
 इति चिन्ताकुलं चित्तं जायते मम सन्ततस् ।  
 लघूपायेन येनैषां परलोकगतिर्भवेत् ।  
 तमुपायमुपाख्याहि सर्वे वेत्ति यतो भवान् ॥८॥  
 इत्यूपर्वक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाचाम्बुजासनः ।  
 साधु पृष्ठं त्वया साधो बक्ष्ये तच्छृणु सादरम् ॥९॥  
 पुरा त्रिपुरहन्तारं पार्वती भक्तवत्सला ।  
 श्रीरामतत्त्वं जिज्ञासुः पगच्छ विनयान्विता ॥१०॥  
 प्रियायै गिरिशस्तस्यै गूढं व्याख्यातवान्स्वयम् ।  
 पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमिति स्मृतम् ॥११॥  
 तत्पार्वती जगद्वात्री पूजयित्वा दिवानिशम् ।  
 आलोचयन्ती स्वानन्दमया तिष्ठति साम्प्रतम् ॥१२॥  
 प्रचरिष्यति त्रिष्ठोके प्राण्यदृष्टवशाद्वदा ।  
 तस्याध्ययनमात्रेण जना यास्यन्ति सद्गतिम् ॥१३॥

मनुष्य पुण्यकर्म छोड़ देंगे और सत्यगापणसे विमुख होकर दुराचारमें प्रवृत्त हो जायेंगे ॥१॥ वे दूसरों की निन्दामें तत्पर रहेंगे, दूसरोंके धनकी इच्छा करेंगे, परद्वीमें चित्त उगावेंगे और पराया हिंसा करेंगे ॥२॥ वे मृढ़ देहमें ही आत्मबुद्धि करेंगे, शाश्व और ईश्यमें विमुख होंगे, उनको बुद्धि पशुओंके समान होंगा और वे कामके गुलाम होकर लीके भक्त और गतान्पिनाक दोहों बनेंगे ॥३॥ व्रात्यणगण लंभन्ती प्रादृते प्रनत और वेद वेचकर अपनी आर्जाविका चलानेवाले होंगे, वे धनोपार्जनके लिये ही विद्याभ्याम करेंगे और (विद्या तथा व्रात्यणत्वके) मदने उन्मत हों जायेंगे ॥४॥ क्षत्रिय और वैश्यगण भी स्वधर्मको व्यापने वाले तथा अपने जाति-कर्मोंको छोड़कर प्रायः दूसरोंको ठगनेवाले होंगे ॥५॥ इसी प्रकार जां वृद्ध होंगे वे भी व्रात्यणोंके आचारमें तत्पर हों जायेंगे तथा लियाँ प्रायः भ्रष्टाचारिणी और अपने पतिका अपमान करनेमें निष्ठ होंगी ॥६॥ निस्तन्देह वे अपने सास-ससुरोंसे डोह करेंगे । इन नष्ट-बुद्धियोंका परलोक किस प्रकार दुर्बलगा ? ॥७॥ इस चिन्तामे मेरा चित्त निरन्तर व्याकुल रहता है । जिस सुगम उपायसे इनका परलोक सुवर सकता हो वह आप मुझे बतलाइये, क्योंकि आप सभीं दुष्ट जानते हैं” ॥८॥

देवर्पि नारदजीके ये वचन सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले—“हे साधो ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं उसे बतलाता हूँ, तुम शद्वापूर्वक सुनो ॥९॥” “पूर्वकालमें भक्तवत्सला पार्वती-जीने श्रीरामतत्त्वकी जिज्ञासासे त्रिपुर-विनाशक भगवान् शंकरसे विनयपूर्वक प्रश्न किया था ॥१०॥” तब अपनी प्रियासे श्रीमहादेवजीने जिस गृह रहन्त्वका वर्णन किया था वह उत्तम पुराण अध्यात्मरामायणके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥११॥ अब जगजननी पार्वती-जी उसका पूजन कर रात-दिन उसीका मनन करती आत्मानन्दमें मग्न रहती हैं ॥१२॥ जिस समय प्राणियोंके सौभाग्यसे उसका लोकमें प्रचार होगा उस समय उसके अध्ययनमात्रसे लोग शुभगति प्राप्त करेंगे

तावद्विजृभते पापं ब्रह्महत्यापुरःसरम् ।  
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२२॥

तावत्कलिमहोत्साहो निःशङ्कं सम्प्रवर्तते ।  
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२३॥

तावद्यमभटाः शूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः ।  
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२४॥

तावत्सर्वाणि शास्त्राणि चिवदन्ते परस्परम् ॥२५॥

तावत्स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं महतामपि ।  
यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२६॥

अध्यात्मरामायणसङ्कीर्तनश्रवणादिजम् ।  
फलं वक्तुं न शक्नोमि कात्स्त्व्येन मुनिसत्तम् ॥२७॥

तथाऽपि तस्य माहात्म्यं वक्ष्ये किञ्चित्तवानघा ।  
भृणु चित्तं समाधाय शिवेनोक्तं पुरा सम ॥२८॥

अध्यात्मरामायणतः इलोकं इलोकार्धमेव वा ।  
यः पठेद्गत्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात् ॥२९॥

यस्तु प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधीः ।  
यथाशक्तिं वंदेद्गत्या स जीवन्मुक्त उच्यते ॥३०॥

यो भक्त्यार्चयते अध्यात्मरामायणमतन्द्रितः ।  
दिनेदिनेऽश्वमेषस्य फलं तस्य भवेन्मुने ॥३१॥

यद्वच्छयापि योऽध्यात्मरामायणमनादरात् ।  
अन्यतः शृणुयान्मर्त्यः सोऽपि मुच्येत पातकात् ॥३२॥

नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरतः ।  
सर्वदेवार्चनफलं स ग्रामोति न संशयः ॥३३॥

लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः ।  
यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३४॥

अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च ।  
यत्कलं दुर्लभं लोके तत्कलं तस्य सम्भवेत् ॥३५॥

एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोपितः ।  
यो रामभक्तः सदसि व्याकरोति नरोत्तमः ॥३६॥

॥२१॥ संसारमें ब्रह्म-हत्यादि प्राप तभीतक रहेंगे जबतक अध्यात्मरामायणका प्रादुर्भाव नहीं होगा ॥ २२॥ कलियुगका महान् उत्साह तभीतक निःशक्त रहेगा जबतक संसारमें अध्यात्मरामायणका उदय न होगा ॥ २३॥ यमराजके शूरवीर दूत तभीतक निर्भय विचरते रहेंगे जबतक जगतमें अध्यात्मरामायण प्रकट नहीं होगी ॥ २४॥ और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें परस्पर विवाद तभीतक रहेगा तथा महापुरुषोंको भी भगवान् रामका खरूप तभीतक दुर्बोध रहेगा जबतक संसारमें अध्यात्मरामायणका प्रकाश नहीं होगा ॥ २५-२६॥

“हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं अध्यात्मरामायणके कीर्तन और श्रवणसे होनेवाले फलका पूर्णतया वर्णन नहीं कर सकता, तथापि हे अनघ ! मैं तुम्हें उसका थोड़ा-सा माहात्म्य सुनाता हूँ। इसे पूर्वकालमें मुझसे शिवजीने कहा था; तुम सावधान होकर सुनो—॥२७-२८॥ जो पुरुष अध्यात्मरामायणका एक अथवा आधा इलोक भी भक्तिपूर्वक पढ़ता है वह तत्क्षण पापमुक्त हो जाता है ॥२९॥ जो इस अध्यात्मरामायणको नित्यप्रति अनन्य बुद्धिसे भक्तिपूर्वक यथाशक्ति सुनाता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३०॥ हे मुने ! जो पुरुष आलस्य छोड़कर भक्तिभावसे प्रतिदिन अध्यात्मरामायणका पूजन करता है उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥३१॥ जो मनुष्य दृसरोंसे अनियमपूर्वक अनादरसे भी अध्यात्मरामायण श्रवण करता है वह भी पातकसे छूट जाता है ॥३२॥ जो कोई अध्यात्मरामायणके निकट जाकर उसे नमस्कार करता है वह समस्त देवताओंकी पूजाका फल पाता है—इसमें सन्देह नहीं ॥३३॥

“जो पुरुष अध्यात्मरामायणकी सम्पूर्ण पुस्तक लिखकर राम-भक्तोंको देता है उसे जो पुण्य होता है उसका फल सुनो ॥३४॥ उसे वह फल मिलता है जो वेदोंके पढ़नेसे और शास्त्रोंकी व्याख्या करनेसे भी संसारमें दुर्लभ है ॥३५॥ जो नरश्रेष्ठ राम-भक्त एकादशीको उपवास करके समामें अध्यात्मरामायणकी व्याख्या करता है, हे वैष्णवश्रेष्ठ ! उसके

तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणु वैष्णवसत्तम ।  
प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरथर्याफलं भवेत् ॥३७॥  
उपवासव्रतं कृत्वा श्रीरामनवमीदिने ।  
शत्रौ जागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधीः।  
यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्यं वदास्यहम् ॥३८॥  
कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः ।  
आत्मतुल्यं धनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥३९॥  
विप्रेभ्यो व्यासतुल्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमनुत्ते ।  
तत्फलं सम्भवेत्स्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥४०॥  
यो गायते मुदाऽध्यात्मरामायणमहनिशम् ।  
आज्ञां तस्य प्रतीक्षन्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥४१॥  
पठन्प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनुब्रतः ।  
यद्यत्करोति तत्कर्म ततः कोटिगुणं भवेत् ॥४२॥

तत्र श्रीरामहृदयं यः पठेत्सुसमाहितः ।  
स ब्रह्मभोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत् ॥४३॥  
श्रीरामहृदयं यस्तु हनुमत्प्रतिमान्तिके ।  
त्रिः पठेत्प्रत्यहं मौनी स सर्वेषिंसतभागभवेत् ॥४४॥  
पठन् श्रीरामहृदयं तुलस्यश्वत्थयोर्यदि ।  
प्रत्यक्षरं प्रकुर्वात् ब्रह्महत्यानिवर्तनम् ॥४५॥  
श्रीरामभीतासाहात्म्यं कृतस्तं जानाति शङ्करः ।  
तदर्थं गिरिजा वेचि तदर्थं वेदूम्यहं मुने ॥४६॥  
तत्त्वे किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृतस्तं वक्तुं न शक्यते ।  
यज्ज्ञात्वा तत्क्षणात्मोक्षित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ॥४७॥  
श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयति नारद ।  
तत्र नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन ।  
तत्र पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा ॥४८॥  
रामेणोपनिषत्सन्धुमुन्मध्योत्पादितां मुदा ।

पुण्यका फल वतलाता हूँ, सुनो । उसे एक-एक अक्षर के पढ़नेमें गायत्रीके पुरथर्याका फल मिलता है ॥३६-३७॥ जो पुरुष रामनवमीके दिन निराहार रहकर और फिर रात्रिको जागरण कर अनन्य शुद्धि से अध्यात्मरामायणको पढ़ता या सुनता है, अब मैं उसका पुण्य वतलाता हूँ ॥३८॥ कुरुक्षेत्रादि सम्पूर्ण पवित्र तीर्थोंमें सर्वग्रस्त सूर्यग्रहणके समय अनेकों वार व्यासजीके समान ब्राह्मणोंको अपने वरावर धन देनेसे जो फल होता है उसे वही फल मिलता है; इसमें कोई सन्देह नहीं, यह सर्वधा सत्य है, सर्वथा सत्य है ॥३९-४०॥ जो मनुष्य अहनिंश प्रसन्नचिन्तनसे अध्यात्मरामायणका गान करता है उसकी आज्ञाकी इन्द्रादि देवगण प्रतीक्षा किया करते हैं ॥४१॥ अध्यात्मरामायणका नित्यप्रति नियमपूर्वक पाठ करने से मनुष्य जो कुछ पुण्य-कर्म करता है वह वरांड-गुना हो जाता है ॥४२॥

“इस (अध्यात्मरामायण)मेंसे जो पुरुष ग्रन्थ नमाहित होकर श्रीरामहृदयका पाठ करता है वह ब्रह्महत्यागा भी हो तो भी तीन दिनमें ही पवित्र हो जाता है ॥४३॥ जो पुरुष हनुमान्जीकी प्रतिमाके समाप्त प्रतिदिन तीन वार गौन होकर श्रीरामहृदयका पाठ करता है वह समस्त इच्छित फल प्राप्त करता है ॥४४॥ और यदि कोई पुरुष तुलसी या पांपलके निकट श्रीरामहृदयका पाठ करे तो वह एक-एक अक्षरपर (अपनी) ब्रह्महत्या (जैसे पापों)को दूर कर देता है ॥४५॥

“हे मुने ! श्रीरामगीताका माहात्म्य पूरा-पूरा तो श्रीमहादेवजी ही जानते हैं; उनसे आधा पार्वतीजी जानती हैं और उनसे भी आधा मैं जानता हूँ ॥४६॥ सो उसे पूरा कह भी नहीं सकता, उसमेंसे धोड़ा-सा तुम्हें सुनाता हूँ जिसके जाननेमात्रसे चित्त तत्काल शुद्ध हो जाता है ॥४७॥ हे नारद ! जिस पापको श्रीरामगीताने नष्ट नहीं किया वह संसारमें कभी किसी तीर्थादिसे भी नष्ट नहीं हो सकता, मैं सदा हूँड़नेपर भी उस पापको नहीं देख पाता ॥४८॥ जिस गीतामृतको भगवान् रामने उपनिषत्सागरका

लक्ष्मणायापितां गीतासुधां पीत्वाऽमरो भवेत् ॥४९॥  
जमदग्निसुतः पूर्वं कार्तवीर्यवधेच्छया ।  
धनुर्विद्यामभ्यसितुं महेशस्यान्तिके वसन् ॥५०॥  
अधीयमानां पार्वत्या रामगीतां प्रयत्नतः ।  
श्रुत्वा गृहीत्वाऽऽशु पठन्नारायणकलामगात् ॥५१॥  
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वाच्छति ।  
रामगीतां मासमात्रं पठित्वा मुच्यते नरः ॥५२॥  
दुष्प्रातिग्रहदुभेद्यदुरालापादिसम्भवम् ।  
पार्पं यत्तकीर्तनेन रामगीता विनाशयेत् ॥५३॥  
शालग्रामशिलाग्रे च तुलस्यर्थत्थसन्निधौ ।  
यतीनां पुरतस्तद्वद्रामगीतां पठेत्तु यः ॥५४॥  
स तत्फलमवामोति यद्वाचोऽपि न गोचरम् ॥५५॥  
रामगीतां पठन्मभक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजान् ।  
तस्य ते पितरः सर्वे यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥५६॥  
एकादश्यां निराहारो नियतो द्वादशीदिने ।  
स्थित्वागस्त्यतरोर्मूले रामगीतां पठेत्तु यः ।  
स एव राघवः साक्षात्सर्वदेवैश्च पूज्यते ॥५७॥  
विना दानं विना ध्यानं विना तीर्थविगाहनम् ।  
रामगीतां नरोऽधीत्य तदनन्तफलं लभेत् ॥५८॥  
वहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्वतः ।  
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च ।  
अर्हन्ति नाल्पमध्यात्मरामायणकलामपि ॥५९॥  
अध्यात्मरामचरितस्य मुनीश्वराय  
माहात्म्यमेतदुदितं कमलासनेन ।  
यः श्रद्धया पठति वा शृणुयात्स मर्त्यः  
ग्रामोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमानः ॥६०॥

मन्यन कर निकाला और फिर बड़ी प्रसन्नतासे लक्ष्मण-  
जीको दिया ( मनुष्यको चाहिये कि ) उसका पान  
करके अमर हो जाय ॥ ४९ ॥ पूर्वकालमें सहस्रा-  
र्जुनके बधकी इच्छासे जमदग्निनन्दन परशुराम-  
जी धनुर्विद्याका अभ्यास करनेके लिये श्रीमहादेवजीके  
पास रहते थे ॥५०॥ उस समय रामगीताका अध्ययन  
करती हुई पार्वतीजीसे इसे यत्नपूर्वक सुनकर और  
तुरन्त ही हृदयंगम कर इसका पाठ करते-करते वे  
श्रीनारायणकी कलारूप हो गये ॥ ५१ ॥ यदि कोई  
पुरुष ब्रह्महत्या आदि धोर पापोंसे मुक्त होना चाहे  
तो केवल एकमास रामगीताका पाठ करनेसे छूट  
सकता है ॥५२॥ बुरे दान, निषिद्ध भोजन और  
खोटी बोलचाल आदिसे जो पाप होता है उसे रामगीता  
पाठमात्रसे नष्ट कर देती है ॥५३॥ जो पुरुष शालग्राम  
शिलाके आगे, तुलसी या पीपलके पास अथवा यति-  
जनोंके सामने रामगीताका पाठ करता है उसे वह  
फल मिलता है जो वाणीका भी विषय नहीं है  
॥५४-५५॥ जो मनुष्य श्राद्धमें रामगीताका भक्तिपूर्वक  
पाठ करके ब्राह्मणोंको भोजन कराता है उसके बे-  
समस्त पितृगण भगवान् विष्णुके परम धामको जाते  
हैं ॥५६॥ जो पुरुष एकादशीके दिन निराहार और  
जितेन्द्रिय रहकर द्वादशीको अगस्त्य वृक्षके नीचे बैठ-  
कर रामगीताका पाठ करता है वह साक्षात् रामरूप  
ही है, उसकी समस्त देवगण पूजा करते हैं ॥५७॥  
रामगीताका पाठ करनेसे मनुष्य विना किसी दान,  
ध्यान अथवा तीर्थस्नानके ही अक्षय फल पाता है  
॥५८॥ हे नारद ! और अधिक क्या कहा जाय जो  
वास्तविक बात है वह सुन—श्रुति, स्मृति, पुराण और  
इतिहास आदि सैकड़ों शास्त्र श्रीअध्यात्मरामायणकी  
एक तुच्छ कलाके समान भी नहीं है” ॥५९॥

यह अध्यात्मरामायणका माहात्म्य श्रीब्रह्माजीने  
मुनिराज नारदसे कहा है । इसे जो मनुष्य श्राद्ध-  
पूर्वक पढ़ता या सुनता है वह देवताओंसे पूजित  
होकर श्रीविष्णुभगवान् का पद प्राप्त करता है ॥६०॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डेऽध्यात्मरामायण-

माहात्म्यं सम्पूर्णम्

## सदाप्रसन्न राम



सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराणः एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।  
मायातनुं लोकविमोहनीयां धन्ते परानुग्रह एष रामः ॥

(अ० रा० बाल० २ । ४६ )

# अध्यात्मरामायण

## कालकाण्ड

### प्रथम सर्ग

#### रामहृदय

यः पृथ्वीभरवारणाय दिविजैः  
संप्रार्थितश्चिन्मयः  
संजातः पृथिवीतले रविकुले  
मायामनुष्योऽच्ययः ।  
निश्चकं हतराक्षसः पुनरगाद्  
ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरं  
कीर्ति पापहरां विधाय जगतां  
तं जानकीशं भजे ॥ १ ॥

विश्वोऽद्वस्थितिलयादिषु हेतुमेकं  
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम् ।  
आनन्दसान्द्रममलं निजवोधरूपं  
सीतापति विदिततत्त्वमहं नमामि ॥ २ ॥

पठन्ति ये नित्यमनन्यचेतसः  
शृण्वन्ति चाध्यात्मिकसंज्ञितं शुभम् ।  
रामायणं सर्वपुराणसंमतं  
निर्धूतपापा हरिमेव यान्ति ते ॥ ३ ॥

अध्यात्मरामायणमेव नित्यं  
पठेद्वदीच्छेऽद्ववन्धमुक्तिम् ।

गवां सहस्रायुतकोटिदानात्  
फलं लभेद्यः शृणुयात्स नित्यम् ॥ ४ ॥

पुरारिगिरिसंभूता श्रीरामार्णवसंगता ।  
अध्यात्मरामगङ्गेयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥

जिन चिन्मय अविनाशी प्रभुने पृथिवीका भार उतारनेके लिये देवताओंकी प्रार्थनासे पृथिवीतलपर सूर्यवंशमें माया-मानवरूपसे अवतार लिया और जो राक्षसोंके समूहको मारकर तथा संसारमें अपनी पाप-विनाशिनी अविचलकीर्ति स्थापितकर पुनः अपने आद्य ब्रह्मस्वरूपमें लीन हो गये उन श्रीजानकीबल्लभका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ जो विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण हैं, मायाके आश्रय होकर भी मायातीत हैं, अचिन्त्यस्वरूप हैं, आनन्दधन हैं, उपाधिकृत दोषोंसे रहित हैं, तथा स्वयंप्रकाशस्वरूप हैं उन तत्त्ववेत्ता श्रीसीतापतिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जो लोग इस सर्व-पुराण-सम्मत पवित्र अध्यात्म-रामायणका एकाग्र-चित्तसे नित्य पाठ करते हैं और जो इसे सुनते हैं वे पापरहित होकर श्रीहरिको ही प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ यदि कोई संसार-बन्धन-से मुक्त होना चाहता हो तो वह अध्यात्मरामायणका ही नित्य पाठ करे । जो कोई मनुष्य इसका नित्य श्रवण करता है वह लाखों करोड़ गो-दानका फल प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ श्रीशंकररूप पर्वतसे निकली हुई रामरूप समुद्रमें मिलनेवाली यह अध्यात्मरामायण-रूपिणी गंगा त्रिलोकीको पवित्र कर रही है ॥ ५ ॥

कैलासाये कदाचिद्रविशतविमले  
 मन्दिरे रत्नपीठे  
 संविष्टं ध्याननिष्टुं विनयनमभयं  
 सेवितं सिद्धसंघैः ।  
 देवी वामाङ्कसंस्था गिरिवरतनया  
 पार्वती भक्तिनग्रा  
 प्राहेदं देवमीशं सकलमलहरं  
 वाक्यमानन्दकन्दम् ॥ ६ ॥  
 पार्वत्युवाच  
 नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास  
 सर्वात्मदृक् त्वं परमेश्वरोऽसि ।  
 पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य  
 सनातनं त्वं च सनातनोऽसि ॥ ७ ॥  
 गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं  
 वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः ।  
 तदप्यहोऽहं तद देव भक्ता  
 प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्ठम् ॥ ८ ॥  
 ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्ति-  
 वैराग्ययुक्तं च मितं विभास्त् ।  
 जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं  
 यथा तथा त्रूहि तरन्ति येन ॥ ९ ॥  
 पृच्छामि चान्यत्र परं रहस्यं  
 तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ।  
 श्रीरामचन्द्रेऽखिललोकसारे  
 भक्तिर्द्वाद नौर्भवति प्रसिद्धा ॥ १० ॥  
 भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय  
 नान्यत्ततः साधनमस्ति किञ्चित् ।  
 तथापि हृत्संशयवन्धनं मे  
 विभेदुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥ ११ ॥  
 वदन्ति रामं परमेकमाद्यं  
 निरस्तमायागुणसंप्रवाहम् ।  
 भजन्ति चाहर्निशम्प्रमत्ताः  
 परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥ १२ ॥  
 वदन्ति केचित्परमोऽपि रामः  
 स्वाविद्यया संबृतमात्मसंज्ञम् ।  
 जानाति नात्मानभतः परेण  
 सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम् ॥ १३ ॥

एक सुमय कैलाशपर्वतके शिखरपर सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान शुभ्र भवनमें रजसिंहासनपर व्यानावस्थित बैठे हुए, सिद्ध-समूह-सेवित, नित्यनिर्भय, सर्वपापहारी आनन्दकन्द, देवदेव भगवान् विनयनसे उनके वामाङ्कमें विराजमान श्रीगिरिजाकुमारी पार्वतीने भक्तिभावसे नन्दनापूर्वक वे वाक्य कहे ॥ ६ ॥

श्रीपार्वतीजी बोली—हे देव ! हे जगन्निवास ! आपको नमस्कार है; आप सबके अन्तःकरणोंके साक्षां और परमेश्वर हैं। मैं आपसे श्रीपुरुषोत्तम भगवान्का सनातन-तत्त्व पूछना चाहती हूँ क्योंकि आप भी सनातन हैं ॥७॥ महानुभावलोग जो अन्यन्त गोपनीय विषय होता है तथा अन्य किसीने कहने चाहते नहीं होता उसे भी अपने भक्तजनोंमें कह देते हैं। हे देव ! मैं भी आपका भक्त हूँ मुझे आप अन्यन्त प्रिय हैं। इसलिये मैंने जो कुछ पूछा है वह वर्णन कर्जिये ॥८॥ जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य संसार-समुद्रसे पार हो जाते हैं उस भक्ति और वैराग्यसे परिपूर्ण प्रकाशनम् आत्मज्ञानका वर्णन आप विज्ञानसद्वित इस प्रकार न्द्रलप शब्दोंमें कर्जिये जिससे मैं तो हंनिपर भी आपके वचनोंको ( सहज हो ) समझ सकूँ ॥९॥ हे कमल-नयन ! मैं एक परम गुण रहस्य आपसे और पूछती हूँ, कृपया आप पहले उसे ही वर्णन करें। यह तो प्रसिद्ध ही है कि अग्निलल्लोक-सार श्रीरामचन्द्रजीकी विशुद्ध भक्ति संसार-सागरको तरनेके लिये मुहूर्द नौका है ॥१०॥ संसारसे मुक्त होनेके लिये भक्ति ही प्रसिद्ध उपाय है उससे श्रेष्ठ और कोई भी साधन नहीं है; तथापि आप अपने विशुद्ध वचनोंसे ने दृदयकी संशय-ग्रन्थिका छेदन कर्जिये ॥ ११ ॥ प्रमाद-रहित सिद्धगण श्रीरामचन्द्रजीको परम अद्वितीय, सबके आदिकारण और प्रकृतिके गुण-प्रवाहसे परे बतलाते हैं तथा वे अहर्निश उनका भजन करके परमपद भी प्राप्त करते हैं ॥१२॥ परन्तु कोई-कोई कहते हैं कि राम परब्रह्म होनेपर भी अपनी मायासे आवृत हो जानेके कारण अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानते थे। इसलिये अन्य (वशिष्ठादि) के उपदेश-से उन्होंने आत्मतत्त्वको जाना ॥ १३ ॥ (अतः मैं पूछती

यदि स्म जानाति कुतो विलापः  
 सीताकुतेऽनेन कुतः परेण ।  
 जानाति नैवं यदि केन सेव्यः  
 समो हि सर्वेरपि जीवजातैः ॥१४॥  
 अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्विष्ट-  
 स्तद्ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम् ॥१५॥  
 श्रीनहादेव उवाच  
 धन्यासि भक्तासि परात्मनस्त्वं  
 यज्ञागुमिच्छा रुच रामतत्त्वम् ।  
 पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं  
 वक्तुं रहस्यं परमं निगृहम् ॥१६॥  
 त्वयाऽद्य भक्त्या परिनोदितोऽहं  
 वक्ष्ये नमस्कृत्य रघृतमं ते ।  
 रामः परात्मा प्रकृतेनादि-  
 रानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ॥१७॥  
 स्वमायया कृत्स्नमिदं हि उद्धा  
 नभोवदन्तर्विहिरास्थितो यः ।  
 मर्वान्तरम्योऽपि निगृह आत्मा  
 स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे ॥१८॥  
 जगन्ति नित्यं परितो अमन्ति  
 यत्सन्निधो चुम्यकलोहवद्विष्ट ।  
 एतत्र जानन्ति विमृद्धनित्ताः  
 म्याविद्यया संब्रूतमानसा ये ॥१९॥  
 स्वाक्षानमप्यात्मनि शुद्धुद्वे-  
 स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये ।  
 संगारंवानुगरन्ति तं वं  
 पुत्रादिनक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः ॥२०॥  
 जानन्ति नैवं हृदयं स्थितं वं  
 चामीकरं कण्ठगतं यथाऽज्ञाः ।  
 यथाऽप्रकाशो न तु विद्वते रवौ  
 ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा ।  
 विगुद्विज्ञानघनं रघृतमे-  
 ऽविद्या कथं स्यात्परतः परात्मनि ॥२१॥  
 यथा हि वाक्षान अमता गृहादिकं  
 विनष्टद्वेष्ट्रभ्रमतीव दृश्यते ।

हूँ कि) यदि वे आत्मतत्त्वको जानते थे, तो उन परमात्माने सीताके लिये इतना विलाप क्यों किया? और यदि उन्हें आत्मज्ञान नहीं था, तो वे अन्य सामान्य जीवोंके समान ही हुए; फिर उनका भजन क्यों किया जाना चाहिये? इस विषयमें आपका क्या विचार है सो ऐसे वाक्योंमें कहिये जिससे मेरा सन्देह निवृत्त हो जाय ॥१४-१५॥

श्रीमहादेवजी वोले—देवि! तुम धन्य हो, तुम परमात्माकी परम भक्त हो, जो तुम्हें रामका तत्त्व जाननेकी इच्छा हुई है। इससे पूर्व, इस परमगूढ रहस्यका वर्णन करनेके लिये मुझसे और किसीने नहीं कहा ॥१६॥ आज तुमने मुझसे भक्तिपूर्वक प्रश्न किया है इसलिये मैं श्रीरघुनाथजीकी वन्दनाकर तुग्हारे प्रश्नका उत्तर देता हूँ। श्रीरामचन्द्रजी निःसन्देह प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दधन, अद्वितीय और पुरुषोत्तम हैं ॥१७॥ जो अपनी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाशके समान व्याप हैं तथा जो आत्मारूपसे सबके अन्तःकरणमें स्थित हुए अपनी मायासे इस विश्वको परिचालित कर रहे हैं ॥१८॥ चुम्बकके निकट होनेसे जिसप्रकार जड लोहेमें गति उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार जिनकी सन्निधिमात्रसे यह विश्व सदा सब ओर अमता रहता है उन परमात्मा रामको, जिनका दृश्य आत्माके अज्ञानसे ढूँका हुआ है वे मूढ़ उन मायातीत शुद्ध-वुद्ध परमात्मामें भी अपने अज्ञानको आरोपित करते हैं अर्थात् उन्हें भी अपने समान ही अज्ञानी गानते हैं, तथा वे सर्वदा ली-पुत्रादिमें आसक्त रहने-वाले पामर जाव वहुतं-से कर्मोंमें लगे रहकर संसार-चक्रमें ही पड़े रहते हैं ॥१९॥ वे मूढ़ उन मायातीत हुए कण्ठेको न जाननेके समान अपने ही हृदयमें स्थित परमात्मा रामको नहीं जानते (इसीलिये उनमें अज्ञानादिका आरोप करते हैं)। वास्तवमें तो जिस प्रकार सूर्यमें कभी अन्धकार नहीं रहता उसी प्रकार प्रकृत्यादिसे अतीत, विगुद्विज्ञानघन, ज्योति-स्वस्त्र, परमेश्वर परमात्मा राममें भी अविद्या नहीं रह सकती ॥२०॥ और जिस प्रकार चक्र लगाते समय मनुष्यको नेत्रोंके घूमनेसे गृह आदि भी घूमते हुए प्रतीत होते हैं उसी प्रकार लोग अपने देह और इन्द्रियरूप कर्ताके

तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मनः  
कृतं परेऽध्यस्य जनो विमुद्यति ॥२२॥

नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत्  
प्रकाशरूपाव्यभिचारतः क्वचित् ।

ज्ञानं तथाऽज्ञानमिदं द्वयं हरौ  
रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्धने ॥२३॥

तस्मात्परानन्दमये रघूतमे  
विज्ञानरूपे हि न विद्यते तमः ।

अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने  
मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम् ॥२४॥

अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम् ।  
सीताराममरुत्सूनुसंवादं मोक्षसाधनम् ॥२५॥

पुरा रामायणे रामो रावणं देवकण्टकम् ।  
हत्वा रणे रणश्लाघी सपुत्रबलवाहनम् ॥२६॥

सीतया सह सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ।  
अयोध्यामगमद्रामो हनूमत्प्रमुखैर्वृतः ॥२७॥

अभिषिक्तः परिवृतो वसिष्ठाद्यर्महात्मभिः ।  
सिंहासने समासीनः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥२८॥

दृष्टा तदा हनूमन्तं प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम् ।  
कृतकार्यं निराकाङ्क्षं ज्ञानायेकं महामतिम् ॥२९॥

रामः सीतामुवाचेदं ब्रूहि तत्त्वं हनूमते ।  
निष्कलमषोऽयं ज्ञानस्य पात्रं नौ नित्यभक्तिमान् ॥३०॥

तथेति जानकी प्राह तत्त्वं रामस्य निश्चितम् ।  
हनूमते प्रपञ्चाय सीता लोकविमोहिनी ॥३१॥

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।  
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्त्वामात्रमगोचरम् ॥३२॥

आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् ।  
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकलमषम् ॥३३॥

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ।  
तस्य सविधिमात्रेण सुजामीदमतन्द्रिता ॥३४॥

किये हुए कर्मोंका आत्मामें आरोप करके मोहित हो जाते हैं ॥२२॥ प्रकाशरूपताका कभी व्यभिचार न होनेसे जिस प्रकार सूर्यमें रात-दिनका भेद नहीं होता—वह सर्वदा एक समान प्रकाशमान रहता है—उसी प्रकार शुद्धचेतनधन भगवान् राममें ज्ञान और अज्ञान दोनों कैसे रह सकते हैं ? ॥२३॥ अतएव परानन्दस्वरूप विज्ञानधन अज्ञान-साक्षी कमलनयन भगवान् राममें अज्ञानका लेश भी नहीं है क्योंकि वे मायाके अधिष्ठान हैं इसलिये वह उन्हें मोहित नहीं कर सकती ॥२४॥ हे पार्वति ! इस विषयमें मैं तुम्हें सीता, राम और हनुमानजीका मोक्षका साधनरूप संवाद सुनाता हूँ जो अत्यन्त गोपनीय और परम दुर्लभ है ॥२५॥

पूर्वकालमें रामावतारके समय जब युद्धप्रिय श्रीरामचन्द्रजी देवताओंके कण्टकरूप रावणको संतान, सेना और वाहनोंके सहित युद्धमें मारकर सीता, सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित हनुमान् आदि वानरोंसे विरुद्ध हुए अयोध्यापुरीमें आये ॥ २६-२७ ॥ और वहाँ आकर राज्याभिषेक होनेपर वसिष्ठ आदि महात्माओंसे धिर कर करोड़ों सूर्योंकी प्रभा धारणकर जब सिंहासनपर विराजनान हुए ॥ २८ ॥ उस समय कृतकृत्य और भोगेच्छारहित महामति हनुमानजीको ज्ञानाभिलाषासे अपने सम्मुख हाथ जोड़े खड़े देखकर श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीसे ऐसा कहा—“सीते ! यह हनुमान् हम दोनोंमें अत्यन्त भक्ति रखता है, इसलिये यह निष्पाप है और ज्ञानका सुयोग्य पात्र है। अतः तुम इसे मेरे तत्त्वका उपदेश करो” ॥ २९-३० ॥ तब लोक-विमोहिनी जनकनन्दिनी सीताजी श्रीरामचन्द्रजीसे ‘बहुत अच्छा’ कह शरणागत हनुमानको भगवान् रामका निश्चित तत्त्व वताने लगी ॥ ३१ ॥

सीताजीने कहा—“वत्स हनुमान् ! तुम रामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दधन परब्रह्म समझो; ये निःसन्देह समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्त्वामात्र, इन्द्रियोंके अविषय, आनन्दधन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं ॥ ३२-३३ ॥ और मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाली मूल-प्रकृति जानो । मैं ही निरालस्य होकर इनकी सत्त्विभिन्नतासे इस विश्वकी रचना किया

तत्सान्निध्यानमया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यते ऽबुधै ॥  
 अयोध्यानगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले ॥३५॥

विश्वामित्रसहायत्वं मखसंरक्षणं ततः ।  
 अहल्याशापशमनं चापभङ्गो महेशितुः ॥३६॥

भूमत्पाणिग्रहणं पश्चाद्वार्गवस्य मदक्षयः ।  
 अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशवार्षिकः ॥३७॥

दण्डकारण्यगमनं विराधवृध एव, च ।  
 मायामारीचमरणं मायासीताहृतिस्तथा ॥३८॥

जटायुषो मोक्षलाभः कवन्धस्य तथैव च ।  
 शवर्याः पूजनं पश्चात्सुग्रीविण समागमः ॥३९॥

वालिनश्च वधः पश्चात्सीतान्वेषणमेव च ।  
 सेतुवन्धश्च जलधौ लङ्कायाश्च निरोधनम् ॥४०॥

रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मनः ।  
 विभीषणे राज्यदानं पुष्पकेण मया सह ॥४१॥

अयोध्यागमनं पश्चाद्राज्ये रामाभिषेचनम् ।  
 एवमादीनि कर्माणि भयैवाच्चरितान्यपि ॥

आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ४२  
 रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच-  
 त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ।  
 आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो  
 मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति ॥४३॥

ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् ।  
 पृष्ठु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ४४

आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ।  
 जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ।  
 प्रतिविम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥४५॥

करती हूँ ॥३४॥ तो भी इनकी सन्निधिमात्रसे की हुई मेरी रचनाको बुद्धिहीन लोग इनमें आरोपित कर लेते हैं। अतएव, अयोध्यापुरीमें अत्यन्त पवित्र रघुकुलमें इनका जन्म लेना ॥३५॥ फिर विश्वामित्रजीकी सहायता करना, उनके यज्ञकी रक्षा करना, अहल्याको शाप-मुक्त करना, श्रीमहादेवजीके धनुषको तोड़ना ॥३६॥ तत्पश्चात् मेरा पाणिग्रहण करना, परशुराम-जीका गर्व-खण्डन करना तथा बारह वर्षतक मेरे साथ अयोध्यापुरीमें रहना ॥३७॥ फिर दण्डकारण्यमें जाना, विराधका वध करना, माया-मूर्गरूप मारीचका मारा जाना, मायामयी सीताका हरा जाना ॥३८॥ तदनन्तर जटायु और कवन्धका मुक्त होना, शवरीद्वारा भगवान्का पूजित होना और सुग्रीवसे मित्रता होना ॥३९॥ फिर वालिका वध करना, सीताजीकी खोज कराना, समुद्रका पुल बँधवाना और लङ्कापुरीको छेर लेना ॥४०॥ तथा पुत्रोंके सहित दुरात्मा रावण-को शुद्धमें मारना एवं विभीषणको लङ्काका राज्य देकर पुष्पक-विमानद्वारा मेरे साथ अयोध्या लौट आना, फिर श्रीरामजीका राज्यपदपर अभिषिक्त होना—इत्यादि समस्त कर्म यद्यपि मेरे ही किये हुए हैं तो भी अङ्गानी लोग उन्हें इन निर्विकार सर्वात्मा भगवान् राममें आरोपित करते हैं ॥४१-४२॥ ये राम तो (वास्तवमें) न चलते हैं, न ठहरते हैं, न शोक करते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं और न कोई अन्य क्रिया ही करते हैं। ये आनन्दस्तरूप, अविचल और परिणाम-हीन हैं, केवल मायाके गुणोंसे व्याप्त होनेके कारण ही ये वैसे प्रतीत होते हैं ॥४३॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने सम्मुख खड़े हुए पवन-पुत्र हनुमानसे स्वयं कहा—“मैं तुम्हें आत्मा, अनात्मा और परात्माका तत्त्व बताता हूँ, (सावधान होकर) सुनो ॥४४॥ जलाशयमें आकाशके तीन भेद स्पष्ट दिखायी देते हैं—एक महाकाश<sup>१</sup>, दूसरा जलावच्छिन्न आकाश<sup>२</sup> और तीसरा प्रतिविम्बाकाश<sup>३</sup>। जैसे आकाशके ये तीन बड़े-बड़े भेद दिखायी देते हैं ॥४५॥ उसी प्रकार चेतन भी तीन प्रकारका

१, जो सर्वद्य व्याप्त है। २, जो केवल जलाशयमें ही परिसित है। ३, जो जलमें प्रतिविम्बित है।

बुद्ध्यवच्छिन्नचेतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ।  
आभासस्त्वपरं विम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥४६॥

साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ।  
साक्षिण्यारोप्यते आनन्द्या जीवत्वं च तथाऽबुधैः ॥४७॥

आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ।  
अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥४८॥

अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते ।  
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥४९॥

एकयज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनो ।  
तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येवं न संशयः ॥५०॥

एतद्विज्ञाय मङ्गलो मङ्गवायोपपद्यते ।  
मङ्गलिविमुखानां हि शास्त्रगतेषु मुद्यताम् ।  
न ज्ञानं न च मोक्षः स्याचेषां जन्मशतैरपि ॥५१॥

हृदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो  
मयैव साक्षात्कथितं तवानध ।  
मङ्गलिहीनाय शठाय न त्वया  
दात्रव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽविकम् ॥५२॥

श्रीमहादेव उवाच

एतत्तेऽभिहितं देवि श्रीरामहृदयं भया ।  
अतिगुह्यतमं हृदयं पवित्रं पापशोधनम् ॥५३॥

साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसंग्रहम् ।  
यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः ॥५४॥

ब्रह्महत्यादिपापानि वहुजन्माज्ञितान्यपि ।  
नश्यन्त्येवं न सन्देहो रामस्य वचनं यथा ॥५५॥

है—एक तो बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन (जो बुद्धिमें व्याप्त है), दूसरा जो सर्वत्र परिपूर्ण है और तीसरा जो बुद्धिमें प्रतिविम्बित होता है—जिसको आभास-चेतन कहते हैं ॥ ४६ ॥ इनमेंसे केवल आभास-चेतनके सहित बुद्धिमें ही कर्तृत्व है अर्थात् चिदाभासके सहित बुद्धि ही सब कार्य करता है । किन्तु अज्ञजन भ्रान्तिवश निरवच्छिन्न, निर्विकार, साक्षी आत्मामें कर्तृत्व और जीवत्वका आरोप करते हैं अर्थात् उसं ही कर्त्ता-भौत्का मान लेते हैं ॥ ४७ ॥ (हमने जिसे जीव कहा है उसमें) आभास-चेतन तो मिथ्या है (क्योंकि सभी आभास मिथ्या ही हुआ करते हैं) । बुद्धि अविद्याका कार्य है और परमव्य परमात्मा वान्नत्रमें विच्छेदरहित है अतः उसका विच्छेद भी विकल्पसे ही माना हुआ है ॥ ४८ ॥ (इसी प्रकार उपाधियोंका वाध करते हुए) साभास अहंरूप अत्रच्छिन्न चेतन (जीव) की 'तत्त्वमसि' (त. वह है) आदि महावाक्योद्घारा पूर्ण चेतन (ब्रह्म) के साथ प्रकृता ब्रतलार्या जाती है ॥ ४९ ॥ जब महावाक्यद्घारा (इस-प्रकार) जीवात्मा और परमात्माका प्रकृताका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है उस समय अपने कायोंनन्दित अविद्या नष्ट हो ही जाती है—इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ मेरा भल्ल इस उपर्युक्त तत्त्वको नन्दित कर मेरे खस्तपको प्राप्त होनेका पात्र हो जाता है पर जो लोग मेरी भक्तिको छोड़कर शास्त्रस्तप गढ़में पड़े भटकते रहते हैं उन्हें सौ जन्मतक भी न तो ज्ञान होता है और न मोक्ष ही प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे अनन्द ! यह परम रहस्य मुझ आत्मस्वरूप रामका हृदय है; और साक्षात् मैंने ही तुम्हें सुनाया है। यदि तुम्हें इन्द्रलोकके राज्यसे भी अधिक सम्पत्ति मिले तो भी तुम इसे मेरी भक्तिसे हीन किसी दुष्ट पुरुषको मत सुनाना” ॥ ५२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि ! मैंने तुम्हें यह अत्यन्त गोपनीय, हृदयहारी, परम पवित्र और पापनाशक 'श्रीरामहृदय' सुनाया है ॥ ५३ ॥ यह समझ वेदान्तका सार-संग्रह साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीका कहा हुआ है । जो कोई इसे भक्तिपूर्वक पढ़ता है वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥ इसके पठन-मात्रसे अनेक जन्मोंके सञ्जित ब्रह्महत्यादि समस्त पाप निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि श्रीरामके वचन

योऽतिअष्टोऽतिपापी परधनपरदा-  
रेषु नित्योद्यतो वा  
स्तेयी ब्रह्ममातापितृवधनिरतो  
योगिष्ठदोपकारी ।  
यः संपूज्याभिरामं पठति च हृदयं  
रामचन्द्रस्य भक्त्या  
योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते  
सर्वदेवैः स पूज्यम् ॥५६॥

ऐसे ही हैं ॥ ५५ ॥ जो कोई अत्यन्त भ्रष्ट, अतिशय पापी, परधन और परखियोंमें सदा प्रवृत्त रहनेवाला, चोर, ब्रह्म-हत्यारा, माता-पिताका वध करनेमें लगा हुआ और योगिजनोंका अहित करनेवाला मनुष्य भी श्रीरामचन्द्रजीका पूजनकर इस रामहृदयका भक्तिपूर्वक पाठ करता है वह समस्त देवताओंके पूज्य उस परमपदको प्राप्त होता है जो योगिराजोंको भी परम दुर्लभ है ॥५६॥

इति श्रीमद्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे  
श्रीरामहृदयं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

## द्वितीय सर्ग

भारपीडिता पृथिवीका ब्रह्मादि देवताओंके पास जाना और भगवान्‌का उनकी  
प्रार्थनासे प्रकट होकर उन्हें धैर्य बँधाना ।

पार्वत्युवाच  
धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थस्मि जगत्प्रभो ।  
विन्छिन्नो मेऽतिसन्देहग्रन्थर्भवदनुग्रहात् ॥ १ ॥  
त्वन्मुखाद्विलितं रामतत्वामृतरसायनम् ।  
पिवन्त्यामे मनो देव न तृप्यति भवापहम् ॥ २ ॥  
श्रीरामस्य कथा त्वत्तः श्रुता संक्षेपतो मया ।  
इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण स्फुटाक्षरम् ॥ ३ ॥

श्रीमहादेव उवाच  
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।  
अध्यात्मरामचरितं रामेणोक्तं पुरा सम ॥ ४ ॥  
तदद्य कथयिष्यामि शृणु तापत्रयापहम् ।  
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुरज्ञानोत्थमहामयात् ।  
प्राप्नोति परमामृद्धि दीर्घायुः पुत्रसन्ततिम् ॥ ५ ॥  
भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखा-  
शेयरक्षोगणानां  
धृत्वा गोरुपमादौ दिविजसुनिजनैः  
साक्रमञ्जासनस्य ।

पार्वतीजी बोलीं—हे जगत्प्रभो ! आपकी कृपासे अनुगृहीत होकर मैं धन्य और कृतकृत्य हो गयी तथा मेरी कठिन सन्देहग्रन्थि दूष गयी ॥ १ ॥ हे देव ! आपके मुखसे चूते हुए भवभयहारी रामतत्वरूप अमृतमय रसायनका पान करते-करते मेरा मन तःस नहीं होता ॥ २ ॥ मैंने आपके मुखसे श्रीरामचन्द्रजीकी कथा संक्षेपसे सुनी । अब मैं उसे स्पष्ट शब्दोंमें विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूँ ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे देवि ! सुनो, मैं तुम्हें गुणसे भी गुद्ध महान् अध्यात्मरामायण सुनाता हूँ जो पहले मुझे श्रीरामचन्द्रजीने ही सुनायी थी ॥ ४ ॥ अब मैं तुम्हें वह तापत्रयहारिणी अध्यात्मरामायण सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनो । इसके सुननेसे जीव अज्ञान-जन्य महामयसे छूट जाता है और परम ऐश्वर्य, दीर्घ आयु तथा पुत्र-पौत्रादि प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

एक बार रावण आदि राक्षसोंके भाससे व्यथित हो पृथिवी गैका रूप धारणकर देवता और मुनिजनोंके सहित श्रीब्रह्माजीके लोकको गयी । वहाँ पहुँचकर उसने रोते हुए, अपनेपर पड़ा हुआ सारा दुःख

गत्वा लोकं रुदन्ती व्यसनमुपगतं  
ब्रह्मणे प्राह सर्वं  
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदा-  
जेदशेषात्मकत्वात् ॥ ६ ॥

तस्मात्क्षीरसशुद्रतीरमगमद्  
ब्रह्माथ देवैर्वृतो  
देव्या चाखिललोकहत्यमजरं  
सर्वज्ञमीशं हरिम्।

अस्तौषीच्छुतिसिद्धनिर्मलपदैः  
स्तोत्रैः पुराणोऽवै-  
भक्त्या गद्ददया गिरातिविमलै-  
रानन्दवाप्नैर्वृतः ॥ ७ ॥

ततः सुरत्सहस्रांशुसहस्रसद्शश्रमः।  
आविरासीद्विः प्राच्यां दिशां व्यपनयंस्तमः ॥ ८ ॥

कथंचिद्दृष्टवान्ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम्।  
इन्द्रनीलप्रतीकाशं सितासं पञ्चलोचनम् ॥ ९ ॥

किरीटहारकेयुरकुण्डलैः कटकादिभिः।  
विभ्राजमानं श्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम् ॥ १० ॥

स्तुवद्द्विः सनकाद्यैश्च पार्पदैः परिवेष्टितम्।  
शङ्खचक्रगदापञ्चनमालाविशजितम् ॥ ११ ॥

खण्डयज्ञोपवीतेन खण्डवर्णम्बरेण च।  
श्रिया भूम्या च सहितं गह्योपरि संस्थितम् ॥ १२ ॥

हर्षगद्ददया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ १३ ॥

वस्त्रोवाच

नतोऽसि ते पदं देव प्राणशुद्धीनिद्रात्मसिः।  
यच्चिन्त्यते कर्मपाशाद्धृदि नित्यं सुमुक्षुसिः ॥ १४ ॥

मायया गुणमव्या त्वं सृजस्यवसि लुम्पसि।  
जगत्तेन न ते लेय आनन्दानुभवात्मनः ॥ १५ ॥

तथा शुद्धिर्न दुष्टानां दानाव्ययनकर्मसिः।  
शुद्धात्मता ते चशसि सदा भक्तिभूतां यथा ॥ १६ ॥

ब्रह्माजीसे कहा । तब ब्रह्माजीने एक मुद्रात्मक व्यानस्थ हो अपने मनमें उसकी दुःख-निवृत्तिका सम्पूर्ण उपाय जान लिया क्योंकि वे सर्वान्तर्यामी हैं ॥ ६ ॥ तत्पथात् वहाँसे समस्त देवताओंके सहित श्रीब्रह्माजी पृथिव्यको साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गंगे और वहाँ उन्होंने अत्यन्त निर्मल आनन्दाश्रुओंसे परिपूर्त हो अग्निलोकान्तर्यामी, अजर, सर्वज्ञ, भगवान् हरिका अति निर्मलियुक्त गद्दद-वाणीसे श्रुतिसिद्ध किंगल पदों और पुराणोक्त स्तोत्रोद्धारा स्तुति की ॥ ७ ॥ तब सद्गुरों देदीप्यमान सूर्योंके समान ग्रभाशाली भगवान् हरि ( अपने तेजसे ) सब दिशाओंके अन्धकारको दूर करते हुए पूर्व-दिशामें ग्रवट हुए ॥ ८ ॥ पुण्यहीन पुरुषोंके लिये अत्यन्त दुर्दर्शनाय भगवान् हरिको ( उनके अमित तेजके कारण ) ब्रह्माजीने भी वही कठिनतासे देख पाया । इन्द्रनीलगणिके समान उनका तेजोमय इयाम वर्ण था, सुनपर मधुर मुग्धकान थी और कमलके समान विशाल और गनोहर नेत्र थे ॥ ९ ॥ वे किरीट, हार, केन्द्र, छुण्डल और कटक आदि आभूपणोंसे सुदोषित तथा श्रीकल्प और कांस्तुभमणिकी ग्रभासे शुक्ल थे ॥ १० ॥ उन्हें स्तुति करते हुए सनकादि पार्पद चारों ओरसे थे हुए थे और उनकी शरीर, चक्र, गदा, पदम तथा वनमालासे अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ ११ ॥ वे उन्हरों वहाँपर्वत और पीताम्बरसे सुशोभित पूर्व लक्ष्मी और भूमिके सहित गहडपर विभ्राजमान थे । (उनकी पूर्ण दिव्य छविको देखकर ) पितामह ब्रह्माजी हर्षने गद्ददकण्ठ हो स्तुति करने लगे ॥ १२-१३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव ! कर्म-पाशसे मुक्त होनेके लिये सुमुक्षुजन अपने प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और मनसे जिनका नित्य चिन्तन करते हैं आपके उन चरणारविन्दोंको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ आप अपनी त्रिगुणमयी मायाका आश्रय करके ही इस जगत्की उत्पत्ति, पालन और लय करते हैं; किन्तु ज्ञानानन्दस्वरूप आप इससे लिस नहीं होते ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आपके विमल यशमें सदा प्रेम रखनेवाले भक्तोंका अन्तःकरण जैसा शुद्ध होता है वैसी शुद्धि मलिन अन्तःकरणवाले पुरुष दान और अच्युत आदि शुद्ध कर्मोंसे नहीं प्राप्त कर सकते ॥ १६ ॥ अतः भक्त मुनि-

अतस्तवाङ्गिर्मे दृष्टिक्षितदोपायनुत्तये ।  
सद्योऽन्तर्हृदये नित्यं मुनिभिः सात्वतैर्वृतः ॥१७॥

ब्रह्मादैः स्वार्थसिद्ध्यर्थमसामिः पूर्वसेवितः ।  
अपरोक्षानुभूत्यर्थं ज्ञानिभिर्हृदि भावितः ॥१८॥

तवाङ्गिर्पूजानिर्माल्यतुलसीमालया विभो ।  
स्पर्धते वक्षसि पदं लब्ध्वापि श्रीः सपत्निवत् ॥१९॥

अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्तिः श्रियोऽधिका ।  
भक्तिमेवाभिवाङ्ग्नित्तत्वद्वक्ताः सारवेदिनः ॥२०॥

अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ।  
संसारामयतसानां भेषजं भक्तिरेव ते ॥२१॥

इति ब्रुवन्तं ब्रह्माणं वभाषे भगवान् हरिः ।  
—किं करोमीति तं वेधाः प्रत्युवाचातिहृषितः ॥२२॥

भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान् ।  
राक्षसोनामधिपतिर्महत्त्वरदर्पितः ॥२३॥

त्रिलोकीं लोकपालांश्च वाधते विश्ववाधकः ।  
मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याण कलिपता ॥

अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

कश्यपस्य वरो दचस्तपसा तोषितेन मे ॥२५॥

याचितः पुत्रभावाय तथेत्यज्ञीकृतं मया ।  
स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले ॥२६॥

तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने ।  
चतुर्धात्मानमेवाहं सुजामीतरयोः पृथक् ॥२७॥

योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा ।  
उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्दये विष्णुर्ब्रह्मा देवानथाब्रवीत् ॥२८॥

जन जिनका निरन्तर अपने हृदयमें ध्यान करते हैं ऐसे आपके चरण-कमलोंका आज मैंने अपने अन्तःकरणके दोषोंका तत्क्षण नाश करनेके लिये दर्शन किया है ॥ १७ ॥ आपके इन चरण-कमलोंका पहले भी हम ब्रह्मा आदि देवगणने अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये सेवन किया है और ज्ञानी मुनिजनोंने अपरोक्षानुभवके लिये अपने हृदयमें निरन्तर ध्यान किया है ॥ १८ ॥ हे विभो ! लक्ष्मीजी आपके वक्षःस्थलमें स्थान पाकर भी आपकी चरणपूजाके समय चढ़ी हुई तुलसीकी मालासे सौतकी तरह डाह करती है ॥ १९ ॥ आपके चरण-कमलोंमें प्रेम रखनेवाले भक्तोंमें आपका प्रेम लक्ष्मीजीसे भी बढ़कर है । इसलिये आपके सारग्राही भक्तजन केवल आपकी भक्तिकी ही इच्छा करते हैं ॥ २० ॥ अतएव हे देव ! आपके चरण-कमलोंमें मेरी सर्वदा भक्ति रहे क्योंकि संसार-रोगके रोगियोंके लिये आपकी भक्ति ही एकमात्र औषध है ॥ २१ ॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्मासे भगवान् हरिने कहा, “मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ ?” तब ब्रह्माने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥ २२ ॥ “भगवन् । पुलस्त्य-नन्दन विश्रवाका पुत्र रावण राक्षसोंका राजा है । वह मेरे घरके प्रभावसे अत्यन्त अभिमानी हो गया है ॥ २३ ॥ वह सम्पूर्ण विश्वका बाधक तीनों लोकों और लोक-पालोंको पीड़ा पहुँचाता है । हे कल्याणरूप ! मैंने उसकी मृत्यु मनुष्यके हाथ रखी है । इसलिये हे प्रभो ! आप मनुष्य-रूप धारणकर उस देवशत्रुका बध कीजिये” ॥ २४ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैंने कश्यपकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उन्हें वर दिया था । उन्होंने मुझसे पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेकी प्रार्थना की थी, तब मैंने ‘बहुत अच्छा’ कह उसे सीकार कर लिया था । इस समय वे पृथिवीपर राजा दशरथ होकर विद्यमान हैं ॥ २५-२६ ॥ उन्हींके यहाँ पुत्ररूपसे पृथक्-पृथक् चार अंशोंमें प्रकट होकर मैं शुभ दिनमें कौशल्याके और अन्य दो माताओंके गर्भसे जन्म लेंगा ॥ २७ ॥ उसी समय मेरी योगमाया भी जनकजीके घरमें सीतारूपसे उत्पन्न होगी; उसको साथ लेकर मैं तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करूँगा । ऐसा कह भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये; तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच

विष्णुर्मानुपरूपेण भविष्यति रघोः कुले ॥२९॥  
 यूर्धं सुजध्वं सर्वेऽपि वानरेष्वशसम्भवान् ।  
 विष्णोः सहार्थं कुरुते यावत्स्थास्यति भूतले ॥३०॥  
 इति देवान्समादिद्य समाश्वास्य च मेदिनीस् ।  
 यथौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः ॥३१॥  
 देवाश्वं सर्वे हरिरूपधारिणः  
 स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः ।  
 महावर्लाः पर्वतशृक्षयोधिनः  
 अतीक्षमाणा भगवन्तसीश्वरम् ॥३२॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु रघुबुलमें मनुष्य-  
 रूपसे अवतार लेंगे । तुम लोग भी सब अपने-अपने  
 अंशसे वानर-वंशमें पुत्र उत्पन्न करोतथा जबतक श्रीविष्णु  
 भगवान् भूलोकमें रहें तबतक उनकी सहायता करते  
 रहो ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार देवताओंको आज्ञा दे  
 और पृथिवीको द्वादस बँधा ब्रह्माजी अपने लोकों  
 चले गये और वहाँ निश्चिन्त होकर मुख्यपूर्वक रहने  
 लगे ॥ ३१ ॥ इवर समला देवगग पर्वत और वृक्षोंसे  
 लड़नेवाले महावलवान् वानरोंका रूप धारण कर  
 भगवान्की सहायताके लिये उनका प्रतीक्षा करते  
 हुए जहाँ-तहाँ रहने लगे ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्व्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे  
 बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

## तृतीय सर्ग

भगवान्का जन्म और वाललौला

श्रीमहादेव उवाच

अंथ राजा दशरथः श्रीमान्सत्यपरायणः ।  
 अयोध्याधिपतिर्विरिः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ १ ॥  
 सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा ।  
 वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ २ ॥  
 स्थामिन्पुत्राः कथं स्युः सर्वलक्षणलक्षिताः ।  
 पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखायं कल्पते ॥ ३ ॥  
 ततोऽब्रवीद्विसिष्टस्तं भविष्यन्ति सुतास्तव ।  
 चत्वारः सत्यसम्यचा लोकपाला इवापराः ॥ ४ ॥  
 शान्ताभर्तरिमानीय ऋष्यशृङ्गः तपोधनम् ।  
 अस्माभिः सहितः पुत्रकार्मणि शीघ्रमाचर ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक बार सकलोकप्रसिद्ध  
 सत्यपरायण श्रीमान् अयोध्यापति ब्रह्मवर भहाराज  
 दशरथने पुत्रके न होनेसे अत्यन्त दुःखित हो अपने  
 कुलके आचार्य गुरुवर वशिष्ठजीको बुला उन्हें प्रणाम कर  
 इस प्रकार कहा ॥ १-२ ॥ “लाभिन् ! यह बताइये  
 कि मेरे सर्व सुलक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र किस प्रकार हो  
 सकते हैं ? क्योंकि विना पुत्रके यह सम्पूर्ण राज्य मुझे  
 दुःखरूप हो रहा है” ॥ ३ ॥

तब राजा दशरथसे वशिष्ठजीने कहा—“तुम्हारे  
 साक्षात् दूसरे लोकपालोंके समान अत्यन्त सामर्यवान्  
 चार पुत्र होंगे ॥ ४ ॥ तुम शान्ताके पति तपोधन  
 ऋष्यशृङ्गः को बुलाकर शीघ्र ही हमें साथ लेकर  
 पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान करो” ॥ ५ ॥

६ ऋष्यशृङ्ग मुनिवर विभाण्डकके पुत्र थे । एक बार विभाण्डक मुनि एक कुण्डमें समाधि लगाये देखे थे, उस  
 समय उधरसे उवंशी अप्सरा निकली । उसे देखकर मुनिका वीर्य सखलित हो गया । उसे जलके साथ एक  
 मूर्गी पी गयी । उसीसे इनका जन्म हुआ । माताके समान इनके शिरपर भी शृङ्ग ( सींग ) होनेकी सम्भावना थी,  
 इसलिये पिता विभाण्डकने इनका नाम ऋष्यशृङ्ग रखा । एक बार अङ्ग देशमें घोर अनाश्रित रहा ।

तथेति मुनिमानीय मन्त्रभिः सहितः शुचिः ।  
 यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वितकहमैः ॥६॥  
 अद्या हृषमानेऽप्यौ तप्तजाम्बूनदप्रभः ।  
 पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हृष्यवाट् ॥७॥  
 गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम् ।  
 लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः ॥८॥  
 इत्युक्त्वा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः ।  
 चञ्चन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः ॥९॥  
 वसिष्ठुक्त्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हविः ।  
 कौसल्यायै सकैकेक्यै अर्धमध्यं प्रयत्नतः ॥१०॥  
 ततः सुमित्रा संप्राप्ता जगृच्छुः पौत्रिकं चरुम् ।  
 कौसल्या तु स्वभागार्थं ददौ तस्यै मुदान्विता ॥११॥  
 कैकेयी च स्वभागार्थं ददौ प्रीतिसमन्विता ।  
 उपभुज्य चरुं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः ॥१२॥  
 देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमन्दरे ।  
 दशंमे मासि कौसल्या सुषुप्ते पुत्रमद्दुतम् ॥१३॥  
 मदुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे ।  
 पुनर्वस्तृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपत्नके ॥१४॥  
 मेषं पूषणि संप्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले ।  
 आविरासीजगन्नाथः परमात्मा सनातनः ॥१५॥  
 नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः ।  
 जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः ॥१६॥

राजाने “बहुत अच्छा” कह मुनिधर ऋष्यशृंगकी बुलाया और मन्त्रियोंके सहित पवित्र होकर निष्पाप मुनिजनोंकी सहायतासे यज्ञानुष्ठान आरम्भ किया ॥६॥ यज्ञानुष्ठानके समय अग्निमें श्रद्धापूर्वक आहुति देनेपर तप्तसुवर्णके समान दीप्तिमान् हृष्यवाहन भगवान् अग्नि एक स्वर्णपात्रमें पायस लेकर प्रकाट हुए और बोले ॥७॥ “हे राजन् ! यह देवताओंकी वनायी हुई पुत्रप्रदायिनी दिव्य पायस (खीर) लो । इसके द्वारा तुम निस्सन्देह साक्षात् परमात्माको पुत्ररूपसे प्राप्त करोगे” ॥८॥

अग्निदेव ऐसा कहकर और वह खीर राजाको देकर अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर राजाने सफल-मनोरथ हो मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ और ऋष्यशृङ्गकी चरण-वन्दना की और उन दोनोंकी आज्ञासे बड़ी सावधानीके साथ वह हवि महारानी कौसल्या और कैकेयीमें आधी-आधी बाँट दी ॥९-१०॥ तदनन्तर उस पुत्र देनेवाले चरुको लेनेकी इच्छासे सुमित्राजी भी वहाँ आ पहुँची । इसपर कौसल्याजीने प्रसन्नतापूर्वक अपने भागमेंसे आधा उन्हें दे दिया ॥११॥ तथा कैकेयीने भी प्रीतिपूर्वक अपने भागमेंसे आधा सुमित्राको दिया । इस प्रकार उस हविको खाकर सभी रानियाँ गर्भवती हो गयीं ॥१२॥

वे तीनों रानियाँ उस राजभवनमें अपनी कान्तिसे देवताओंके समान शोभा पाने लगीं । फिर दशवाँ महीना लगनेपर कौसल्याने एक अद्भुत बालकको जन्म दिया ॥१३॥ चैत्रमासके शुरु-पक्षकी नवमीके दिन कर्क-लघ्नमें पुनर्वसु-नक्षत्रके समय जब कि पाँच ग्रह उच्च स्थानमें तथा सूर्य मेघराशिपर थे तब (मध्याह्न-कालमें) सनातन परमात्मा जगन्नाथका आविर्भाव हुआ । उस समय आकाश दिव्य पुष्पोंकी वर्षासे पूर्ण हो गया ॥१४-१५॥ जो नीलकमलदलके समान इयामवर्ण हैं, पीताम्बर पहिने हुए हैं और चार मुजाएँ धारण किये हैं तथा जिनके नेत्रोंके भीतरका भाग अरुण

मुनियोंने अहंनरेता रोमपादसे कहा, यदि वालवह्यचारी ऋष्यशृङ्गको यहाँ स्त्रियाँ लावें तो यृष्टि हो । राजाने इसके लिये देश्याओंको नियुक्त किया । उनमेंसे एक वह्यचारीका वेप वनाकर उन्हें भोहित कर ले आयी । उनके अहंदेशमें आते ही पुष्कल वर्षा हो गयी । राजाने उनका ऐसा अद्दुत प्रभाव देखकर उन्हें अपनी कन्या शान्ता विवाह दी । कहीं-कहीं ऐसा भी कहा जाता है कि यह शान्ता महाराज दशरथकी पुत्री थी और इन्होंने इसे अपने मित्र रोमपादको गोद दे दिया था ।

गत सहस्रार्क्यतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः ।  
 शङ्खचक्रगदापञ्चवनमालाविराजितः ॥१७॥  
 अनुग्रहाख्यहृतस्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः ।  
 करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः ।  
 श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः ॥१८॥  
 हृष्टा तं परमात्मानं कौसल्या विस्याकुला ।  
 हर्षश्चुपूर्णनयना नत्वा प्राञ्छलिरव्रवीत् ॥१९॥  
 कौसल्योवाच  
 देवदेव नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ।  
 परमात्माऽन्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः ॥२०॥  
 वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् ।  
 त्वां वेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम् ॥२१॥  
 त्वमेव मायया विश्वं सुजस्यवसि हंसि च ।  
 सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्य एवामलः सदा ॥२२॥  
 करोषीव न कर्ता त्वं गच्छसीव न गच्छसि ।  
 शृणोषि न शृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि ॥२३॥  
 अप्राणो ह्यसनाः शुद्ध इत्यादि श्रुतिरव्रवीत् ।  
 समः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न लक्ष्यसे ॥२४॥  
 अज्ञानध्वन्तचित्तानां व्यक्त एव सुमेधसाम् ।  
 ब्रठरे तव दश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः ॥२५॥  
 त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान्विष्टव्यसे ।  
 भक्तेषु परवश्यं ते दृष्टं मेऽद्य रघूचम ॥२६॥  
 संसारसागरे मशा पतिषुत्रधनादिषु ।  
 शु अभामि मायया तेऽद्य पादमूलमुपागता ॥२७॥

कमलके समान शोभायमान हैं, कानोंमें कान्तिमान कुण्डल उशोभित हैं ॥ १६ ॥ हजारों सूर्योंके समान जिनका प्रकाश है, जिनके शिरपर प्रकाशमान मुकुट और धूँधुराली अलकोंहैं, हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म तथा नलेमें वैजयन्ती-माला विशालमान हैं ॥ १७ ॥ जिनके मुख-कमलपर हृदयस्थ अनुग्रहरूप चन्द्रमाका रूचना देनेवाली मुस्कानरूप चन्द्रिका छिटक रही है, जिनके करुणा-रस-पूर्ण नयन कमलदलके समान विशाल हैं तथा जो श्रीवत्स, हार, केयूर और नूपुर आदि आग्रहणोंमें विभूषित हैं ॥ १८ ॥ पुत्ररूपसे प्रकट हुए, उन परमामाका देखकर कौसल्याने विस्मयमें व्याकुल हो, नेत्रोंमें आनन्दाश्रु-भर, हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा ॥ १९ ॥  
 श्रीकौसल्याजी चोली-है देवदेव ! आपको नमस्कार है; हे शंख-चक्र-गदा-धर ! आप अन्युत और अनन्त परमात्मा हैं तथा सर्वत्र पूर्ण पुरुषोत्तम हैं ॥ २० ॥ वेदवादीगण आपको मन और ज्ञानी आदिके अधिस्य तथा इन्द्रियोंमें अतीत सत्तामात्र और एकमात्र शान्त्यरूप बतलाते हैं ॥ २१ ॥ आप हीं अपनी मायाके आश्रयसे सत्त्व, रज और तम-इन तीनों गुणोंसे तुक्त होकर इस विश्वकी रूचना, पालन और संदार करते हैं तथापि वासनमें आप सदा निर्मल तुर्गय पद्मसे स्थित हैं ॥ २२ ॥ आप कर्ता नहीं हैं तथापि करते-से प्रतीत होते हैं, चलते नहीं हैं फिर भी चलते-से मात्रम पड़ते हैं, न छुनते हुए भी छुनते-से दिखायी देते हैं और न देखकर भी देखते हुए-से प्रतीत होते हैं ॥ २३ ॥ भगवती श्रुति भी कहती है कि आप 'प्राण और मनसे रहित तथा शुद्ध' हैं। आप सुमल प्राणियोंमें रामान-भावसे स्थित हैं, तथापि जिनका अन्तःकरण अज्ञानान्ध-कारसे ढंका हुआ है उन्हें आप दिखायी नहीं देते, आपका साक्षात्कार उबुद्धि पुरुषोंको ही होता है । हे भगवन् ! आपके उदरमें अनेकों ब्रह्माण्ड परमाणुओंके समान दिखलायी देते हैं तथापि 'आपने मेरे पेटसे जन्म लिया' ऐसा जो आप लंगोंमें प्रकट कर रहे हैं इससे मैंने आज आपकी भक्त-वत्सलता देख ली ॥ २४-२६ ॥ हे प्रभो ! मैं आपकी मायासे मोहित होकर संसार-सागरमें डूबी हुई पति, पुत्र और धन आदिके पेटमें पड़ रही थीं; आज परम सौभाग्यवश आपके चरण-कमलोंकी शरणमें आयी हूँ ॥ २७ ॥ हे देव !

देव त्वद्भूपमेतन्मे सदा तिष्ठतु मानसे ।  
 आवृणोतु न मां माया तव विश्वविमोहिनी ॥२८॥  
 उपसंहर विश्वात्मनदो रूपमलौकिकम् ।  
 दर्शयस्थ महानन्द बालभावं सुकोमलम् ॥  
 ललितालिङ्गनालपैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

यद्यदिष्टं तवास्त्यम्ब तच्छ्वतु नान्यथा ॥३०॥  
 अहं तु ब्रह्मणा पूर्वं भूमेर्भारापनुज्ञये ।  
 ग्राहितो रावणं हन्तुं मानुषत्वमुपागतः ॥३१॥  
 त्वया दशरथेनाहं तपसाऽराधितः पुरा ।  
 मत्पुत्रत्वाभिकाङ्गिष्ठा तथा कृतमनिन्दिते ॥३२॥  
 रूपमेतत्त्वया दृष्टं प्राक्तनं तपसः फलम् ।  
 मदर्शनं विमोक्षाय कल्पते हन्त्यदुर्लभम् ॥३३॥  
 संवादमावयोर्यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि ।  
 स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥३४॥  
 इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रूपोद ह ।  
 बालत्वेऽपीन्द्रनीलाभो विशालाक्षोऽतिसुन्दरः ३५  
 बालारुण्यतीकाशो लालिताखिललोकपः ।  
 अथ राजा दशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम् ।  
 आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह ॥३६॥  
 रामं राजीवपत्राक्षं दृष्टा हर्षाश्रुसंफ्लुतः ।  
 गुरुणा जातकर्माणि कर्तव्यानि चकारसः ॥३७॥  
 कैकेयी चाथ भरतमस्तु कमलेश्वणा ।  
 सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसद्वशाननौ ॥३८॥  
 तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ ।  
 सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः ॥३९॥

आपकी यह मनोहर मूर्ति सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहे और आपकी विश्वविमोहिनी माया मुझे न व्यापे ॥ २८ ॥ हे विश्वात्मन् । अपने इस अलौकिक रूपका उपसंहार कीजिये और परम आनन्ददायक सुकोमल बालरूप धारण कीजिये जिसके अति सुखद आलिंगन और सम्भाषणादिसे मैं घोर अज्ञानान्धकारको पार कर जाऊँगी ॥ २९ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे मातः ! आप जो-जो चाहती हैं वही हो, उसके विरुद्ध कुछ भी न हो । पूर्वकालमें मुझसे पुथियोक्ता भार उतारनेके लिये ब्रह्माने प्रार्थना की थी, अतः रावणादि निशाचरोंको मारनेके लिये ही मैंने मनुष्यरूपसे अवतार लिया है ॥ ३०-३१ ॥ हे अनिन्दिते ! दशरथजीके सहित तुमने भी मुझे पुत्ररूपसे प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्या करते हुए मेरी आराधना की थी । उसीको मैंने इस समय प्रकट होकर पूर्ण किया है ॥ ३२ ॥ तुमने अपनी पूर्व तपस्याके फलसे ही मेरा यह दिव्य रूप देखा है । मेरा दर्शन मोक्ष-पद देनेवाला होता है; पुण्यहीन जनोंके लिये इसका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति हमारे इस संवादको पढ़ेगा या सुनेगा वह मेरी सारूप्यमुक्ति (समानरूपता) प्राप्त करेगा और मरणकालमें उसे मेरा स्मरण रहेगा ॥ ३४ ॥

मातासे इस प्रकार कह भगवान् बालरूप होकर रोने लगे । उनका बालरूप भी इन्द्रनीलमणिके समान इयामवर्ण, बड़े-बड़े नेत्रोंवाला और अति सुन्दर था ॥ ३५ ॥ वह प्रभातकालीन बालसूर्यके समान अरुण-ज्योतिर्मय था । भगवान् ने अवतरित होकर उस सुमनोहर बालरूपसे सभी लोकपालोंको परम आनन्दित कर दिया । तत्पथात् जब महाराज दशरथजीने पुत्रोत्पत्तिका शुभ समाचार सुना तो वे मानो आनन्द-समुद्रमें छूब गये और गुरु वशिष्ठजीके साथ राजभवनमें आये ॥ ३६ ॥ वहाँ आकर कमलनयन रामको देखकर वे आनन्दाश्रुओंसे पूर्ण हो गये और गुरुजीद्वारा उनके जातकर्म आदि आवश्यक संस्कार कराये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर कमलनयनी कैकेयीसे भरतका जन्म हुआ और सुमित्रासे पूर्णचन्द्रके समान मुखवाले दो यमज बालक उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उस समय महाराज दशरथने अति उत्साहपूर्वक सहस्रों ग्राम, बहुत-सा सुवर्ण, अनेक रथ, नाना प्रकारके वस्त्र और शुभलक्षणोंवाली अनेकों गौरँ ब्राह्मणोंको दाँ ॥ ३९ ॥

यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे ।  
तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥४०॥

भरणाङ्गरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ।  
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत ॥४१॥

लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च ।  
द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः ॥४२॥

रामस्तु लक्ष्मणेनाथ विचरन्वालीलया ।  
रमयामास पितरौ चेष्टितैर्षुग्यमापितैः ॥४३॥

भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम् ।  
कण्ठे रत्नमणित्रात्मध्यद्वीपिनखाञ्चितम् ॥४४॥

कर्णयोः स्वर्णसम्पन्नरत्नार्जुनसटालुकम् ।  
शिखानमणिमञ्जीरकटिसूत्राङ्गदैर्वृतम् ॥४५॥

स्मितवक्त्रालपदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम् ।  
अङ्गणे रिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वतः ॥४६॥

दृष्टा दशरथो राजा कौसल्या मुमुदे तदा ।  
भोक्ष्यमाणो दशरथो रामसेहीति चासकृत् ॥४७॥

आहृयत्यतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया ।  
आनयेति च कौसल्यमाह सा सस्मिता सुतम् ॥४८॥

धावत्यपि न शकोति स्याएं योगिमनोगतिम् ।  
अहसन्खयमायाति कर्दमाङ्गितपाणिना ॥४९॥

किञ्चिद्दृग्हीत्वा कवलं पुनरेव पलायते ।  
कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती ॥५०॥

वायतानि विचित्राणि समलङ्घकृत्य राघवम् ।

विज्ञानके द्वारा अज्ञानके नष्ट हो जानेपर मनिजन जिनमें रमण करते हैं अथवा जो अपनी सुन्दरतामें भक्तजनोंके चित्तोंको रमाते (आनन्दमग्न करते) हैं उनका नाम गुरु वशिष्ठजीने 'राम' रखा ॥४०॥ इसी प्रकार गुरुजीने, संसारका पोषण करनेवाला होनेमें दूसरे पुत्रका नाम 'भरत', समस्त सुलक्षण-सम्पन्न होनेमें तीसरेका नाम 'लक्ष्मण' और शत्रुघ्नोंका धानक लगाने, चौथे पुत्रका नाम 'शत्रुघ्न' रखा ॥४१॥ कौनसिया और कैकेयीके दिये हुए पायसांशोंके अनुग्राह लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके और शत्रुघ्नजी भरतजीके जोड़ीदार होकर रहने लगे ॥४२॥ लक्ष्मणजीके माय विचरते हुए श्रीरामचन्द्रजी अपनी बाल-र्थालाओं, चेत्राओं और भोली-भाली बातोंसे माता-पिताको आनन्दित करने लगे ॥४३॥

जिसके ललाटपर मोतियोंसे सजाया हुआ देढ़ाप्य-मान सुवर्णमय अश्वत्थपत्र (पीपलका पत्ता) तथा गलेमें रत्न और मणिसमूहके साथ कीचन्द्रीचम्भे व्याघ्रनग सजाकर गुँथी हुई लड़ियाँ सुशोभित हैं ॥४४॥ कानोंमें अर्जुनवृक्षके कवे फलोंके समान रक्षजटिन सुवर्णके आभूषण लटक रहे हैं, तथा जो दानकारते हुए मणिमय नूपुर सुवर्णमैलला और शाज़्बन्दन संविभित हैं ॥४५॥ उस इन्द्रनील-मणिकांसां आभावाले तथा ग्वल्प दाँतोंसे युक्त मुसकाते हुए मुखवाले बालकको राजभवनके आँगनमें बछड़ेके पीछे-पीछे लग ओर बालगातिरो दीदूमें देख महाराज दशरथ और माता कौसल्या अति आनन्दित होते थे । जिस समय महाराज भोजन करने वैठते तो 'राम ! आ' पेसा कह-कहकर अति हर्ष और प्रेमपूर्वक उन्हें वारम्बार बुलाते । जब खेलमें उन्हें रहनेके कारण वे न आते तो वे कौसल्यासे 'इसे पकड़ ला' पेसा कहकर उन्हें लानेके लिये कहते । किन्तु जो योगिजनोंके चित्तके एकमात्र आश्रय हैं ऐसे पुत्रको कौसल्याजी हँसकर दीड़ती हुई भी न पकड़ पाती । (उस समय माताको थकी देखकर ) वे खर्य ही कीचमें सने हुए हाथोंसे हँसते-हँसते वहाँ आ जाते और एक-आध ग्रास खाकर ही फिर भाग जाते ॥४६-४९॥ माता कौसल्या रामको भली प्रकार बख्तभूषण पहिनाकर प्रतिमास व्यञ्जन बनातीं और वर्ष लगनेपर पूआ,

अपूपान्मोदकान्कुत्वा कर्णशङ्खलिकास्तथा ।  
कर्णपूरांश विविधान् वर्षवृद्धौ च वायनम् ॥५१॥

गृहकृत्यं तथा त्यक्तं तस्य चापल्यकारणात् ।  
एकदा रघुनाथोऽसौ गतो मातरमन्तिके ॥५२॥

भोजनं देहि मे मातर्न श्रुतं कार्यसक्तया ।  
ततः क्रोधेन भाष्टानि लगुडेनाहनत्तदा ॥५३॥

शिक्यस्थं पातयामास गव्यं च नवनीतकम् ।  
लक्ष्मणाय ददौ रामो भरताय यथाक्रमम् ॥५४॥

शत्रुघ्नाय ददौ पथादधि दुर्घं तथैव च ।  
द्वदेन कथिते मात्रे हास्यं कृत्वा प्रधावति ॥५५॥

आंगतां तां विलोक्याथ ततः सर्वैः पलायितम् ।  
कौसल्या धावमानापि प्रस्खलन्ती पदे पदे ॥५६॥

रघुनाथं करे धृत्वा किञ्चिन्नोवाच भासिनी ।  
ब्रालभावं समाश्रित्य मन्दं मन्दं रुरोद ह ॥५७॥

ते सर्वे लालिता मात्रा गाढमालिङ्ग्य यज्ञतः ।  
एवमानन्दसन्दोहजगदानन्दकारकः ॥५८॥

मायावालवपुर्धृत्वा रमयामास दम्पती ।  
अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे ॥५९॥

उपनीता चसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः ।  
धनुर्वेदे च निरताः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥६०॥

वभूर्जगतां नाथा लीलया नररूपिणः ।  
लक्ष्मणस्तु सदा रामभनुगच्छति सादरम् ॥६१॥

सेव्यसेवकभावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा ।  
रामश्चापधरो नित्यं तूणविणान्वितः प्रभुः ॥६२॥

अश्चारुढो यनं याति मृगयायै सलक्ष्मणः ।  
हत्वा दुष्टमृगान्सर्वान्वित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥६३॥

लड्डू, पूरी, कचौड़ी आदि विविध व्यक्तिन् बनाकर (ब्राह्मण-भोजनादि) द्वारा उत्सव मनाती थीं ॥५०-५१॥

रामकी चपलताके कारण कौसल्याने धरका काम करना छोड़ दिया था । एक दिन रामजी माताके पास गये ॥५२॥ और कहा—“माता ! मुझे कुछ खानेको दे ।” किन्तु काममें लगी होनेसे माताने न सुना । तब क्रोधित होकर उन्होंने ढण्डेसे सब बर्तन फोड़ डाले ॥५३॥ तथा छीकेपर रखे हुए गोरस और माखनको गिरा लिया और उसे तथा वहाँ रखे हुए समस्त दूध-दहीको भी क्रमशः लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको बाँट दिया । तब रसोइयेने जाकर माता कौसल्यासे कहा । वह हँसती हुई पकड़नेको दौड़ीं ॥५४-५५॥ माताको आती देखकर वे सब बाल्क मांग गये । माता कौसल्या भी उनके पीछे दौड़ीं, किन्तु वे पग-पगपर फिसलने लगीं ॥५६॥ अन्तमें उन्होंने रामको पकड़ लिया, किन्तु कहा कुछ भी नहीं । इस समय रामजी ब्रालभावसे धीरे-धीरे रोने लगे ॥५७॥ तब उन सबको भयभीत देखकर माताने उन्हें बड़े प्रेमसे हृदय ल्पाकर प्यार किया । इस प्रकार जगदानन्दकारक आनन्द-धन भगवान् राम मायामय ब्रालरूप धारणकर राज-दम्पति दशरथ और कौसल्याको आनन्दित करने लगे । तदुपरान्त कुछ काल बीतनेपर उन चारों भाइयोंने कौमार-अवस्थामें प्रवेश किया ॥५८-५९॥

तब वसिष्ठजीने उनका उपनयन-संस्कार किया और लीलासे ही नररूप धारण करनेवाले सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी (चारों भाई) समस्त शास्त्रोंका मर्म जाननेवाले तथा धनुर्वेद आदि सम्पूर्ण विद्याओंके पारगमी हो गये । उन सब भाइयोंमें लक्ष्मणजी सेव्य-सेवक-भावसे आदरपूर्वक सदा रामचन्द्रजीका अनुगमन करते थे और उसी प्रकार शत्रुघ्नजी सदा भरतजीकी सेवामें उपस्थित रहते थे । भगवान् राम नित्यप्रति लक्ष्मणजीके सहित धनुप, वाण और तरकश धारणकर धोड़ेपर सवार हो मृगयाके लिये बनको जाते और वहाँ दुष्ट मृगोंको मारकर उन सबको पिताजीके अर्पण कर देते ॥६०-६३॥ प्रातःकाल उठकर स्नान

प्रातरुत्थाय सुखातः पितरावभिवाद्य च ।  
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः ॥६४॥  
वन्धुभिः सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम् ।  
धर्मशास्त्रहस्यानि शृणोति व्याकरोति च ॥६५॥

एवं परात्मा मनुजावतारो  
मनुष्यलोकाननुसूत्य सर्वम् ।  
चक्रेऽविकारी परिणामहीनो  
विचार्यमाणे न करोति क्रिक्षित् ॥६६॥

करनेके अनन्तर वे माता-पिताको प्रणाम करते और  
फिर नगरनिवासियोंके समस्त कार्य  
करते ॥ ६४ ॥ फिर भाइयोंसहित भोजन करके  
नित्यप्रति मुनिजनोंसे धर्मशास्त्रोंका मर्म सुनते और  
स्वयं भी उनकी व्याख्या करते ॥ ६५ ॥

इस प्रकार अविकारी और परिणामहीन परमात्मा  
मनुष्यावतार लेकर मनुष्योंके आचरणका अनुगमन  
करते हुए समस्त कार्य किये; पर विचार करके देखा  
जाय तो वे कुछ भी नहीं करते ॥ ६६ ॥

इति श्रीमद्व्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे  
बालकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

### चतुर्थ सर्ग

विश्वामित्रजीका आगमन; राम और लक्ष्मणका उनके साथ जाना  
और ताटकाका वध करना ।

श्रीमहादेव उवाच

कदाचित्कौशिकोऽस्यागाद्योध्यां ज्वलनप्रभः ।  
द्रष्टुं रामं परात्मानं जातं ज्ञात्वा स्वमायया ॥ १ ॥  
दृश्या दशरथो राजा प्रत्युत्थायाचिरेण तु ।  
वसिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ २ ॥  
अभिवाद्य मुनिं राजा प्राञ्छलिर्भक्तिनग्रधीः ।  
कुतार्थोऽस्मि मुनीन्द्राहं त्वदागमनकारणात् ॥ ३ ॥  
त्वद्विधा चदृशृं यान्ति तत्रैवायान्ति संपदः ।  
यदर्थमागतोऽसि त्वं ब्रूहि सत्यं करोमि तत् ॥ ४ ॥

विश्वामित्रोऽपि तं प्रीतः प्रत्युवाच महामतिः ।  
अहं पर्वणि संप्राप्ते दृश्या यष्टुं सुरान्पितृन् ॥ ५ ॥  
यदाऽरमे तदा दैत्या यिधनं कुर्वन्ति नित्यशः ।  
मारीचश्च सुवाहुश्चापरे चानुचरात्मयोः ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक बार अग्निके समान तेजस्वी  
महर्षि विश्वामित्र परमात्माको अपनी ही मायासे रामहृपमें  
प्रकट हुए जान उनके दर्शन करनेके लिये अयोध्या-  
पुरामें आये ॥ १ ॥ उन्हें देखते ही महाराज दशरथ  
तुरन्त उठ खड़े हुए और व्रसिष्ठजीके सहित अगे  
आकर उनका सागत किया और यथाविधि पूजन  
तथा अभिवादन कर राजाने भक्ति-विनश्चन्दित्तसे  
हाथ जोड़कर मुनिसे कहा—“हे मुनीन्द्र ! आपके  
शुभागमनसे आज मैं कृतकृत्य हो गया ॥ २-३ ॥  
जिस घरमें आप-जैसे महानुभाव पवारते हैं उसमें  
सभी सम्पत्तियाँ आ जाती हैं । अब आप यह बताइये  
कि आपका शुभागमन किसलिये हुआ है ? मैं आपसे  
सत्य कहता हूँ, मैं आपकी आज्ञाका पालन अवश्य  
करूँगा” ॥ ४ ॥

तब महामति विश्वामित्रजीने उनसे कहा—“जब कभी  
पर्वकाल उपस्थित हुआ देखकर मैं देव और पितृणों-  
के लिये यजन करना आरम्भ करता हूँ तो सदा ही  
मारीच, सुवाहु और उनके अन्यान्य अनुयायी दैत्यगण  
उसमें विनां डाल देते हैं ॥ ५-६ ॥ अतएव उनका

अतस्तयोर्वधार्थाय ज्येष्ठं रामं प्रथच्छ मे ।  
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा तव श्रेयो भविष्यति ॥७॥  
वसिष्ठेन सहामन्त्र्य दीयतां यदि रोचते ।  
अप्रच्छ गुरुमेकान्ते राजा चिन्तापरायणः ॥८॥  
किं करोमि गुरो रामं त्यक्तुं नोत्सहते मनः ।  
वहुर्वर्षसहस्रान्ते कष्टेनोत्पादिताः सुताः ॥९॥  
चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषां रामोऽतिवल्लभः ।  
रामस्त्वतो गच्छति चेन्न जीवामि कथञ्चन ॥१०॥  
प्रत्याख्यातो यदि मुनिः शापं दास्यत्यसंशयः ।  
कर्थं श्रेयो भवेन्महामसत्यं चापि न सृषेत् ॥११॥

## वसिष्ठ उच्चाच

श्रृणु राजन्देवगुह्यं गोपनीयं प्रथत्वंतः ।  
रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः ॥१२॥  
भूमेर्भावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ।  
स एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ ॥१३॥  
त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मणः सुतः ।  
कौसल्या चादितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी ।  
भवन्तौ तप उग्रं वै तेषाथे बहुवत्सरम् ॥१४॥  
अग्राम्यविषयौ विष्णुपूजाध्यानैकतत्परौ ।  
तदा ग्रसन्नो भगवान्वरदो भक्तवत्सलः ॥१५॥  
वृणीष्व वरमित्युक्ते त्वं मे पुत्रो भवामल ।  
इति त्वया याचितोऽसौ भगवान्भूतभावनः ॥१६॥  
तथेत्युक्त्वाऽद्य पुत्रस्ते जातो रामः स एव हि ।  
शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वयद्यत ॥१७॥  
जातौ भरतशत्रुघ्नौ शङ्खचक्रे गदाभृतः ।  
योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ॥१८॥

वप करनेके लिये तुम अपने बड़े पुत्र रामको भाई लक्ष्मणके सहित मुझे दो, इससे तुम्हारा भी परम कल्याण होगा ॥७॥ इस विषयमें वसिष्ठजीसे सम्मति करके यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम मुझे दोनों कुमारोंको दे दो ।” तब राजाने चिन्ताकुछ होकर एकान्तमें गुरुजीसे पूछा ॥८॥ “हे गुरो ! सहस्रों वर्ष बीतनेपर बड़े कष्टसे मुझे ये देवताओंके सद्वश चार पुत्र मिले हैं । इनमें राम मुझे बहुत ही प्रिय है, सो अब मैं क्या करूँ ? मेरा चित्त तो रामको छोड़नेके लिये तैयार नहीं है । यदि राम यहाँसे चला जायगा तो मैं किसी प्रकार भी जी नहीं सकूँगा ॥९-१०॥ परन्तु यदि मैं सूखा जवाब दूँ तो यह निश्चय है कि मुनि मुझे शाप दे देंगे । अतः अब यह बताइये कि मेरा हित किस प्रकार हो और मैं असत्य-भाषणसे भी कैसे बचूँ ?” ॥११॥

वसिष्ठजी बोले—राजन् ! यह देवताओंकी गुह्य लीला सुनो, इसे किसी प्रकार प्रकट न होने देना चाहिये । ये राम मनुष्य नहीं हैं साक्षात् पुराण-पुरुष परमात्मा ही (अपनी मायासे) इस रूपमें प्रकट हुए हैं ॥१२॥ हे अनधि ! पूर्वकालमें पृथिवीका भार उतारनेके लिये ब्रह्माजीने भगवान्से प्रार्थना की थी, उसे पूर्ण करनेके लिये उन परमेश्वरने तुम्हारे यहाँ कौसल्या-के गर्भसे जन्म लिया है ॥१३॥ पूर्व जन्ममें तुम ब्रह्माजीके पुत्र प्रजापति कश्यप थे और यशस्विनी कौसल्या देवमाता अदिति थीं । उस समय तुम दोनोंने बहुत वर्षोंतक ग्राम्य-विषयोंसे रहित और एकमात्र भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर रहकर बड़ा उप्र तप किया । तब कालान्तरमें भक्तवत्सल वरदायक भगवान् ने तुम दोनोंपर प्रसन्न होकर कहा कि ‘वर माँगो’ तो तुमने (भगवान्से) यही माँगा कि ‘हे निरञ्जन ! आप हमारे पुत्र हों’ तब भूतभावन भगवान् ने कहा कि ‘ऐसा ही हो ।’ इसलिये वे ही विष्णु भगवान् इस समय रामरूपसे तुम्हारे पुत्र हुए हैं और (उनकी सेवा करनेके लिये) शेषजी लक्ष्मणके रूपमें प्रकट होकर उनके अनुयायी हुए हैं ॥१४—१७॥ भगवान् गदाधरके शङ्ख और चक्रने भरत और शत्रुघ्नके रूपसे अवतार लिया है तथा योगमाया जनक-दुलारी सीताजी होकर प्रकट हुई हैं ॥१८॥ इस

विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः।  
 एतद्गुह्यतमं राजन् वक्तव्यं कदाचन ॥१९॥  
 अतः प्रीतेन मनसा पूजयित्वाऽथ कौशिकम्।  
 ग्रेष्यत्वं रमानाथं राघवं सहलक्ष्मणम् ॥२०॥  
 वसिष्ठेनैव मुक्तस्तु राजा दशरथस्तदा।  
 कृतकृत्यसिवात्मानं मेने प्रमुदितान्तरः ॥२१॥  
 आहूय रामरामेति लक्ष्मणेति च सादरम्।  
 आलिङ्ग्य मूर्धन्यविग्राय कौशिकाय समर्पयत् ॥२२॥  
 ततोऽतिहृष्टो भगवान्विश्वामित्रः प्रतापवान्।  
 आशीर्भिरभिनन्दाथ आगतौ रामलक्ष्मणौ ॥२३॥  
 गृहीत्वा चापतूणीरवाणखड्डधरौ ययौ।  
 किञ्चिदेशमतिक्रम्य राममाहूय भक्तिः ॥२४॥  
 ददौ वलां चातिवलां विद्ये द्वे देवनिर्मिते।  
 ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्खामादि न जायते ॥२५॥  
 तत उच्चीर्यं गङ्गां ते ताटकावनमागमन्।  
 विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं सत्यपराक्रमम् ॥२६॥  
 अत्रास्ति ताटका नाम राक्षसी कामरूपिणी।  
 वावते लोकमखिलं जहि तामविचारयन् ॥२७॥  
 तथेति धनुरादाय सगुणं रघुनन्दनः।  
 टङ्गारमकरोचेन शब्देनापूरयद्वनम् ॥२८॥  
 तच्छ्रुत्वाऽसहमाना सा ताटका वोरूपिणी।  
 कोधसंमूर्च्छिता राममभिद्राव मेघवत् ॥२९॥  
 तामेकेन शरेणाशु ताढयामास वक्षसि।  
 पपात विषिने घोरा वमन्ती रुधिरं वहु ॥३०॥

समय विश्वामित्रजी रामसे साताका संयोग करानेके लिये ही आये हैं। हे राजन् ! यह रहस्य अत्यन्त गुह्य है, इसे कभी प्रकाशित मत करना ॥ १९ ॥ ( अब सम्पूर्ण रहस्य तुमको मालूम हो गया है) इसलिये अब तुम प्रसन्न-चित्तसे श्रीविश्वामित्रजीका सत्कार करके लक्ष्मापति श्रीरघुनाथजीको लक्ष्मणसहित इनके साथ भेज दो ॥२ ॥

वसिष्ठजीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने उस समय अपनेको कृतकृत्य माना और प्रसन्न-चित्तसे आदरपूर्वक 'हे राम ! हे राम ! हे लक्ष्मण !' ऐसा कहकर पुकारा तथा उन दोनों भाइयोंके आनेपर उन्हें हृदयसे लगाकर और शिर सूँधकर श्रीविश्वामित्रजीको सौंप दिया ॥ २१-२२ ॥ तब अति प्रतापी भगवान विश्वामित्रजीने उन्हें अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वद देकर सम्मानित किया और फिर धनुप, तरकदा, वाण एवं खड्ग आदिसे सुमजित होकर अपने पास आये हुए राम और लक्ष्मणको साथ लेकर वहाँसे चल पड़े। थोड़ी दूर जानेपर विश्वामित्रजीने भक्तिपूर्वक रामको बुलाया और उन्हें देव-निर्मित ब्रह्म और अतिव्रद्ध नामकी ऐसी दो विद्याएँ दी, जिनके ग्रहण करने से ही लुभा और दुर्बलता आदिकी वाधा नहीं होती ॥ २३-२५ ॥

तदनन्तर गङ्गाजीको पार कर वे ताटकावनमें आये; तब विश्वामित्रजीने सत्यपराक्रमी रामसे कहा ॥ २६ ॥ "यहाँ एक ताटका नामकी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसी रहती है जो इस प्रदेशके समत्त निवासियोंको अत्यन्त कष्ट पहुँचाती है, तुम विना कुछ सोच-विचार किये उसे मार डालो ॥ २७ ॥" तब रघुनाथजीने 'वहुत अच्छा' कह धनुपपर ग्रथ्यज्ञा चढ़ाकर टंकार किया, जिसके शब्दसे वह सम्पूर्ण वन गुजायमान हो गया ॥ २८ ॥ उस शब्दको सुनकर घोररूपिणी ताटका उसे सहन न कर सकने-के कारण क्रोधसे पागल होकर मेघके समान रामकी ओर दौड़ी ॥ २९ ॥ भगवान् रामने तुरन्त ही उसके वक्षःशब्दमें एक वाण मारा, जिससे वह घोर राक्षसी वहुत-सा रुधिर उगलती हुई उस वनमें गिर पड़ी ॥ ३० ॥ फिर शापवश पिशाचताको प्राप्त हुई वह ताटका श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे शापमुक्त होकर एक सर्वालङ्घार-

ततोऽतिसुन्दरी यक्षी सर्वभरणभूषिता ।  
शापात्पिशाचतां प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादतः ॥३१॥  
नत्वा रामं परिकृम्य गता रामाज्ञया दिवम् ॥३२॥  
ततोऽतिहृष्टः परिरभ्य रामं  
मूर्धन्यवद्वाय विचिन्त्य किञ्चित् ।  
सर्वास्त्रजालं सरहस्यमन्त्रं  
प्रीत्याऽभिरामाय ददौ मुनीन्द्रः ॥३३॥

विभूषिता परम सुन्दरी यक्षिणी हो गयी तथा रामचन्द्र-  
जीकी परिकृमा करके उन्हें प्रणामकर उनकी आज्ञासे  
खर्गलोकको चली गयी ॥ ३१-३२ ॥ तब मुनिवर  
विश्वामित्रजीने अति हृषित होकर रामजीका आलिंगन  
किया और उनका शिर सूँघकर कुछ सोच-विचारकर  
रहस्य और मन्त्रादिके सहित समस्त अस्त-शस्त्र  
प्रीतिपूर्वक अभिराम रामको दिये ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्व्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे  
बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥

## पञ्चम सर्ग

मारीच और सुवाहुका दमन तथा अहल्योद्धार

श्रीमहादेव उवाच

तत्र कामाश्रमे रम्ये कानने मुनिसङ्कुले ।  
उपित्वा रजनीमेकां प्रभाते प्रस्थिताः शनैः ॥ १ ॥  
सिद्धाश्रमं गताः सर्वे सिद्धचारणसेवितम् ।  
विश्वामित्रेण संदिष्टा मुनयस्तन्निवासिनः ॥ २ ॥  
पूजां च महतीं चक्रं रामलक्ष्मणयोर्द्वृतम् ।  
श्रीरामः कौशिकं प्राह मुने दीक्षां प्रविश्यताम् ॥३॥  
दर्शयस्व महाभाग कुतस्तौ राक्षसाधमौ ।  
तथेत्युक्त्वा मुनिर्युपुमारेभे मुनिभिः सह ॥ ४ ॥  
मध्याह्ने दद्वशाते तौ राक्षसौ कामरूपिणौ ।  
मारीचश्च सुवाहुश्च वर्षन्तौ रुधिरास्थिनी ॥ ५ ॥  
रामोऽपि घनुरादाय द्वौ वाणौ सन्दधे सुधीः ।  
आकर्णन्तं समाकृष्य विसर्जतयोः पृथक् ॥ ६ ॥  
तयोरेकस्तु मारीचं आमयञ्छतयोजनम् ।  
पातयामास जलधौ तदद्वृतमिवाभवत् ॥ ७ ॥  
द्वितीयोऽग्निमयो वाणः सुवाहुमजयत्क्षणात् ।  
अपरे लक्ष्मणेनाशु हतास्तदनुयायिनः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पर्वति ! तदुपरान्त विश्वामित्र-  
जीके सहित वे दोनों भाई एक रात मुनिजनसंकुलित  
अति सुन्दर उस कामाश्रम नामक वनमें रहकर प्रातः-  
काल होते ही धीरे-धीरे वहाँसे चले ॥ १ ॥ तब वे  
सब सिद्ध और चारणोंसे सेवित सिद्धाश्रमपर आये ।  
वहाँके रहनेवाले मुनिजनोंने विश्वामित्रजीकी आज्ञासे  
शीघ्रतापूर्वक राम और लक्ष्मणका बड़ा सत्कार किया ।  
तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रजीसे कहा—“हे  
मुने ! आप दीक्षामें स्थित होइये ॥ २-३ ॥ और हे  
महाभाग ! हमें केवल यह दिखा दीजिये कि वे राक्षसाधम  
कहाँ हैं ?” तब मुनिवरने ‘बहुत अच्छा’ कहकर  
अन्य मुनियोंके साथ यज्ञ करना आरम्भ कर दिया ॥४॥

मध्याह्नके समय मारीच और सुवाहु नामक वे  
दोनों कामरूपी राक्षस रक्त और अस्थियोंकी वर्पा  
करते दिखायी दिये ॥ ५ ॥ बुद्धिमान् रामने भी दो  
बाण लेकर धनुषपर चढ़ाये और कर्णपर्यन्त खींच-  
कर अलग-अलग उन दोनों राक्षसोंकी ओर  
छोड़े ॥ ६ ॥ उनमेंसे एक बाणने मारीचको  
आकाशमें बुमाते हुए सौ योजनकी दूरीपर समुद्रमें  
गिरा दिया । यह एक बड़ा ही आश्र्य-सा हो गया ॥ ७ ॥ दूसरे अग्निमय बाणने क्षणभरमें सुवाहुको  
भस्म कर डाला तथा जो उनके अन्यान्य अनुयायी थे  
उन सबको तुरन्त ही लक्ष्मणजीने मार डाला ॥ ८ ॥

पुष्पैवैराकिरन्देवा राघवं सहलक्ष्मणम् ।  
देवदुन्दुभयो नेदुस्तुषुः सिद्धचारणः ॥ ९ ॥  
विश्वामित्रस्तु संपूज्य पूजाहं रघुनन्दनम् ।  
अङ्के निवेश्य चालिङ्गं भक्त्या वाष्पाङ्कुलेक्षणः ॥ १० ॥  
भोजयित्वा सह भ्रात्रा रामं पक्षफलादिभिः ।  
पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनाय दिवसत्रयम् ॥ ११ ॥  
चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते कौशिको राममत्रवीत् ।  
राम राम महायज्ञं द्रष्टुं गच्छामहे चयम् ॥ १२ ॥  
विदेहराजनगरे जनकस्य महात्मनः ।  
तत्र माहेश्वरं चापमस्ति न्यस्तं पिनाकिना ॥ १३ ॥  
द्रक्ष्यसि त्वं महासत्त्वं पूज्यसे जनकेन च ।  
इत्युक्त्वा मुनिभिस्ताम्यां ययौ गङ्गासमीपगम् ॥ १४ ॥  
गौतमस्याश्रमं पुण्यं यत्राहल्यास्थिता तपः ।  
दिव्यपुष्पफलोपेतपादपैः परिवेष्टितम् ॥ १५ ॥

मृगपक्षिभैर्हीनं नानाजन्तुविवर्जितम् ।  
द्व्योवाच मुनिं श्रीसान् रामो राजीवलोचनः ॥ १६ ॥  
कस्यैतदाश्रमपदं भाति भास्त्रच्छुभं महत् ।  
पत्रपुष्पफलैर्युक्तं जन्तुभिः परिवर्जितम् ॥ १७ ॥  
आहादयति मेचेतो भगवन् वूहि तत्त्वतः ॥ १८ ॥

## विश्वामित्र उचाच

शृणु राम पुरा वृत्तं गौतमो लोकविश्रुतः ।  
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठतपसाराधयन् हरिम् ॥ १९ ॥  
तस्मै ब्रह्मा ददौ कन्यामहल्यां लोकसुन्दरीम् ।  
ब्रह्मचर्येण सन्तुष्टः शुश्रूषणपरायणम् ॥ २० ॥  
तथा सार्धमिहावात्सीद्वौतमस्तपतां चरः ।  
शक्तस्तु तां धर्षयितुमन्तरं प्रेप्तुरन्वहम् ॥ २१ ॥

उस समय देवताओंने लक्ष्मणजीके सहित श्रीरघुनाथजीपर फूल वरसाये और देवदुन्दुभि आदि वाजोंका घोप किया तथा सिद्ध और चारणगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ विश्वामित्रजीने पूजनीय रघुनाथजीका भली प्रकार पूजन किया और उन्हें गोदमें ले नेत्रोंमें भक्तिपूर्वक प्रेमाश्रु भरकर गले लगा लिए ॥ १० ॥ फिर भाई लक्ष्मणके सहित रामको पके फल आदि खिलाकर पुराण और इतिहासादिका मधुर कथाएँ सुनाते हुए तीन दिन विताये ॥ ११ ॥ चौथा दिन आनेपर विश्वामित्रजीने रामसे कहा—“हे राम ! महात्मा जनकजीका बड़ा भारी यज्ञ देखनेके लिये हमलोग जनकपुर चलेंगे । वहाँ श्रीमहादेवजीका धरोहरके रूपमें रखा हुआ एक बड़ा भारी धनुप है ॥ १२-१३ ॥ उस सुदृढ़ धनुपको तुम देलोगे और महाराज जनक तुम्हारा भली प्रकार सत्कार करेंगे ।” विश्वामित्रजी इस प्रकार कह मुनियोंको और राम-लक्ष्मणको साथ ले गङ्गाजीके निकट मुनिश्रेष्ठ गौतमजीके उस पवित्र आश्रमपर आये जो दिव्य और पवित्र फलांबाले वृक्षोंसे विरा हुआ था और जहाँ अहल्या तप कर रही थी ॥ १४-१५ ॥

कमलनयन श्रीमान् रामजीने उस आश्रमको मृग, पक्षी तथा नाना प्रकारके जीवोंसे रहित देख मुनिवर कौशिकसे कहा ॥ १६ ॥ “यह पत्र, पुण्य और फल आदिसे सम्पन्न तथा जीवशत्य महान् आश्रम जो बड़ा सुन्दर, रमणीय और पवित्र दीख पड़ता है, किसका है ? भगवन् ! इसे देखकर मेरा चित्त अति आहादित हो रहा है; आप इसका सब वृत्तान्त यथावद् कहिये ॥ १७-१८ ॥

श्रोविश्वामित्रजी बोले—हे राम ! इस आश्रमका पूर्व-वृत्तान्त सुनो । पहले इस आश्रममें जगद्विश्वात धार्मिक-श्रेष्ठ मुनिवर गौतमजी तपस्याद्वारा श्रीहरिकी आराधना करते हुए रहते थे ॥ १९ ॥ उनके ब्रह्मचर्यसे सन्तुष्ट होकर भगवान् ब्रह्माजीने उनकी सेवाके लिये उन्हें अहल्या नामकी एक लोकसुन्दरी सेवा-परायणा कन्या दी ॥ २० ॥ और तापसप्रवर गौतमजी उस अहल्याके साथ यहाँ रहने लगे, इधर देवराज इन्द्र अहल्याके रूप-लावण्यपर मुग्ध होकर नित्य-प्रति उसके साथ रमण करनेका अवसर देखने लगे ॥ २१ ॥

कदाचिन्मुनिवेषेण गौतमे निर्गते गृहात् ।  
धर्षयित्वाऽथ निरगात्त्वरितं मुनिरप्यगात् ॥२२॥

दृष्टा यान्तं स्वरूपेण मुनिः परमकोपनः ।  
प्रच्छ कस्त्वं दुष्टात्मन्मम रूपधरोऽधमः ॥२३॥

सत्यं ब्रूहि न चेद्ग्रस्म करिष्यामि न संशयः ।  
सोऽन्नवीदेवराजोऽहं पाहि मां कामकिङ्करम् ॥२४॥

कृतं जुगुप्सितं कर्म मया कुत्सितचेतसा ।  
गौतमः क्रोधताम्राक्षः शशाप दिविजाधिपम् ॥२५॥

योनिलम्पट दुष्टात्मन्सहस्रभगवान्भव ।  
शप्त्वा तं देवराजानं प्रविश्य स्वाश्रमं द्रुतम् ॥२६॥

दृष्टाऽहल्यां वेषमानां प्राञ्जलिं गौतमोऽन्नवीत् ।  
दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम ॥२७॥

निराहारा दिवारात्रं तपः परममास्थिता ।  
आतपानिलवर्षादिसहिष्णुः परमेश्वरम् ॥२८॥

ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि संस्थितम् ।  
नानाजन्तुविहीनोऽयमाश्रमो मे भविष्यति ॥२९॥

एवं वर्षसहस्रेषु द्वनेकेषु गतेषु च ।  
रामो दाशरथिः श्रीमानागमिष्यति सानुजः ॥३०॥

यदा त्वदाश्रयशिलां पादाभ्यामाकमिष्यति ।  
तदैव धूतपापा त्वं रामं संपूज्य भक्तिः ॥३१॥

परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुत्वा शापाद्विमोक्ष्यसे ।  
पूर्ववन्मम शृथूपां करिष्यसि यथासुखम् ॥३२॥

इत्युक्त्वा गौतमः ग्रागाद्विमवन्तं नगोत्तमम् ।  
तदाघहल्या भूतानामदृश्या स्वाश्रमे शुभे ॥३३॥

तव पादरजःस्पर्शं काङ्क्षते पवनाशना ।  
आस्तेऽद्यापि रघुश्रेष्ठ तपो दुष्करमास्थिता ॥३४॥

पावयस्तु मुनेर्मार्यामहल्यां ब्रह्मणः सुताम् ।  
इत्युक्त्वा राघवं हस्ते शृहीत्वा मुनिपुञ्जवः ॥३५॥

एक दिन मुनिवर गौतमके बाहर चले जानेपर वह गौतमके रूपसे अहल्याके साथ रमण कर जलदीसे वहाँसे चलता बना, इसी समय मुनि भी वहाँ लैट आये ॥ २२ ॥ उसे अपना रूप धारण कर वहाँसे जाते देख गौतम मुनिने अत्यन्त कुपित होकर पूछा—“ऐ दुष्टात्मा ! रे अघम ! मेरे रूपको धारण करनेवाला तू कौन है ? ॥ २३ ॥ सच-सच बता, नहीं तो मैं तुझे अभी भस्म कर दूँगा—इसमें सन्देह न करना ।” तब वह बोला—“भगवन् । मैं कामके वशीभूत देवराज इन्द्र हूँ, मेरी रक्षा कर्जिये ॥ २४ ॥ मुझ पापात्माने बड़ा घृणित कार्य किया है ।” तब गौतमने क्रोधसे आँखें लाल कर देवराजको शाप दिया ॥ २५ ॥ “हे दुष्टात्मन् ! तू योनि-लम्पट है इसलिये तेरे शरीरमें सहस्र भग हो जायँ ।” इस प्रकार देवराजको शाप देकर मुनिने अपने आश्रममें प्रवेश किया तो देखा कि अहल्या भयसे काँपती हुई हाथ जोड़े खड़ी है । उसे देखकर गौतमने कहा—“हे दुष्ट ! तू मेरे आश्रममें शिलामें निवास कर ॥२६-२७॥ यहाँ तू निराहार रहकर धूप, वायु और वर्षा आदिको सहन करती हुई दिन-रात तपस्या कर और एकाग्रचित्तसे हृदयमें विराजमान परमात्मा रामका ध्यान कर । अबसे यह मेरा आश्रम विविध प्रकारके जीव-जन्तुओं-से रहित हो जायगा ॥ २८-२९ ॥ इसी प्रकार कई हृजार वर्ष बीत जानेपर यहाँ दशरथ-नन्दन श्रीराम-चन्द्रजी भाई लक्ष्मणके साथ आयेंगे ॥ ३० ॥ जिस समय वे तेरी आश्रयभूत शिलापर अपने दोनों चरण रखेंगे उसी समय तू पाप-मुक्त हो जायगी, तथा भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका पूजन कर उनकी परिक्रमा और नमस्कारपूर्वक स्तुति कर शापसे छूट जायगी और कित्त पूर्ववर् मेरी सुखपूर्वक सेवा करने लगेंगी” ॥ ३१-३२ ॥ ऐसा कहकर महर्षि गौतम पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर चले गये । हे रघुश्रेष्ठ ! उसी दिनसे यह अहल्या वायु-मक्षण करती हुई कठोर तपस्यामें स्थित हो आपके चरण-रजके स्पर्शकी कामनासे आजतक प्राणियोंसे अलक्षिता रहकर अपने शुभ आश्रममें रहती है ॥ ३३-३४ ॥ हे राम ! अब तुम ब्रह्माजीकी पुत्री गौतम-पत्नी अहल्याका उद्धार करो ।

मुनिवर विश्वामित्रजीने ऐसा कह रघुनाथजीका

दर्शयामास चाहल्यामुग्रेण तपसा स्थिताम् ।  
 रामः शिलां पदा स्पृष्टा तां चापश्यत्पोघनाम् ॥३६॥  
 ननाम राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चात्रवीत् ।

ततो दृष्टा रघुश्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम् ॥३७॥  
 चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणम् ।  
 धनुर्वाणधरं रामं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥३८॥  
 स्मितवक्त्रं पद्मनेत्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।  
 नीलमाणिक्यसङ्काशं द्योतयन्तं दिशो दश ॥३९॥

दृष्टा रामं रमानाथं हर्षविस्फारितेक्षणा ।  
 गौतमस्य वचः स्मृत्वा ज्ञात्वा नारायणं वरम् ॥४०॥  
 संपूज्य विधिवद्राममध्यादिभिरनिन्दिता ।  
 हर्षश्चुजलनेत्रान्ता दण्डवत्प्रणिपत्य सा ॥४१॥

उत्थाय च पुनर्दृष्टा रामं राजीवलोचनम् ।  
 पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा गिरा गद्ददयैलत ॥४२॥

## अहल्योवाच

अहो कृतार्थाऽस्मि जगन्निवास ते  
 पादाव्जसंलग्नरजःकणादहम् ।  
 स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभि-  
 र्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा ॥४३॥

अहो विचित्रं तव राम चेष्टितं  
 मनुष्यभावेन विमोहितं जगत् ।  
 चलस्यजस्तं चरणादिवर्जितः  
 सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिकः ॥४४॥

यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा  
 भागीरथी भवविरिच्छिमुखान्पुनाति ।  
 साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते  
 किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम् ॥४५॥

मत्यर्थितारे मनुजाकृतिं हरिं  
 रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम् ।  
 धनुर्धरं पद्मविशाललोचनं  
 भजामि नित्यं न परान्भजिष्ये ॥४६॥

हाय पकड़ उन्हें उप्र तप्तमें मित अहल्याको दिखलाया । तब श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणसे उस शिलाको स्पर्शकर तपस्थिती अहल्याको देखा ॥ ३७-३६ ॥ उसे देखकर भगवान् रामने ‘मैं राम हूँ’ ऐसा कहकर प्रणाम किया ।

तब अहल्याने रेशमी पीताम्बर धारण किये श्रीरघुनाथजीको देखा ॥ ३७ ॥ उनकी चारों ऊजाओंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म नुशोभित थे, कन्धेपर धनुप-वाण विराजमान थे तथा साथमें श्रीलक्ष्मणजी थे ॥ ३८ ॥ उनका मुख मुसकान-युक्त, नेत्र कमलदलके समान और वक्षःस्थल श्रीवत्साङ्कमें मुशोभित था । अपने नीलमणि-सदृश इयाम विग्रहसे वे दशों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ॥ ३९ ॥ रमानाथ श्रीरामचन्द्रको देखकर अहल्याके नेत्र हर्षमें निलगये और उसे मुनिवर गांतमके वावदोंका स्मरण हो आया । तब उन्हें साक्षात् श्रीनारायण जान उन अनिन्दिताने अर्घ्यादिसे उनका विधिवत् पूजन किया और नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भर साप्ताङ्क दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४०-४१ ॥ फिर खड़ी होकर वह कमलनयन भगवान् रामको देख सर्वांगसे पुलकित हो गढ़दवार्णीसे उनको स्तुति करने लगी ॥ ४२ ॥

अहल्या बोली-है जगन्निवास ! आपके चरण-कमलोंके रजःकणका स्पर्श कर आज मैं कृतार्थ हो गयी । अहो !( वड़े माम्यकी बात है कि ) आपके जिन पादार्थ-विन्दोंका ब्रह्मा और शंकर आदि एकाश-चिन्तने सर्वदा अनुसन्धान किया करते हैं उन्हींका आज मैं स्पर्श कर रहा हूँ ॥ ४३ ॥ हे राम ! आपकी लीलाएँ वज्ञी विचित्र हैं, आपके मानुष-भावसे सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है । आप पूर्णानन्दमय और अति मायार्थी हैं; क्योंकि चरणादिहीन होकर भी आप निरन्तर चलते रहते हैं ॥ ४४ ॥ जिनके चरण-कमलके पंखगसे पवित्र हुई श्रीगङ्गाजी शिव और ब्रह्मा आदि जगदीशरोंको भी पवित्र करती हैं, आज साक्षात् वे ही मेरे नेत्रोंके विषय हो रहे हैं—मैं अपने पूर्ववृत्त पुण्यकर्मोंका किस प्रकार वर्णन करूँ ? ॥ ४५ ॥ जिन्होंने परम सुन्दर मानव-देहसे मर्त्यलोकमें अवतार लिया है, मैं उन धनुषधारी कमलदल-लोचन भगवान् रामको सर्वदा भजती हूँ, और किसीको भी नहीं भजना चाहती ॥ ४६ ॥

यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं  
 यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च ।  
 यन्नामसाररसिको भगवान्पुरारि-  
 स्वं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि ॥४७॥  
 यस्यावतारचरितानि विरिञ्चिलोके  
 गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः ।  
 आनन्दजाश्चुपरिष्ठिक्कुचाग्रसीमा  
 वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये ॥४८॥  
 सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण  
 एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।  
 मायातनुं लोकविमोहनीयां  
 धत्ते परानुग्रह एप रामः ॥४९॥  
 अयं हि विश्वोऽद्वसंयमाना-  
 मेकः स्वमायागुणविमितो यः ।  
 विरिञ्चिविष्णवीश्वरनामभेदान्  
 धत्ते स्वतन्त्रः परिपूर्ण आत्मा ॥५०॥  
 नमोऽस्तु ते राम तवाङ्ग्रिपङ्कजं  
 श्रिया धृतं वक्षसि लालितं प्रियात् ।  
 आक्रान्तमेकेन जगत्वयं पुरा  
 ध्येयं मुनीन्द्रभिमानवर्जितः ॥५१॥  
 जगतामादिभूतस्त्वं जगत्वं जगदाश्रयः ।  
 सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान्परः ॥५२॥  
 ओकारवाच्यस्त्वं रामवाचामविषयः पुमान् ।  
 वाच्यवाचकभेदेन भवानेव जगन्मयः ॥५३॥  
 कार्यकारणकर्तृत्वफलसाधनभेदतः ।  
 एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया ॥५४॥  
 त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः ।  
 मानुपं त्वाभिमन्यन्ते मायिनं परमेश्वरम् ॥५५॥  
 आकाशवत्त्वं सर्वत्र बहिरन्तर्गतोऽमलः ।  
 असङ्गं द्वचलो नित्यः शुद्धो बुद्धः सदव्ययः ॥५६॥

जिनके चरण-कमलोंकी रजको श्रुति भी हूँडती रहती है, जिनकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए हैं तथा जिनके नामामृतके भगवान् शंकर रसिक हैं उन श्रीरामचन्द्रजीका मैं अपने हृदयमें अहनिंश व्यान करती हूँ ॥ ४७ ॥ जिनके अवतार-चरित्रोंका नारदादि देवर्पिण्ड, ब्रह्मा और महादेव आदि देवेश्वरगण तथा आनन्दाश्रुओंसे जिनके कुचमण्डल भीगे हुए हैं वे सरस्वतीजी भी ब्रह्मलोकमें निरन्तर गान किया करती हैं उन प्रभुकी मैं शरण लेती हूँ ॥ ४८ ॥ उन्हीं पुराण-पुरुष परमात्मा रामने संसारपर परम अनुग्रह करनेके लिये स्वयंप्रकाश, अनन्त और सबके आदिकारण होते हुए भी यह जगन्मोहन मायामय रूप धारण किया है ॥ ४९ ॥ जो अकेले हीं संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके लिये अपनी मायाके गुणोंका आश्रयकर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव नामक विभिन्न रूप धारण करते हैं वे स्वतन्त्र और परिपूर्ण आत्मा आप ही हैं ॥ ५० ॥ हे राम ! आपके जिन चरण-कमलोंको श्रीलक्ष्मीजी अपने वक्षःस्थलपर रखकर बड़े ग्रेमसे लाड लड़ती हैं, जिन्होंने पूर्वकालमें ( बलि-वन्धनके समय ) एक ही पगमें सम्पूर्ण त्रिलोकी माप ली थी तथा अभिमान-हीन मुनिजन जिनका निरन्तर व्यान किया करते हैं उन आपके चरण-कमलोंको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! आप ही जगतके आदिकारण, आप ही जगत्-रूप और आप ही उसके आश्रय हैं, तथापि आप समस्त प्राणियोंसे पृथक् हैं और अद्वितीय परब्रह्मरूपसे प्रकाशमान हैं ॥ ५२ ॥ हे राम ! आप ओंकारके वाच्य हैं तथा आप ही वाणीके अगोचर परम पुरुष हैं । हे प्रभो ! वाच्य-वाचक ( शब्द-अर्थ ) भेदसे आप ही सम्पूर्ण जगत्-रूप हैं ॥ ५३ ॥ हे राम ! आप अकेले ही बहु-रूपमयी मायाके आश्रयसे कार्य, कारण, कर्तृत्व, फल और साधनादिके भेदसे अनेक रूपोंमें भासमान हो रहे हैं ॥ ५४ ॥ आपकी मायासे जिनकी बुद्धि मोहित हो रही है वे लोग आपका वास्तविक रूप नहीं जान सकते । आप मायापति परमेश्वरको वे मूढ़-जन साधारण मनुष्य समझते हैं ॥ ५५ ॥ आप आकाशके समान ब्रह्म-भीतर सब और विराजमान, निर्मल, असंग, अचल, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सत्यस्वरूप और अव्यय हैं ॥ ५६ ॥ हे विभो ! मैं मूढ़ और अज्ञानी खी-जाति

योगिन्मूढाऽहमज्ञा ते तत्त्वं जानेकथं विभो ।  
 तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्यधीः ॥५७॥

देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा ।  
 त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ॥५८॥

नमस्ते पुरुषाध्यक्षं नमस्ते भक्तवत्सल ।  
 नमस्तेऽस्तु हृषीकेश नारायणं नमोऽस्तु ते ॥५९॥

भवभयहरसेकं सानुकोटिग्रकाशं  
 करधृतशरचार्पं कालमेघाद्भासंम् ।

कनकरुचिरवस्त्रं रत्नवत्कुण्डलाल्यं  
 कमलविशदनेत्रं सानुजं राममीडे ॥६०॥

स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम् ।  
 परिक्रम्य प्रणम्याशु साऽनुजाता ययौ पतिम् ॥६१॥

अहल्यया कृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः ।  
 स मुच्यतेऽखिलैः पापैः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥६२॥

पुत्राद्यर्थे पठेद्भक्त्या रामं हृदि निधाय च ।  
 संबत्सरेण लभते बन्ध्या अपि सुपुत्रकम् ॥६३॥

सर्वान्कामानवामोति रामचन्द्रप्रसादतः ॥६४॥

ब्रह्मद्वयो गुरुतल्पगोऽपि पुरुषः  
 स्तेयी सुशोभोऽपि वा  
 भातुभ्रातुर्विहिंसकोऽपि सततं  
 भोगैकवद्वातुरः ।

नित्यं स्तोत्रमिदं जपन् रघुपतिं  
 भक्त्या हृदिस्यं सरन्  
 ध्यायन्मुक्तिमुपैति किं पुनरसौ  
 खाचारयुक्तो नरः ॥६५॥

भला आपके तत्त्वको क्या जानूँ ? अतः हे राम ! मैं अनन्यभावसे आपको सैकड़ों बार केवल नमस्कार ही करती हूँ ॥ ५७ ॥ हे देव ! मैं जहाँकही भी रहूँ वही सर्वदा आपके चरण-कमलोंमें मेरी आनन्दित्यपूर्ण भक्ति बनी रहे ॥ ५८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है; हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है; हे हर्षीकेश ! आपको नमस्कार है; हे नारायण ! आपको वारम्बान नमस्कार है ॥ ५९ ॥ जो संसारके प्रकाशमान भय दूर करनेवाले हैं, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान हैं, कर-कमलोंमें धनुष और वाण धारण किये हैं, इसमें मेघके समान आभावाले हैं, सुवर्णके गुमान पील वज्र धारण किये हैं, रत्न-जटिन कुण्डलोंमें लुशोंभित हैं, तथा जिनके कमल-दलके समान अनि लुन्द्र विद्वाल नेत्र हैं, भाई लक्ष्मणसहित उन श्रीरघुनाथजीकी मैं लक्ष्मि करती हूँ ॥ ६० ॥

इस प्रकार सम्मुख लड़े हुए साक्षात् परमपुरुष श्रीरघुनाथजीकी स्तुति, परिक्रमा और चन्दन कलं वह उन्होंना आज्ञा ले गयी ही अपने पनिक्रं पास चली गयी ॥६१॥

जो पुरुष अहल्याके किये हुए, इस स्तोत्रको भक्तिपूर्वक पढ़ता है वह समझ पापोंसे मुक्त होकर परमात्मपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ६२ ॥ जो वन्या जी भी श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें धारणकर पुत्रकों कामनामें इसका भक्तिपूर्वक पाठ करे तो एक चर्पि ही उसे श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त हो सकता है तथा श्रीरामचन्द्रजीको कृपासे उसकी समझ कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ६३-६४ ॥ ब्राह्मणका वध करनेवाला, गुरु-र्णीसे भोग करनेवाला, चोर, मधप, माता-पिता और भाईकी हिंसा करनेवाला तथा निरन्तर भोगासक्त रहनेवाला पुरुष भी यदि अपने हृदयमें विराजमान श्रीरघुनाथजीका भक्तिपूर्वक नित्य स्मरण करता है और उनका ध्यान करते हुए इस स्तोत्रका पाठ करता है तो मुक्त हो जाता है; फिर खर्ष-परायण पुरुषोंकी तो वात ही क्या है ? ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे वालकाण्डे

अहल्योद्धरणं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

## षष्ठि सर्ग :

घनुर्भज्ज और विवाह ।

सूत उवाच

विश्वामित्रोऽथ तं प्राह राघवं सहलक्ष्मणम् ।  
गच्छामो वत्स मिथिलां जनकेनाभिपालिताम् ॥१॥  
दृष्ट्वा क्रतुवरं पश्चादयोध्यां गन्तुमर्हसि ।  
इत्युक्त्वा प्रययौ गङ्गामुत्तरं सहराघवः ।  
तस्मिन्काले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दनः ॥२॥

नाविक उवाच

क्षालयामि तव पादपङ्कजं  
नाथ दारुदपदोः किमन्तरम् ।  
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते  
पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥३॥  
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा  
पश्चात्परं तीरमहं नयामि ।  
नोचेच्चरी सद्युवती मलेन  
स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः ॥४॥  
इत्युक्त्वा क्षालितौ पादौ परं तीरं ततो गताः ।  
कौशिको रघुनाथेन सहितो मिथिलां यथौ ॥५॥  
विदेहस्य पुरं प्रातर्क्षिवाटं समाविशत् ।  
प्राप्तं कौशिकमाकर्ण्य जनकोऽतिषुदान्वितः ॥६॥  
पूजाद्रव्याणि संगृह्य सोपाध्यायः समाययौ ।  
दण्डवत्प्रणिपत्याथ पूजयामास कौशिकम् ॥७॥  
प्रपञ्च राघवौ दृष्टा सर्वलक्षणसंयुतौ ।  
द्योतयन्तौ दिशः सर्वाश्रन्द्र-सूर्याविवापरौ ॥८॥  
कस्यैतौ नरशार्दूलौ पुत्रौ देवसुतोपमौ ।  
भनः प्रीतिकरौ मेऽय नरनारायणाविव ॥९॥  
प्रत्युवाच मुनिः प्रीतो हर्षयन् जनकं तदा ।  
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१०॥

सूतजी बोले—तदनन्तर विश्वामित्रजीने लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीसे कहा, “वत्स ! अब हम महाराज जनकसे पालित मिथिलापुरीको चलेंगे ॥ १ ॥ वहाँ यज्ञोत्सव देखकर फिर तुम अयोध्यापुरीको लौट सकते हो ।” ऐसा कह वे रघुनाथजीके साथ गंगाजी पार करनेके लिये तटपर आये, तब नाविकने रघुनाथजीको नावपर चढ़नेसे रोक दिया ॥ २ ॥

नाविक बोला—हे नाथ ! यह बात प्रसिद्ध है कि आपके चरणोंमें कोई मनुष्य बना देनेवाला चूर्ण है । ( आपने अभी शिलाको ल्ली बना दिया, फिर ) शिला और काष्ठमें मेद ही क्या है ? अतः नौकापर चढ़ाने से पूर्व मैं आपके चरणकमलोंको धोऊँगा ॥ ३ ॥ इस प्रकार आपके चरणोंको मलरहित करके मैं आपको श्रीगङ्गाजीके उस पार ले चलूँगा । नहीं तो, हे विमो ! आपके चरण-रजके स्पर्शसे यदि मेरी नौका युक्ती हो गयी तो मेरे कुटुम्बकी आजीविका ही मारी जायगी ॥ ४ ॥ ऐसा कह केवट्ठे उनके चरण धोये और फिर गङ्गाजीके पार ले गया । वहाँसे राम और लक्ष्मणके सहित श्रीविश्वामित्रजी मिथिलापुरी-को चले ॥ ५ ॥

प्रातःकाल होते ही वे विदेहनगरमें पहुँचकर ऋषियोंके निवास-स्थानमें ठहर गये । उसी समय, विश्वामित्रजीके आगमनकी सूचना पाकर जनकजी अत्यन्त प्रसन्नता-पूर्वक पूजन-सामग्री लिये अपने पुरोहितके साथ वहाँ आये, और साष्टांग दण्डवत् कर उन्होंने मुनिवर कौशिककी पूजा की ॥ ६-७ ॥ फिर साक्षात् दूसरे सूर्य और चन्द्रमाके समान अपने तेज-से सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए उन सर्व-लक्षण-सम्पन्न रघुकुमारोंको देखकर पूछा— ॥ ८ ॥ “ये देवपुत्रोंके समान दो नरशार्दूल किसके पुत्र हैं ; ये मेरे हृदयमें इस समय नर और नारायणके समान प्रीति उत्पन्न करते हैं” ॥ ९ ॥

तब मुनिवर विश्वामित्रजीने महाराज जनकको आनन्दित करते हुए प्रसन्नतापूर्वक कहा—“ये दोनों

मखसंरक्षणार्थाय मयानीतौ पितुः पुरात् ।  
 आगच्छन् रावदो मांगे ताटकां विश्वधातिनीम् ॥१॥  
 शरेणेकेन हतवाचोदितो मेऽलिपिकमः ।  
 ततो भमाश्रमं गत्वा सम यज्ञविहिंसकान् ॥२॥  
 सुवाहुप्रसुखान्हत्वा मारीचं सामरेऽक्षिप्त ।  
 ततो गजातटे पुण्ये गौतमस्याश्रमं शुभम् ॥३॥  
 गत्वा तत्र शिलास्या गौतमस्य वधूः स्थिता ।  
 पादपङ्कजसंस्पर्शात्कृता मानुपस्थिणी ॥४॥  
 हृष्टाऽहल्यां नमस्कृत्य तथा सम्यक्प्रपूजितः ।  
 इदानीं द्रष्टुकामस्ते शृहे माहेश्वरं घनुः ॥५॥  
 पूजितं राजभिः सर्वैर्दृष्टिमित्यनुशुश्रुते ।  
 अतो दर्शय राजेन्द्रं शैवं चापमनुत्तमम् ॥  
 हृष्टाऽयोध्यां जिगसिषुः पितरं द्रष्टुमिच्छति ॥६॥

इत्युक्तो शुनिना राजा पूजार्हविति पूजया ।  
 पूजयसास धर्मज्ञो विधिवृष्टेन कर्मणा ॥  
 ततः सस्प्रेष्यासास मन्त्रिणं बुद्धिमत्तरम् ॥७॥  
 उनक उवाच

शीघ्रमामय विश्वेशचापं रामाय दर्शय ॥८॥

ततो गते मन्त्रिवरे राजा कौशिकमन्त्रवीत् ।  
 यदि रामो धनुर्धृत्वा कोटशासरोपयेद्गुणम् ॥९॥

तदा मयाऽऽत्मजा सीतादीयते राघवाय हि ।  
 तथेति कौशिकोऽप्याह रामं संवीक्ष्य ससिरम् ॥१०॥

शीघ्रं दर्शय चापाऽप्यरामायामितवेजसे ।  
 एवं ब्रुवति गौनीश आगताथापवाहकाः ॥११॥

चापं शुहीत्वा वलिनः पञ्चसाहस्रसङ्ख्यकाः ।  
 घटाशतसमायुक्तं यगिवज्ञादिभूषितम् ॥१२॥

भाई राम और लक्ष्मण कोशल-नंदेश ददाखर्वर्जिते पुण्य हैं ॥१०॥ मैं इन्हें अपने यज्ञज्ञों रक्षाके लिये अयोध्यासे ले आया था । मार्गांगे आतं गमय मेरी प्रेरणासे इन अनि पराक्रमी रघुनाथजीने पक्ष हीं जाणसे विश्वधातिनीं ताटकाको मार डाला, फिर भंड भ्रात्रमें पहुँचकर मेरा यज्ञविष्वेन द्रष्टव्याने तुवाहु आदि राक्षसोंको मार डाला, तथा गार्जनचक्रों समृद्धां पैकू दिया । तदनन्तर वे गंगानदपर महार्पि गौतमके पुनीत आश्रममें आयं और वहाँ शिवायमयमें शित गौतम-पर्वीकों देख अपने चरणकमलके त्यक्तमें उसे मनुष्यग्रप बना दिया ॥११-१२॥ अहन्यादों देखकर गमनीने उसे नमस्कार किया फिर उसने भली प्रकार पूजा प्रह्लादकर इन मग्नय तुम्हारे वहाँ शंकरका धनुप देखनेके लिये आयं हि ॥१३॥ हनने जुना है उस वक्षुपको तुम्हारे वहाँ वहाँ पूजा होती हैं और तब राजा लोग उसे देख गये हैं । अतः हे राजेन्द्र ! आप महादेवर्जनका वह उनम शतुर इन्हें दिखा दांजिये, वयोऽकिष्ये उन्देष्यकर शंक्र दो अपने गाता-पितासे मिलनेके लिये अयोध्या जाना चाहते हैं ॥१४॥

मुनिवर विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर धर्मह राजा ब्रजकने राम और लक्ष्मणको पूजनाय नमस्कार, उनको विधिपूर्वक पूजा की ॥१५॥ फिर अपने बुद्धिमान् मन्त्रीको यह कहकर भेजा कि तुम शीघ्र हीं श्रीविश्वेश्वरका धनुप लेकर गमन-नद्यजीको दिखाओ ॥१६॥

मन्त्रीके चले जानेपर राजाने श्रीविश्वामित्रकोत्से कहा, “यदि रामचन्द्रजी उस धनुपको उठाकर उसको कोटियोपर रोदा चढ़ा देंगे तो निश्चय मैं उन्हें हीं अपनी कल्या संति विवाह देंगा ।” तब विश्वामित्र-जीने रामजीको और देखते हुए मुस्तकाकर कहा—“ठीक है ॥१७-१८॥ राजन् ! आप शीघ्र हीं वह श्रेष्ठ धनुप अमित तेजहीं रघुनाथजीको दिखाइये ।” मुनीश्वरके ऐसा कहते हों बड़े वलवान् पौँच हजार धनुप-चाहक उस धनुप-श्रेष्ठको लेकर वहाँ जा पहुँचे । उस धनुपमें सैकड़ों धृष्टियाँ बैंधी हुई शीघ्र जाया वह हीरे और मणि आदि रक्षोंसे सुसज्जित हा ॥१९-२०॥ तब परामर्श-दाताओंसे श्रेष्ठ उन मन्त्रि-

दर्शयामास रामाय मन्त्री मन्त्रयतां वरः ।  
दृष्टा रामः प्रहृष्टात्मा वध्वा परिकरं दृढम् ॥२३॥

गृहीत्वा वामहस्तेन लीलया तोलयन् धनुः ।  
आरोपयामास गुणं पश्यत्सखिलराजसु ॥२४॥

ईषदाकर्षयामास पाणिना दक्षिणेन सः ।  
वभज्ञाखिलहृत्सारो दिशः शब्देन पूरयन् ॥२५॥

दिशश्च विदिशश्चैव स्वर्गं मत्यं रसातलम् ।  
तदद्भुतमभूत्तत्र देवानां दिवि पश्यताम् ॥२६॥

आच्छादयन्तः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे ।  
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननुतुथाप्सरोगणाः ॥२७॥

द्विधा भग्नं धनुर्दृष्टा राजाऽलिङ्गं रघूद्वदम् ।  
विसर्यं लेभिरे सीतामातरोऽन्तःपुराजिरे ॥२८॥

सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे ।  
सितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभिरणभूषिता ॥२९॥

मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्षणच्चरणनुपुरा ।  
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यजितस्तनी ॥३०॥

रामस्योपरि निक्षिप्य समयमाना मुर्दं ययौ ।  
ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलङ्घुतम् ॥३१॥

गत्राक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्टा लोकविमोहनम् ।  
ततोऽव्रवीन्मुनिं राजा सर्वशास्त्रविशारदः ॥३२॥

भो कौशिक मुनिश्रेष्ठ पत्रं प्रेपय सत्वरम् ।  
राजा दशरथः शीघ्रमागच्छतु सपुत्रकः ॥३३॥

विवाहार्थं कुमाराणां सदारः सहमन्त्रिभिः ।  
तथेति प्रेपयामास दृतांस्त्वरितविक्रमान् ॥३४॥

तेऽगत्वा राजशार्दूलं रामश्रेयो न्यवेदयन् ।  
श्रुत्वा रामकृतं राजा हर्षेण महताप्लुतः ॥३५॥

वरने रामको वह धनुष दिखाया । प्रसन्नचित्त श्रीराम-जीने उसे देखते ही दृढ़तासे कमर कसकर उस धनुषको खेल करते हुए वाँये हाथसे उठाकर थाम लिया और सब राजाओंके देखते-देखते उसपर रोंदा चढ़ा दिया ॥ २३-२४ ॥ फिर सबके हृदय-सर्वस्व भगवान् रामने अपने दाँये हाथसे उस धनुषको थोड़ा-सा खींचा और दशों दिशाओंको गुजायमान करते हुए तोड़ डाला ॥ २५ ॥ दिशा, विदिशा, खर्ग-लोक, मर्यालोक और रसातल आदि समस्त पातालोंमें वह शब्द गूँज उठा । स्वर्गलोकसे देवगणोंके देखते-देखते यह एक बड़ा आश्र्वय-सा हो गया ॥ २६ ॥ देवताओंने पुष्प वरसाकर भगवान् को ढँक दिया और दुन्दुभी आदि बाजे बजाते हुए उनकी स्तुति की तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगी ॥ २७ ॥

धनुषके दो खण्ड हुए देख महाराज जनकने रघुनाथजीका आलिङ्गन किया और अन्तःपुरके आँगनमें द्यित सीताजीकी माताएँ अत्यन्त विस्मित हुईं ॥ २८ ॥ तत्पश्चात् सर्वालंकारविभूषिता, सुवर्णवर्णा श्रीसीताजी अपने दाहिने हाथमें सुवर्णमयी माला लिये मन्द-मन्द सुसकाती हुईं वहाँ आयीं ॥ २९ ॥ वे मुक्ताहार, कर्णफल और झमझमाते हुए पायजेब आदि आभूषणोंसे विभूषिता थीं तथा शरीरमें अति उत्तम साझी पहिने हुए थीं जिसमेंसे उनके पीन-प्योधर झलक रहे थे ॥ ३० ॥

सीताजी नम्रतापूर्वक सुसकाते हुए वह जयमाल रामचन्द्रजीके ऊपर डालकर प्रसन्न हुईं । उस समय श्रीरामचन्द्रजीके सर्वालंकारविभूषित मुवन-मोहन रूपको झरोखोंमेंसे देखकर समस्त रानियाँ अति आनन्दित हुईं । फिर सर्वशाखाङ्ग महाराज जनकने मुनिवर विश्वामित्रजीसे कहा ॥ ३१-३२ ॥ “मुनिवर कौशिकजी ! आप तुरन्त ही महाराज दशरथके पास पत्र भेजिये; वे कुमारोंके विवाहोत्सवके लिये शीघ्र ही पुत्र, महिलियों और मन्त्रियोंके साथ यहाँ पधारें ।” तब विश्वामित्रजीने ‘बहुत अच्छा’ कह शीघ्रगामी दूतोंको भेजा ॥ ३३-३४ ॥

दूतोंने जाकर राजशार्दूल दशरथसे रामका कुशल-क्षेम कहा । उनसे रामचन्द्रजीके अद्भुत कृत्यका वृत्तान्त सुनकर महाराज परमानन्दमें झूब गये ॥ ३५ ॥

मिथिलागमनार्थाय त्वरयामास मन्त्रिणः।  
गच्छन्तु मिथिलां सर्वे गजाश्वरथपत्तयः ॥२६॥

रथमानय मे शीघ्रं गच्छाम्यद्यैव मा चिरम्।  
वसिष्ठस्त्वग्रतो यातु सदारः सहितोऽग्निभिः ॥२७॥

राममातृः समादाय मुनिर्में भगवान् गुरुः।  
एवं प्रस्थाप्य सकलं राजपिंडिपुलं रथम् ॥२८॥

महत्वा सेनया सार्धमारुष्य त्वरितो यथौ।  
आगतं राघवं श्रुत्वा राजा हर्षसमाकुलः ॥२९॥

प्रत्युज्जगाम जनकः शतानन्दपुरोधसा।  
यथोक्तपूजया पूज्यं पूजयामास सत्कृतम् ॥४०॥

रामस्तु लक्ष्मणेनाशु ववन्दे चरणौ पितुः।  
ततो हृष्टो दशरथो रामं वचनमवृतीत् ॥४१॥

दिष्टया पश्यामि ते राममुखं फुलाम्बुजोपमम्।  
मुनेरुग्रहात्सर्वं सम्पन्नं मम शोभनम् ॥४२॥

इत्युक्त्वाऽऽग्नाय मूर्धानमालिङ्ग्य च पुनः पुनः।  
हर्षेण महताऽऽविष्टो ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥४३॥

ततो जनकराजेन मन्दिरे सन्निवेशितः।  
शोभने सर्वभोगाल्ये सदारः ससुतः सुखी ॥४४॥

ततः शुभे दिने लग्ने सुमुहूर्ते रघूत्तमम्।  
आनयामास धर्मज्ञो रामं सप्रातकं तदा ॥४५॥

रक्षस्तम्भसुविस्तारे सुविताने सुतोरणे।  
मण्डपे सर्वशोभाद्ये मुक्तापुण्यफलान्विते ॥४६॥

वेदविद्धिः सुसम्बाधे ब्राह्मणैः स्वर्णभूपितैः।  
सुवासनीभिः परितो निष्ककण्ठीभिरावृते ॥४७॥

मेरीदुन्दुभिनिवोपगीतनृत्यैः समाकुले।  
दिव्यरत्नाङ्किते स्वर्णपीठे रामं न्यवेशयत् ॥४८॥

वसिष्ठं कौशिकं चैव शतानन्दः पुरोहितः।  
यथाक्रमं पूजयित्वा रामस्योभयपार्श्वयोः ॥४९॥

फिर अपने मिथिलापुरीको चलनेके लिये शांघता करते हुए मन्त्रियोंसे कहा—“हाथी, थोड़े, रथ और पदातियोंके सहित सब लेंग मिथिलापुरीको चलो ॥३६॥” मेरा रथ भी तुरन्त ले आओ, देरी न करो, मैं भी आज ही चलूँगा। अग्रियोंके सुहित मेरे गुरु मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठजी गमका माताजीोंको लेकर सबसे आगे चलें।” इस प्रकार मुवक्ता कुँच करा एक विशाल रथपर आढ़ा हो गजर्धि दशरथजी वंडु दल-बलके सहित शांघतापूर्वक मिथिलापुरीको चले। रघुकुल-तिळक दशरथजीको आये हुए मुन गहाराज जनक हर्ष-पूर्वक पुरोहित शतानन्दजीको ले उन्हें लेने गये और उन पूजनीय गजाका यथोचित गतिमें सल्कार कर पूजन किया ॥३७—४०॥ तदनन्दर लक्ष्मणके सहित रामजीने पिताका चरणमें प्रणाम किया; तब राजा दशरथने प्रमाण लेकर रामले कहा—॥४१॥ “राम आज त्रिये भाग्यने मैं तुम्हारा विकसित कमलके नमान मुख देख रहा हूँ; मुनिश्रेष्ठ के अनुग्रहसे सब प्रकार मेरा कल्याण ही हुआ” ॥४२॥ ऐसा कह वे उन्हें पुनः पुनः लुटायें लगा और उनका कमल नृप अन्यन गर्दमें मानो लेखानन्दमें इब गये ॥४३॥ तदनन्दर महाराज जनकले उन्हें शनियों और गजजुगारीके सहित समल भेंग-मानश्रियोंमें पूर्ण एक पर्वन मुन्दर महलमें छुख-पूर्वक ठहराया ॥४४॥

फिर शुभ दिनमें शुभ मुहूर्त और लग्नके नमय धर्मज्ञ जनकजीनि भाष्योलिपित रामका दुआया ॥४५॥ और एक सर्वशोभामन्पल विलार्ण मण्डपमें जिसमें रक्षजटित स्तम्भ, मुन्दर विज्ञाल, मनोहर मोतियोंकी झाल्द तथा मेतियोंके पुण्य और फल लगे हुए थे, तथा जो नुवर्ण-भूपण-भूमित वेद-पाठी ब्राह्मणोंसे खचाखच भरा हुआ था और मुन्दर वल धारण किये निष्ककण्ठां (सुषागिन) नाशियोंसे समाकुल था, श्रीरामचन्द्रजीको एक दिव्यरक्ष-जटित मुवर्ण-सिंहासनपर बैठाया। उस समय भेर्ण और दुन्दुभि आदि वाजों तथा नृत्य और गान आदिका वज्ञा हुमुल कोलाहल हो रहा था ॥४६—४८॥ तब पुरोहितं शतानन्दने श्रीवसिष्ठ और विश्वमित्रजी-का क्रमशः पूजनकर उनको रामचन्द्रजीके दोनों ओर

स्थापयित्वा स तत्रांगि ज्वालयित्वा यथाविधि ।  
सीतामानीय शोभादयां नानारत्नविभूषिताम् ॥५०॥

सभायों जनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम् ।  
पादौ प्रक्षालय विधिवत्तदपो मूर्धन्यधारयत् ॥५१॥

या धृता मूर्ध्नि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभिः सदा ।  
ततः सीतां करे धृत्वा साक्षतोदकपूर्वकम् ॥५२॥

रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानतः ।  
सीता कमलपत्राक्षी स्वर्णमुक्तादिभूषिता ॥५३॥

दीयते मे सुता तुभ्यं प्रीतो भव रघूत्तम् ।  
इति प्रीतेन मनसा सीतां रामकरेऽर्पयन् ॥५४॥

मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराविधरिव विष्णवे ।  
उर्मिलां चौरसीं कन्यां लक्ष्मणाय ददौ मुदा ॥५५॥

तथैव श्रुतिकीर्ति च माण्डवीं ऋत्रकन्यके ।  
भरताय ददोविकां शत्रुघ्नायापरां ददौ ॥५६॥

चत्वारो दारसम्पन्ना ऋतरः शुभलक्षणाः ।  
विरेजुः ग्रभया सर्वे लोकपाला इवापरे ॥५७॥

ततोऽब्रवीद्विसिष्टाय विश्वामित्राय मैथिलः ।  
जनकः स्वसुतोदन्तं नारदेनाभिभाषितम् ॥५८॥

यज्ञभूमिविशुद्धयर्थं कर्पतो लाङ्गलेन मे ।  
सीतामुखात्समुत्पन्ना कन्यका शुभलक्षणा ॥५९॥

तामद्राक्षमहं प्रीत्या पुत्रिकाभावभाविताम् ।  
अर्पिता प्रियभार्यायै शरच्चन्द्रनिभानना ॥६०॥

एकदा नारदोऽभ्यागाद्विविक्ते मयि संस्थिते ।  
रणयन्महर्तां वीणां गायन्नारायणं विभुम् ॥६१॥

पूजितः सुखमासीनो मामुवाच सुखान्वितः ।  
श्रृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम् ॥६२॥

परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया ।  
देवकार्यार्थसिद्धयर्थं रावणस्य वधाय च ॥६३॥

बैठा दिया । फिर वहाँ विधिपूर्वक अग्नि प्रज्वलित की गयी तथा नाना-रह-विभूषिता सीताको साथ लेकर महारानीसहित महाराज जनकजी कमलनयन रामजीके पास आये और विधि-पूर्वक उनके चरण धोकर अपने शिरपर चरणोदक रखा ॥ ४९-५१ ॥ जिसे शिव, ब्रह्मा और अन्यान्य मुनिजन भी सदा अपने मस्तकपर धारण करते हैं । फिर सीताजीका हाथ पकड़कर उसे जल और चावल-सहित पाणिग्रहणकी विधिसे प्रीतिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके कर-कमलोंमें दे दिया और कहा—“हे रघुश्रेष्ठ ! मैं सुवर्ण और मुक्ता आदिसे विभूषिता अपनी पुत्री कमल-लोचना सीता आपको सौंपता हूँ, आप प्रसन्न होइये ।” इस प्रकार सीताजीको प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके कर-कमलोंमें सौंपकर जनकजी ऐसे आनन्दमग्न हो गये जैसे क्षीरसागर श्रीविष्णु भगवान्के करकमलोंमें लक्ष्मीको सौंपकर हुआ था । फिर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी औरसी कन्या उर्मिला लक्ष्मणजीको विवाह दी ॥ ५२-५५ ॥ तथा अपने भाईकी पुत्रियाँ माण्डवी और श्रुतिकीर्ति कमशः भरत और शत्रुघ्नको दीं ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सुलक्षण-सगपन चारों भाई पत्नियोंके सहित साक्षात् दूसरे लोक-पालोंके समान अपने प्रकाशसे सुशोभित हुए ॥ ५७ ॥

तदनन्तर, मिथिलापति महाराज जनकने, पुत्री जानकीके विषयमें देवर्षि नारदने जो कुछ कहा था वह सब छृतान्त वसिष्ठ और विश्वामित्रजीको सुनाया ॥ ५८ ॥ वे बोले—“एक बार मैं यज्ञभूमिकी शुद्धिके लिये हल जोत रहा था, उसी समय मेरे हलके सीता (अग्रभाग) से यह शुभलक्षणा कन्या प्रकट हुई ॥ ५९ ॥ उस समय मैंने इसे देखा और इसमें मुझे पुत्रीवर् प्रीति हुई, इसलिये मैंने इस चन्द्रमुखीको अपनी प्रिय-पत्नीको सौंप दिया ॥ ६० ॥ एक दिन जब मैं एकान्तमें बैठा हुआ था मेरे पास महर्षि नारदजी अपनी महती नामकी वीणा बजाते और सर्वव्यापक श्रीहरि-का गुण गाते हुए आये ॥ ६१ ॥ मेरे पूजा-स्तकारादि कर चुकनेपर वे सुखपूर्वक बैठकर मुझसे बोले, “राजन् ! अपने कल्याणका कारणरूप यह परम गुण वचन सुनो—॥ ६२ ॥ परमात्मा हृषीकेश भक्तोंपर कृपा, देवताओंकी कार्य-सिद्धि और रावणका वध

जातो राम इति स्वयातो मायामानुषवेषघृक् ।  
 आस्ते दाशरथिभूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः ॥६४॥

योगमायाऽपि सीतेति जाता वै तव वेशमनि ।  
 अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥६५॥

नान्येभ्यः पूर्वभायैपा रामस्य परमात्मनः ।  
 इत्युक्त्वा प्रययौ देवगतिं देवमुनिस्तदा ॥६६॥

तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते ।  
 कथं मया राघवाय दीयते जानकी शुभा ॥६७॥

इति चिन्तासमाविष्टः कार्यमेकमचिन्तयम् ।  
 मत्पितामहगेहे तु न्यासभूतमिदं धनुः ॥६८॥

ईश्वरेण पुरा क्षिप्तं पुरदाहादनन्तरम् ।  
 धनुरेतत्पणं कार्यमिति चिन्त्य कुतं तथा ॥६९॥

सीतापाणिग्रहार्थाय सर्वेषां माननाशनम् ।  
 त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ रामो राजीविलोचनः ॥७०॥

आगतोऽत्र धनुर्दृष्टुं फलितो मे मनोरथः ।  
 अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥७१॥

एकासनस्थं पद्यामि आजमानं रविं यथा ।  
 त्वत्पादाम्बुधरो ब्रह्मा सूष्टिचक्रप्रवर्तकः ॥७२॥

बलिस्त्वत्पादसलिलं धृत्वाऽभूद्विजाधिपः ।  
 त्वत्पादपांसुसंस्पर्शदहल्या भर्तुशापतः ॥७३॥

सद्य एव विनिर्मुक्ता कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिरक्षिता ॥७४॥

यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगि-  
 वृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।  
 यन्नामकीर्तनपरा जितदुखशोका  
 देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥७५॥

इति स्तुत्वा नृपः प्रादाद्राघवाय महात्मने ।  
 दीनाराणां कोटिशतं रथानामयुतं तदा ॥७६॥

अश्वानां नियुतं प्रादाद्रजानां पदशतं तथा ।  
 पर्चीनां लक्ष्मेकं तु दासीनां त्रिशतं ददौ ॥७७॥

करनेके लिये माया-मानवरूपसे अवर्तीर्ण होकर 'राम' नामसे विद्यात हुए हैं । वे परमेश्वर अपने चार अंशोंसे दशरथके पुत्र होकर अयोध्यामें रहते हैं ॥ ६३-६४ ॥ और इवर योगमायाने तुम्हारं यहाँ सीताके रूपसे जन्म लिया है । अतः तुम प्रथमपूर्वक इस सीताका पाणिग्रहण रघुनाथजीके साथ ही करन् और किसीसे नहीं-क्योंकि यह पहलेसे ही परमाणु रामकी ही भार्या है ।" ऐसा कहकर देवर्पि नारदजी आकाश-मार्गसे चले गये ॥ ६५-६६ ॥ तबसे इस सीताको मैं विष्णु भगवान्की भार्या लक्ष्मी ही ममदता हूँ । फिर यह सोचते हुए कि 'शुभलक्षणा जानकी-को किस प्रकार रघुनाथजीको हूँ' मैंने एक युक्ति विचारी । पूर्वकालमें श्रीमहादेवजीने त्रिपुरासुरको भल्म करनेके अनन्तर यह धनुष मेरे दाढ़के यहाँ धरोदाके रूपमें रखा था । मैंने यह सोचकर कि 'नीताके पाणिग्रहणके लिये सबके गर्वनाशक इस धनुषको ही पण ( बाजी ) बनाना चाहिये' वैसा ही किया । है मुनिश्रेष्ठ आपकी कृपासे यहाँ कमलनयन गगड़ी धनुष देखने आ गये; इससे मेरा मनारथ निन्द ही गया । हे राम ! आज मेरा जन्म सफल हो गया जो मैं सूर्यके समान देवीप्रमाण और नीताके साथ एक आसनपर विराजमान आपको देख रहा हूँ । प्रभो ! आपके चरणोदक्षको सिरपर धारण करके ही ब्रह्माजी सृष्टि-चक्रके प्रवर्तक हुए हैं ॥ ७७-७२ ॥ आपके चरणोदक्षके प्रतापसे बलिको इन्ड-पद प्राप्त हुआ है और आपकी ही चरण-धूलिके स्पर्शसे अहल्या तुरन्त पतिके शापसे मुक्त हो गयी । आपसे बढ़कर हमारा रक्षक और कौन है ? ॥ ७३-७४ ॥ जिनके चरण-कमल-परागके रसिक, काल-चक्रको जीतनेवाले योगीजनोंने संसार-भयको भी जीत लिया है तथा जिनके नाम-कीर्तनमें लगे रहकर देवगण दुःख और शोकको जीत लेते हैं, उन आपकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ " ॥ ७५ ॥

महात्मा रघुनाथजीकी इस प्रकार स्तुतिकर महाराज जनकने उन्हें दहेजमें सौ करोड़ दोनार (सुवर्णमुद्रा), दश हजार रुप, दश हजार घोड़े, छः सौ हाथी, एक लाख पदाति और तीन सौ दासियाँ दी ॥ ७६-७७ ॥

दिव्याम्बराणि हारांशु मुक्तारत्नभयोऽज्ज्वलान् ।  
सीतायै जनकः प्रादात्प्रीत्या दुहित्रूपत्सलः ॥७८॥  
वसिष्ठादीन्सुसंपूज्य भरतं लक्ष्मणं तथा ।  
पूजयित्वा यथान्यायं तथा दशरथं नृपम् ॥७९॥  
अस्थापयामास नृपो राजानं रघुसत्तमम् ।  
सीतामालिङ्गं रुदतीं मातरः साश्रुलोचनाः ॥८०॥  
श्वशूश्रूषूपणपरा नित्यं राममनुव्रता ।  
पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथासुखम् ॥८१॥  
प्रयाणकाले रघुनन्दनस्य  
भेरीमृदङ्गानकतूर्यघोषः ।  
खर्वासिभेरीधनतूर्यशब्दः  
संमूर्च्छितो भूतभयङ्करोऽभूत् ॥८२॥

तथा सीताजीको भी पुत्रीवत्सल जनकजीने अनेकों दिव्य वस्त्र तथा मोती और रहं-जटित उज्ज्वल हार दिये ॥ ७८ ॥ तदनन्तर उन्होंने वसिष्ठादिकी पूजा की फिर भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और राजा दशरथका घन-दानादिसे यथोचित सत्कार कर रघुश्रेष्ठ महाराज दशरथको विदा किया । फिर माताओंने रोती हुई सीताको गले लगा नेत्रोंमें जल भरकर कहा—॥ ७९-८० ॥ “वत्से । तुम सासुकी सेवा करती हुई सदा रामचन्द्रजी-की अनुगामिनी रह पातिव्रत-धर्मका अवलम्बन कर सुखपूर्वक रहना” ॥ ८१ ॥ तदनन्तर रघुकुलतिलक श्रीरघुनाथजीके कूच करते समय भेरी, मृदङ्ग, आनक और तुर्य आदि वाजोंका धोष आकाशमें देवताओंके बजाये हुए भेरी और तुर्य आदिके घनधोर शब्दसे मिलकर प्राणियोंको भय उपजानेवाला हुआ ॥ ८२ ॥

इति श्रीमद्व्यासरामायणे उमामहेश्वरसंवादे

बालकाण्डे पठः सर्गः ॥६॥

## सप्तम सर्ग

परशुरामजीसे भेट

सूत उवाच

अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम् ।  
निमित्तान्यतिधीराणि ददर्श नृपसत्तमः ॥ १ ॥  
नत्वा वसिष्ठं पंशुच्छु किमिदं शुनिपुङ्गव ।  
निमित्तानीहू दृश्यन्ते विपमाणि समन्ततः ॥ २ ॥  
वसिष्ठस्तमय ग्राह भयमागामि सूच्यते ।  
पुनरप्यभयं तेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति ॥ ३ ॥  
मृगाः प्रदक्षिणं यान्ति पश्यत्वां शुभसूचकाः ।  
इत्येवं वदत्स्तस्य वर्वा धोरतरोऽनिलः ॥ ४ ॥  
मुण्णंश्वर्णंपि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिर्दयन् ।  
ततो ब्रजन्ददर्शग्रे तेजोराशिमुपस्थितम् ॥ ५ ॥  
कोटिद्युर्यप्रतीकाशं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् ।  
तेजोराशं ददर्शथ जामदग्रं ग्रतापवान् ॥ ६ ॥

सूतजी बोले—श्रीरामचन्द्रजीके मिथिलामुरीसे तीन योजन चले जानेपर नृपश्रेष्ठ दशरथजीने अत्यन्त धोर अपशकुन देखे ॥ १ ॥ तब उन्होंने वसिष्ठजीको प्रणाम करके पूछा —“हे मुनिश्रेष्ठ ! क्या कारण है कि चारों ओर भयङ्कर अपशकुन दिखायी दे रहे हैं ?” ॥ २ ॥

वसिष्ठजीने कहा—“इन अपशकुनोंसे किसी आगामी भयकी सूचना होती है, किन्तु (साथ ही यह भी सूचित होता है कि) फिर शीघ्र ही अभय प्राप्त होगा ॥ ३ ॥ क्योंकि देखो तुम्हारी दायीं ओर शुभ-सूचक मृगाण जा रहे हैं ।” वसिष्ठजीके ऐसा कहते ही वडा प्रचण्ड वायु चलने लगा ॥ ४ ॥ उसने धूलि वरसाकर सबके नेत्रोंको मूँद दिया । इसी अवस्थामें उन्होंने आगे बढ़कर देखा कि वहाँ मानों एक तेजःपुञ्ज उपस्थित हुआ है ॥ ५ ॥ फिर उन्होंने करोड़ों सूर्योंके समान तेजखी, विद्युत-पुञ्जके समान प्रभा-

नीलमेघनिःसं प्रांशुं जटामण्डलमण्डितम् ।  
घनुःपरशुपाणि च साक्षात्कालभिवान्तकम् ॥७॥  
कार्तवीर्यन्तकं रामं दृश्क्षत्रियमर्दनम् ।  
प्रासं दशरथस्याग्रे कालमृत्युमिवापरम् ॥८॥

तं दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो राजा दशरथस्तदा ।  
अध्यादिपूजा विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ॥९॥  
दण्डवत्प्रणिपत्याह पुत्रप्राणं प्रयच्छ से ।

इति श्रुवन्तं राजानमनादत्य रघुतमम् ॥१०॥  
उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः ।  
त्वं राम इति नामा मे चरसि क्षत्रियाधम ॥११॥  
द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि वै ।  
पुराणं जर्जरं चापं भड्कत्वा त्वं कत्थसे मुधा ॥१२॥  
अस्मिस्तु वैष्णवे चाप आरोपयसि चेद् गुणम् ।  
तदा शुद्धं त्वया सार्थं करोमि रघुवंशज ॥१३॥  
नो चेत्सर्वान्हनिष्यामि क्षत्रियान्तकरोहाहम् ।  
इति श्रुवति वै तस्मिश्चाल वसुधा भृशम् ॥१४॥  
अन्धकारो वभूवाथ् सर्वेषामपि चक्षुपाम् ।

रामो दाशरथीर्वारो वीक्ष्य तं भार्गवं रुषा ॥१५॥

धरुराञ्छिद्य तद्वस्तादारोप्य गुणमञ्जसा ।  
तूषीरद्वाणमादाय संधायाकुप्य वीर्यवान् ॥१६॥  
उवाच भार्गवं रामं शृणु ब्रह्मन्वचो मम ।  
लक्ष्यं दर्शय वाणस्य ह्यमोघो मम सायकः ॥१७॥  
लोकान्पादयुगं वापि वद् शीघ्रं ममाङ्गया ।  
अर्थं लोकः परो वाथ त्वया गन्तु न शक्यते ॥१८॥

सम्पन्न महाप्रतापी, तेजोराशि, नीलमेघकी-सी आभावाले, उन्नतकाय, जटा-जटधारी हाथमें धनुप और परशु लिये, प्राणियोंका नाश करनेवाले, साक्षात् कालके समान परशुरामजीको आते देखा ॥ ६-७ ॥ उन्होंने देखा कि कार्तवीर्यका वध करनेवाले और गवींले क्षत्रियोंका मानमर्दन करनेवाले परशुरामजी जो दूसरे यमराजके समान हैं महाराज दशरथके पास लड़े हैं ॥८॥

उस समय महाराज दशरथ उन्हें देखते ही भयमान हो गये और अर्धादिसे उनका पूजा करना भूलकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'—ऐसा कहकर उकारने लगे ॥९॥ और दण्डवत् प्रणाम करके बोले—‘मुझे पुत्रके प्राणोंका दान दाजिये ।’

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए राजाकी ओर कुल भी व्यान न देकर उन्होंने क्रोधसे व्याकुल हो कठोर वाणीसे रघुतम श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—“अरे क्षत्रियाधम ! तू मेरे ही समान 'राम' नामसे विलयात होकर पृथिवीमें विचरता है ॥ १०-११ ॥ सो यदि तू वास्तवमें क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध कर; एक पुराने जीर्ण-शीर्ण धनुपको तांड़कर व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रहा है ? ॥ १२ ॥ अरे रघुकुलोऽपन ! यदि तू इस वैष्णव धनुपर रोंदा चढ़ा देगा तो मैं तेरे साथ शुद्ध करूँगा ॥ १३ ॥ नहीं तो, मैं अर्भा सबको मार डालूँगा क्योंकि क्षत्रियोंका अन्त करना तो मेरा काम ही है ।” परशुरामजीके ऐसा कहनेपर पृथिवी वाग्मवार काँपने लगा ॥ १४ ॥ और सबके नेत्रोंके सामने अन्धकार ढा गया ।

तब दशरथ-नन्दन वीरवर रामने परशुरामजीकी ओर रोपपूर्वक देखते हुए उनके हाथसे धनुप छीन लिया और उसपर अनायास ही रोंदा चढ़ाकर अपने तरकशसे वाण निकालकर उसपर रखा और उसे खींचकर भगुनन्दन परशुरामजीसे कहा—“ब्रह्मन् ! मेरी वात सुनो, मेरा वाण अमोघ है—यह व्यर्थ नहीं जाता । इसके लिये शीघ्र ही लक्ष्य दिखाओ ॥ १५-१७ ॥ (अपने पुण्यसे जीते हुए ) लोक अथवा अपने चरण—इन दोनोंमेंसे मेरी आङ्गोसे शीघ्र ही किसी एकको बताओ । (उसीको इस वाणसे वेद्ध डालूँगा ) अब तुम इस लोक या परलोकमें कहीं नहीं जा सकते ॥ १८ ॥

एवं त्वं हि प्रकर्तव्यं बद शीघ्रं ममाज्या ।  
 एवं बदति श्रीरामे भागवो विकृताननः ॥१९॥  
 संसरन्पूर्ववृत्तान्तमिदं वचनमववीत् ।  
 रामं राम महावाहो जाने त्वा परमेश्वरम् ॥२०॥  
 पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम् ।  
 वाल्येऽहं तपसा विष्णुभगवान्धैर्येतुमञ्जसा ॥२१॥  
 चक्रतीर्थं शुभं गत्वा तपसा विष्णुमन्वहम् ।  
 अंतोपयं महात्मानं नारायणमनन्यधीः ॥२२॥  
 ततः प्रसन्नो देवेशः शङ्खचक्रगदाधरः ।  
 उच्चाचं मां रघुश्रेष्ठं प्रसन्नमुखं पङ्कजः ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

उच्चिष्ठं तपसो ब्रह्मन्फीलितं ते तपो महत् ।  
 मन्दिदेशं युक्तस्त्वं जाहे हैह्यपुज्ञवम् ॥२४॥  
 कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसः श्रमः ।  
 तंतस्त्रिः सप्तकृत्वस्त्वं हत्वा क्षत्रियमण्डलम् ॥२५॥  
 कृत्स्नां भूमि कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमृपावह ।  
 व्रेतां मुखे दोशरथिर्भृत्वा रामोऽहमव्ययः ॥२६॥  
 उत्पत्त्वं परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां ततः ।  
 मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा ॥२७॥  
 तदा तपश्चरुद्धाकं तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम् ।  
 हृत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तथा सर्वं कृतं मया ॥२८॥

स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणाथितः ।  
 मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयेव पुनराहृतम् ॥२९॥  
 अद्य मैं सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो ।  
 ब्रह्मादिभिरुभ्यस्त्वं प्रकृतेः पारगा मतः ॥३०॥  
 त्वयि जन्मादिप्रभावी न सन्त्यज्जीनं संभवाः ।  
 निर्विकारोऽसि पूर्णस्त्वं गमनादिविवाचतः ॥३१॥

अब तुम्हारे साथ मेरा जो कुछ करतव्य है वह तुम मेरी आङ्गोसे शीघ्र ही बताओ ।”

रामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर भृगु-जन्दन परशुराम-जीका मुख मलिन हो गया ॥ १९ ॥ फिर उन्होंने पूर्व-वृत्तान्तको स्मरण कर यह कहा—“हे राम ! हे राम ! हे महावाहो ! मैंने आप परमेश्वरको जान लिया ॥२०॥ आप साक्षात् संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण, पुराण-पुरुष भगवान् विष्णु हैं । मैं बाल्यावस्थामें विष्णुभगवान्की आराधना करनेके लिये अकस्मात् परम पवित्र चक्रतीर्थमें पहुँचा और वहाँ प्रतिदिन अनन्यभावसे तपस्या करते हुए मैंने परमात्मा नारायण भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया ॥ २१-२२ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! उस समय शङ्ख-चक्र-गदाधारी प्रसन्नवदन देवेशर विष्णुने मुझसे प्रसन्न होकर कहा ॥ २३ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन् ! तपस्या छोड़कर खड़े हो, तुम्हारा महान् तप सफल हो गया । तुम मेरे चिदंशसे युक्त होकर, जिसके लिये यह तपस्या करनेका कष्ट उठाया है उस पितृव्राती हैह्यश्रेष्ठ कार्तवीर्यका वध करो और फिर इक्कीस बार समस्त क्षत्रियोंको मारकर ॥ २४-२५ ॥ सम्पूर्ण पृथिवी कर्त्यपर्वाकी देशान्ति लाभ करो । मैं अविनाशी परमात्मा, त्रेतायुगमें दशरथके यहाँ ‘राम’ नामसे जन्म ले गया । उस समय मेरी परमशक्ति (संतां) के सहित तुम मुझे देखोगे । तब (पहले) इस समय तुम्हें दिया हुआ अपना तेज मैं फिर ग्रहण कर लूँगा ॥ २६-२७ ॥ तबसे तुम तपस्या करते हुए कल्पान्त-पर्यन्त पृथिवीमें रहोगे । ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये; और मैंने जैसा उन्होंने कहा था वैसा ही किया ॥ २८ ॥

हे राम ! आप वही विष्णु हैं । ब्रह्माकी प्रार्थनासे आपने जन्म लिया है । आपका जो तेज मुझमें स्थित था वह आज आपने फिर ले लिया ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! आज मेरा जन्म सफल हो गया जो मैंने आपको पहचान लिया क्योंकि आप तो ब्रह्म आदिसे भी अप्राप्य और प्रकृतिसे भी परे माने गये हैं ॥ ३० ॥ आपमें अज्ञान-जन्य जन्मादि छः भाव-विकार नहीं हैं तथा आप गमनादिसे रहित निर्विकार और पूर्ण हैं ॥ ३१ ॥

यथा जले केनजालं धूमो वह्नौ तथा त्वयि ।  
त्वदाधारा त्वद्विषया माया कार्यं सृजत्यहो ॥३२॥

यावन्मायावृता लोकास्तावच्चां न विजानते ।  
अविचारितसिद्धैषाऽविद्या विद्याविरोधिनी ॥३३॥

अविद्याकृतदेहादिसङ्घाते प्रतिविम्बिता ।  
चिञ्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिन् जीव इत्परिधीयते ॥३४॥

यावेद्देहमनः प्राणबुद्ध्यादिष्वाभिमानवान् ।  
तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिभागभवेत् ॥३५॥

आत्मनः संसृतिर्नास्ति बुद्धेश्चानं न जात्विति ।  
अविवेकादृद्धयं युद्ध्यत्वा संसारीति प्रवर्तते ॥३६॥

जडस्य चित्समायोगाच्चित्त्वं भूयाच्चितेस्तथा ।  
जडसङ्घाजडत्वं हि जलाग्नयोर्मेलनं यथा ॥३७॥

यावत्त्वत्पादभक्तानां सङ्गसौख्यं न विन्दति ।  
तावत्संसारदुःखौधान्न निवर्तेन्नरः सदा ॥३८॥

तत्सङ्गलब्धया भक्त्या यदा त्वां समुपासते ।  
तदा माया शनैर्याति तानवं प्रतिपद्यते ॥३९॥

ततस्त्वज्ञानसम्पन्नः सद्गुरुस्तेन लभ्यते ।  
वाक्यज्ञानं गुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादाद्विमुच्यते ॥४०॥

तस्मात्त्वद्वक्तिहीनानां कल्पकोटिशतैरपि ।  
न मुक्तिशङ्का विज्ञानशङ्का नैव सुखं तथा ॥४१॥

अतस्त्वत्पादयुग्ले भक्तिर्में जन्मजन्मनि ।  
सात्त्वद्वक्तिमतां सङ्गोऽविद्या याभ्यां विनश्यति ॥

लोके त्वद्वक्तिनिरतास्त्वद्वर्मामृतवर्षिणः ।  
पुनन्ति लोकमखिलं किं पुनः सङ्गलोद्धवान् ॥४३॥

अहो ! जलके फेन-समूह और अग्निके धूएँके समान आपके आश्रित और आपहीको विषय करनेवाली माया नाना प्रकारके विचित्र कार्योंकी रचना करती है ॥ ३२ ॥ मनुष्य जबतक मायासे आबृत रहते हैं तबतक आपको नहीं जान सकते । विद्याकी विरोधिनी यह अविद्या जबतक विचार नहीं किया जाता तभी-तक रहती है ॥ ३३ ॥ अविद्याजन्य देहादि संघातोंमें प्रतिविम्बित हुई चित्त-शक्ति ही इस जीव-लोकमें 'जीव' कहलाती है ॥ ३४ ॥ यह जीव जबतक देह, मन, प्राण और बुद्धि आदिमें अभिमान करता है तभीतक कर्तृत्व, भोक्तृत्व और सुख-दुःखादिको भोगता है ॥ ३५ ॥ वास्तवमें आत्मामें जन्म-मरणादि संसार किसी भी अवस्थामें नहीं है और बुद्धिमें कभी ज्ञान-शक्ति नहीं है । अविवेकसे इन दोनोंको मिलाकर जीव 'संसारी हूँ' ऐसा मानकर कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जल और अग्निमें शान्तता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार जड (बुद्धि) का चेतन (आत्मा) से संयोग होनेसे उसमें चेतनता और चेतन आत्माका जड-बुद्धिसे संयोग होनेसे उसमें (कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि) जडता प्रकट हो जाती है ॥ ३७ ॥ हे राम ! जबतक मनुष्य आपके चरण-कर्मोंके भक्तोंका संगसुख निरन्तर अनुभव नहीं करता तबतक संसारके दुःख-समूहसे पार नहीं होता ॥ ३८ ॥ जब वह भक्तजनोंके सङ्गसे प्राप्त हुई भक्तिद्वारा आपकी उपासना करता है तब आपकी माया शनैः-शनैः चली जाती है और वह क्षीण होने लगती है ॥ ३९ ॥ फिर उस साधकको आपके ज्ञानसे सम्पन्न सद्गुरुकी प्राप्ति होती है और उन सद्गुरुदेवसे महावाक्यका बोध पाकर वह आपकी कृपासे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ अतः आपकी भक्तिसे शून्य पुरुषोंको सौ करोड़ कल्पोंमें भी मुक्ति अथवा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं है और इसीलिये उन्हें वास्तविक सुख मिलनेकी भी सम्भावना नहीं है ॥ ४१ ॥ अतः मैं यही चाहता हूँ कि जन्म-जन्मान्तरमें आपके चरण-युग्लमें मेरी भक्ति हो और मुझे आपके भक्तोंका सङ्ग मिले क्योंकि इन्हीं दोनों साधनोंसे अविद्याका नाश होता है ॥ ४२ ॥ संसारमें आपकी भक्तिर्में तत्पर और भगवद्वर्म-रूप अवृत्त-की वर्षा करनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण लोकको पवित्र

नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन ।  
नमः कारुणिकानन्तं रामचन्द्रं नमोऽस्तु ते॥४४॥

देव यद्यत्कृतं पुण्यं मया लोकजिगीपया ।  
तृत्यवर्तं तव वाणाय भूयाद्रामं नमोऽस्तु ते॥४५॥

ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः ।  
प्रसन्नोऽस्मि तव ब्रह्मन्यते भनसि वर्तते॥४६॥

दासे तदखिलं कामं मा कुरुष्वात्र संशयम् ।  
ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत्॥४७॥

यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन ।  
त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादे ददा भक्तिः सदास्तु ते॥४८॥

स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु भक्तिहीनोऽपि सर्वदा  
त्वद्भक्तिस्तस्य विज्ञानं भूयादन्ते स्मृतिस्तव॥४९॥

तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य ग्रणम्य तम् ।  
पूजितस्तदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात्॥५०॥

राजा दशरथो हृष्टो रामं मृतमिवागतम् ।  
आलिङ्गयालिङ्गय हर्षण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजत्॥५१॥

ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरं ययौ ।  
रामलङ्घणश्चतुभ्यमरता देवसंभिताः ।

स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्वस्वमन्दिरे॥५२॥

मातापितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः ।  
रेमे वैकुण्ठभवते श्रिया सह यथा हरिः॥५३॥

युधाजिज्ञाम केकेयीप्राता भरतमातुलः ।  
भरतं नेतुपागच्छत्स्वराज्यं प्रीतिसंयुतः॥५४॥

ग्रेयामास भरतं राजा स्नेहसमन्वितः ।  
शत्रुघ्नं चापि संपूज्य युधाजितमरिन्दमः॥५५॥

कर देते हैं, फिर वे अपने कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंको पवित्र कर देते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है? ॥४३॥ हे जगत्ताथ! आपको नमस्कार है। हे भक्तिभावन! आपको नमस्कार है। हे करुणामय! हे अनन्त! आपको नमस्कार है। हे रामचन्द्र! आपको बारम्बार नमस्कार है॥४४॥ हे देव! मैंने पुण्यलोक-प्राप्तिके लिये जो कुछ पुण्य-कर्म किये हैं वे सब आपके इस वाणके लक्ष्य हों। हे राम आपको नमस्कार है”॥४५॥

तब करुणामय भगवान् श्रीरामचन्द्रने प्रसन्न होकर कहा—“हे ब्रह्मन्! मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारे हृदयमें जो-जो कामनाएँ हैं उन सभीको मैं पूर्ण करूँगा, इसमें सन्देह न करना।” तब परशुरामजीने प्रसन्न-चित्त होकर रामसे कहा—॥४६-४७॥ “हे मधुसूदन राम! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो मुझे सदा आपके भक्तोंका संग रहे और आपके चरण-कर्मोंमें मेरी सुदृढ़ भक्ति हो॥४८॥ तथा कोई भक्तिहीन पुरुष भी यदि इस स्तोत्रका पाठ करे तो उसे सर्वदा आपकी भक्ति मिले और ज्ञान प्राप्त हो तथा अन्तमें आपकी स्मृति रहे॥४९॥

तदनन्तर रघुनाथजीके ‘ऐसा ही हो’ इस प्रकार कहनेपर परशुरामजीने उनकी परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम किया और उनसे पूजित हो उनकी आज्ञासे महेन्द्र-पर्वतपर चले गये॥५०॥ राजा दशरथने रामको मानों मृत्युसे लौटे हुए समझ अत्यन्त हर्षसे बारम्बार आलिंगन किया और नेत्रोंसे आनन्दाश्रुओंकी वर्दा करने लगे॥५१॥ तदनन्तर वे सब प्रसन्न-चित्तसे अपनी अयोध्यापुरीमें आये। वहाँ पहुँचकर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अपनी-अपनी पक्षियोंके साथ देवताओंके समान अपने अपने महलोंमें रमण करने लगे॥५२॥ सीताके सहित श्रीरामचन्द्रजी अपने माता-पिताओंका आनन्द बढ़ाते हुए इस प्रकार रमण करने लगे जैसे वैकुण्ठ-लोकमें भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ विहार करते हैं॥५३॥

इसी समय कैकेयीके भाई भरतजीके मामा युधाजित् भरतको प्रीतिपूर्वक अपने यहाँ ले जानेके लिये आये॥५४॥ शत्रुघ्न महाराज दशरथने भी युधाजित् का सत्कार कर उनके स्नेहवश भरत और शत्रुघ्नको उनके साथ भेज दिया॥५५॥

कीसल्या शुशुभे देवीं रामेण सहं सीतया ।  
देवमातैव पौलोम्या शच्या शक्रेण शोभना ॥५६॥

साकेते लोकनाथप्रथितगुणगणो-

लोकसङ्गीतकीर्तिः  
श्रीरामा सीतयास्तेऽखिलजननिकर्ता-  
नन्दसन्दौहमूर्तिः ।  
नित्यश्रीविविकारो निरवधिविभवो  
नित्यमायानिरासो  
मायाकार्यानुसारी मनुजं इवं सदा  
भाति देवोऽखिलेशः ॥५७॥

तदुपरान्तं देवीं कौसल्या रामं और सीताके सहित  
इस प्रकार सुशोभित हुई जैसे पुलोम-पुत्री शची  
और इन्द्रके सहित देवमाता अदिति शोभायमान  
होती है ॥ ५६ ॥ जिनके गुणगण ब्रह्मा आदि सकल  
लोकपालोंमें प्रसिद्ध हैं, जिनकी कीर्ति संपूर्ण लोकोंमें  
गायी जाती है, जो सारे मनुष्योंके आनन्द-समूहके  
मूर्ति हैं, जो नित्य, शोभाधाम, निविकार, अनन्त-  
वैमव, और सदा मायातीत होकरं भी माया-कायका  
अनुसरण करते हुए सदा मनुष्यके समान प्रतीत होते  
हैं वे अखिलेशरं भगवान् राम सीताजीके साथ साकेत  
(अयीध्या) धाममें विराजने लगे ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे

बोलकाण्डे संस्मः सर्गः ॥ ७ ॥

समाप्तिमद् बालकाण्डम्



# अध्यात्मरामायण

## अथोऽध्यात्मकाण्ड



### प्रथम सर्ग

भगवान् रामके पास नारदजीका आना ।

श्रीमहादेव उवाच

एकदा सुखमासीनं रामं स्वान्तःपुराजिरे ।  
सर्वाभरणसंपन्नं रत्सिंहासने स्थितम् ॥ १ ॥

नीलोत्पलदलश्यामं कांस्तुभाषुक्कक्ष्यरम् ।  
सीतया रन्दण्डेन चामरेणाथ वीजितम् ॥ २ ॥

विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात् ।  
नारदोऽवतरद्वप्तुमम्बुद्यन्त्र । राघवः ॥ ३ ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शरचन्द्र इवामलः ।  
अवकिंतमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः ॥ ४ ॥

तं दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः ।  
ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान् ॥ ५ ॥

उवाच नारदं रामः प्रीत्या परमया युतः ।  
संसारिणां मुनिश्रेष्ठ दुर्लभं तव दर्शनम् ।

अस्माकं विषयासक्तचेतसां नितरां मुने ॥ ६ ॥

अवासं मे पूर्वजन्मकृतपुण्यमहोदयैः ।  
संसारिणापि हि मुने लभ्यते सत्समागमः ॥ ७ ॥

अतस्त्वदर्शनादेव कृतार्थोऽस्मि मुनीश्वर ।  
किं कार्यं ते मया कार्यं ब्रूहि तत्करवाणि भोः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वति ! एक दिन जब सर्वालङ्घारविभूषित श्रीरामचन्द्रजी अपने अन्तःपुरके आँगनमें एक रत्सिंहासनपर सुखपूर्वक बैठे हुए थे ॥ १ ॥ तथा जिस समय नीलोत्पलदलश्याम कौस्तुभ-मणिमण्डित उन रघुनाथजीपर श्रीसीताजी रन्दण्ड-युक्तचौंबर ढुला रही थीं ॥ २ ॥ और वे आदरपूर्वक दिये हुए ताम्बूल-चर्वणादिसे आनन्दित हो रहे थे उसी समय उन्हें देखनेके लिये देवर्पिं नारदजी आकाशसे उतरे ॥ ३ ॥ शुद्ध स्फटिक मणिके समान खच्छ और शरचन्द्रके समान निर्मल दिव्यमूर्ति श्रीनारदजीको इस प्रकार अचानक आते देख शक्तिशाली भगवान् राम सहसा उठ खडे हुए और सीताजीके सहित प्रेम और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर पृथिवीपर शिर रखकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ४-५ ॥

फिर भगवान् रामने परम प्रीतिपूर्वक नारदजीसे कहा—“हे मुनिश्रेष्ठ ! हम-जैसे विषयासक्त संसारी मनुष्योंके लिये आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है । हे मुने ! आज अपने पूर्वजन्म-कृत पुण्य-पुज्जके उदय होनेसे ही मुझे आपका दर्शन हुआ है, क्योंकि हे मुने ! पुण्योदय होनेपर संसारी पुरुषको भी सत्संग प्राप्त हो जाता है ॥ ६-७ ॥ अतः हे मुनीश्वर ! आज आपके दर्शनसे ही मैं कृतार्थ हो गया, अब मुझे आपका क्या कार्य करना होगा सो कहिये, उसे मैं (इस समय) ‘पूर्ण करूँ’ ॥ ८ ॥

अथ तं नारदोऽप्याह राघवं भक्तवत्सलम् ।  
 किं मोहयसि सां राम वाक्यैलौकिणुसारिभिः ॥१॥  
 संसार्यहमिति ग्रोक्तं सत्यमेतत्त्वया विभो ।  
 जगतामादिभूता या सा माया शृहिणी तव ॥२॥  
 त्वत्सन्निकर्षज्जायन्ते तस्यां ब्रह्मादयः प्रजाः ।  
 त्वदाज्ञया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका ॥३॥  
 सूतेऽजसं शुक्लकृष्णलोहिताः सर्वदा प्रजाः ।  
 लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः ॥४॥  
 त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा ।  
 ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥५॥  
 भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा ।  
 शक्रस्त्वमेव पौलोभी सीता स्वाहाऽनलो भवान् ॥  
 यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयमिनी प्रभो ।  
 निर्द्वितिस्त्वं जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा ॥६॥  
 राम त्वमेव वरुणो भार्यां जानकी शुभा ।  
 वायुस्त्वं राम सीता तु सदागतिरितीरिता ॥७॥  
 कुवेरस्त्वं राम सीता सर्वसंपत्प्रकीर्तिता ।  
 रुद्राणी जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्वं लोकनाशकृत् ॥८॥  
 लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी शुभा ।  
 पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥९॥  
 तस्मालोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन ॥१०॥  
 त्वदाभासोदिताज्ञानमन्याकृतमितीर्थते ।  
 तस्मान्महांस्ततः सूत्रं लिङ्गं सर्वात्मकं ततः ॥११॥  
 अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पञ्चप्राणेन्द्रियाणि च ।  
 लिङ्गमित्युच्यते प्राञ्जिर्जन्ममृत्युसुखादिभृत् ॥१२॥  
 स एव जीवसंज्ञश्च लोके भाति जगन्मयः ।  
 अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरूच्यते ॥१३॥

तव नारदजीने भक्तवत्सल भगवान् गमने कहा—“हे राम ! आप सामान्य मनुष्योंके से इन वाक्योंसे गुणे क्यों मोहित कर रहे हैं ॥१॥ हे विभो ! आपने जो वह कहा कि मैं संसारी हूँ सो ठीक ही है, क्योंकि सत्पूर्ण संनाशकी जो आदि-कारण है वह माया आपकी शृहिणी है ॥२॥ हे प्रभो ! आपकी नविधिमात्रने ही उस मायासे ब्रह्मा आदि सब प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, वह सत्त्व-रज-त्तमांमयी त्रिगुणात्मिका माया नदा आपके आश्रित होकर ही भावगान होती है तथा स्वगुणानुलूप शुक्ल, लोहित और कृष्णर्ण ग्रजा उत्पन्न करती है । इस त्रिलोकी-रूप महान्गृहके आप गृहरथ करे गये हैं ॥३॥ १२॥ आप भगवान् विष्णु हैं और जानकीजी लक्ष्मी हैं; आप शिव हैं और जानकीजी पार्वती हैं; आप ब्रह्म हैं और जानकीजी नदरथती हैं तथा आप लक्ष्मदेव हैं और जानकीजी प्रभा हैं ॥४॥ १३॥ आप चन्द्रमा हैं, शुभलक्षणा सीताजी रेतिणी हैं; आप दन्त हैं और सीता पुलोग-कल्या शार्ची हैं तथा आप अग्नि हैं और सीताजी नदाना हैं ॥५॥ १४॥ हे प्रभो ! आप सत्रके कालरूप यम हैं और सीता संयमिनी हैं, हे जगन्नाथ ! आप निर्द्विति हैं और जानकीजी नाममी हैं ॥६॥ १५॥ हे राम ! आप वरुण हैं और शुभलक्षणा जानकी शुगुचन्या वारुणी हैं, आप वायु हैं तथा सीताजी नदागति हैं ॥७॥ १६॥ हे राम ! आप कुवेर हैं और सीताजी उनकी सब सम्पत्ति हैं तथा आप लोकसंहारकारा रुद्र हैं और सीताजी रुद्राणी कहलाती हैं ॥८॥ १७॥ हे राघव ! निःसन्देह संसारमें जो कुछ पुरुषवाचक है वह सब आप हैं और जीवाचक सब श्रीजानकीजी हैं; अतः हे देव ! त्रिलोकमें आप दोनोंसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं ॥९॥ १८-१९॥ आपहीके आभाससे प्रकट हुआ अज्ञान अन्यकृत कल्पना है, उससे नहूत्तत्व, महत्तत्वसे सूत्रात्मा (हिरण्यगर्भ) और सूत्रात्मासे सर्वात्मक लिंगदेह उत्पन्न होता है ॥२०॥ अहंकार बुद्धि, पञ्चप्राण और दश इन्द्रियाँ—इनके समूहको ही प्राज्ञजन जन्म, मृत्यु और सुख-दुःखादि घर्मो-वाला लिङ्गदेह बताते हैं ॥२१॥ वह (लिंग-देहाभिमानी चेतनाभास) ही जगत्में तन्मय हुआ जीव नामसे विद्यात है । अनिर्वचनीय और अनादि

स्थूलं सूक्ष्मं कारणाख्यमुपाधित्रितयं चितेः ।  
एतैविंशिष्टो जीवः स्याद्वियुक्तः परमेश्वरः ॥२३॥

जाग्रत्स्वभस्तुपुष्ट्याख्या संसृतिर्या प्रवर्तते ।  
तस्या विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रस्त्वं रघूचम् ॥२४॥

त्वं एव जगद्भात्तं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।  
त्वयेव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम् ॥२५॥

रज्ञावहिमिवात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत् ।  
परात्माहमिति ज्ञात्वा भयदुःखैविंमुच्यते ॥२६॥

चिन्मात्रज्योतिपा सर्वाः सर्वदेहेषु चुद्धयः ।  
त्वया यस्मात्प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो भवान् ॥

अज्ञानान्त्यस्यते सर्वं त्वयि रज्ञौ भुजद्भवत् ।  
त्वज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ञानं सदाभ्यसेत् ॥२८॥

त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् ।  
तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि ॥२९॥

अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किङ्करः ।  
अतो मामनुगृहीत्वा मोहयस्व न मां ग्रभो ॥३०॥

त्वभाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः ग्रभो ।  
अतस्त्वाहं पात्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव ॥३१॥

इत्युक्त्वा बहुशो नत्वा स्यानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।  
उवाच वचनं राम ब्रह्मणा नोदितोऽस्म्यहम् ॥३२॥

रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम ।  
इदानीं राज्यरक्षार्थं पिता त्वामभिपेक्ष्यति ॥३३॥

यदि राज्याभिसंसक्तो रावणं न हनिष्यसि ।  
प्रतिज्ञा ते कृता राम भूभारहरणाय वै ॥३४॥

तत्सत्यं कुरु राजेन्द्र सत्यसंधस्त्वमेव हि ।

अविद्या ही (इस जीवकी) कारणउपाधि कही जाती है ॥२२॥ शुद्ध चेतनकी स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीन उपाधियाँ हैं । इन उपाधियोंसे युक्त होनेसे वह जीव कहलाता है और इससे रहित होनेसे परमेश्वर कहा जाता है ॥२३॥ हे रघुश्रेष्ठ ! जाग्रत्, स्वभाव और सुषुप्ति-ऐसी जो तीन प्रकारकी सृष्टि है उससे आप विलक्षण हैं और उसके चेतनमात्र साक्षी हैं ॥२४॥ यह सम्पूर्ण जगत् आपहीसे उत्पन्न हुआ है, आपहीमें स्थित है और आपहीमें लीन होता है । इसलिये आप ही सबके कारण हैं ॥२५॥ रज्ञुमें सर्प-भ्रमके समान अपनेको जीव माननेसे मनुष्यको भय होता है पर वही जब यह समझ लेता है कि “मैं परमात्मा हूँ” तो सम्पूर्ण भय और दुःखोंसे छूट जाता है ॥२६॥ क्योंकि चिन्मात्र ज्योतिस्वरूप आप ही सबके शरीरोंमें स्थित होकर उनकी बुद्धियोंको प्रकाशित कर रहे हैं इसलिये आप ही सबके आत्मा हैं ॥२७॥ रज्ञुमें सर्प-भ्रमके समान अज्ञानसे ही आपमें सम्पूर्ण जगत्की कल्पना की जाती है सो आपका ज्ञान होनेसे वह सब लीन हो जाती है । सुतरां मनुष्यको सदा ज्ञानका अभ्यास करना चाहिये ॥२८॥ आपके चरण-कमलोंकी भक्तिसे युक्त पुरुषोंको ही क्रमशः ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अतः जो पुरुष आपकी भक्तिसे युक्त हैं वे ही वास्तवमें मुक्तिके पात्र हैं ॥२९॥ हे प्रभो ! मैं आपके भक्तोंके भक्त और उनके भी भक्तोंका दास हूँ; अतः आप मुझे मोहित न कर मुझपर अनुग्रह कीजिये ॥३०॥ हे प्रभो ! आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, अतः मैं आपका पौत्र हूँ ! हे राघव ! आप मुझ भक्तकी रक्षा कीजिये” ॥३१॥

इस प्रकार कहकर और वारम्बार प्रणाम कर श्रीनारदजीने नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भरकर कहा—“हे रघुश्रेष्ठ ! मुझे ब्रह्माजीने आपके पास भेजा है; आपका अवतार रावणका वव करनेके लिये हुआ है, किन्तु अब पिता दशरथ आपको राज्यशासनके लिये अभिषिक्त करनेवाले हैं ॥३२-३३॥ हे राम ! यदि राज्याभिषिक्त हो जानेपर आप रावणको न मारेंगे तो पृथिवीका भार उतारनेके लिये जो आपने प्रतिज्ञा की थी उसका क्या होगा ? ॥३४॥ अतः हे राजेन्द्र ! आप उसे सत्य कीजिये क्योंकि आप सत्य-प्रतिज्ञ ही हैं !”

श्रुत्वैतद्दितं रामो नारदं प्राह सस्मितम् ॥३५॥  
 श्रृणु नारद मे किञ्चिद्विद्यतेऽविदितं क्वचित् ।  
 प्रतिज्ञातं च यत्पूर्वं करिष्ये तत्र संशयः ॥३६॥  
 किन्तु कालानुरोधेन तत्प्रारब्धसंक्षयात् ।  
 हरिद्ये सर्वभूमारं क्रमेणासुरमण्डलम् ॥३७॥  
 रावणस्य विनाशार्थं श्वो मन्ता दण्डकानेनम् ।  
 चतुर्दश समास्तत्र हुषित्वा मुनिवेषधृक् ॥३८॥  
 सीतामिषेण तं दुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम् ।  
 एवं रामे प्रतिज्ञाते नारदः प्रमुमोद ह ॥३९॥  
 प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य तम् ।  
 अनुज्ञातश्च रामेण श्यौ देवगतिं मुनिः ॥४०॥  
 संवादं पठति शृणोति संस्मरेद्वा  
 यो नित्यं मुनिवररामयोः स भक्त्या ।  
 संप्राप्नोत्यसरसुदुर्लभं विमोक्षं  
 कैवल्यं विरतिपुरःसरं क्रमेण ॥४१॥

नारदजीके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुसका-  
 कर कहा ॥३५॥ “नारदजी ! सुनिये, क्या कोई  
 ऐसी वात भी है जिसे मैं न जानता होऊँ ? मैंने  
 पहले जो कुछ प्रतिज्ञा की है वह मैं निस्सन्देह पूर्ण  
 करूँगा ॥३६॥ किन्तु कालक्रमसे जिन-जिनका प्रारब्ध  
 क्षीण होता जायगा उन-उन दैत्योंको ही मारकर मैं क्रमशः  
 पृथिवीका भार उतारूँगा ॥३७॥ रावणका वध करने  
 के लिये मैं कल दण्डकारण्यको जाऊँगा और वह  
 चौदह वर्ष मुनिवेष धारण कर रहूँगा ॥३८॥ उस  
 दुष्टको सीता-हरणके मिथ्ये मैं कुटुम्बके सहित नष्ट  
 कर दूँगा ।”

रामचन्द्रजीके इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेपर नारदजी  
 अति प्रसन्न हुए ॥३९॥ तदनन्तर उन्होंने रामजीकी  
 तीन परिक्रमाएँ कीं और उन्हें दण्डवत्-प्रणाम कर उनकी  
 आङ्ग ले आकाश-मार्गसे देवलोकको चले गये ॥४०॥

जो मनुष्य नारद और रामचन्द्रजीके इस संवादको  
 नित्य भक्तिपूर्वक पढ़ता, सुनता या स्मरण करता है  
 वह वैराग्यपूर्वक क्रमशः देवताओंको दुर्लभ कैवल्य  
 मोक्षपद प्राप्त कर लेता है ॥४१॥

इति श्रीमद्भ्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

### द्वितीय सर्ग

राज्याभिषेककी तैयारी तथा वसिष्ठजी और रघुनाथजीका संचाद ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः कदाचिद्वहसि स्थितः ।  
 वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत ॥ १ ॥  
 भगवन् राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः ।  
 पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः ॥ २ ॥  
 ततः सर्वगुणोपेतं रामं राजीवलोचनम् ।  
 ज्येष्ठं राज्येऽभिषेक्यामि वृद्धोऽहं मुनिपुङ्गव ॥ ३ ॥  
 भरतो मातुलं द्रष्टुं शतः शत्रुमसंश्युतः ।  
 अभिषेक्ये श्व एवाशु भवांस्तच्चानुमोदताम् ॥ ४ ॥  
 सम्भाराः सम्भ्रयन्तां च गच्छ मन्त्रय राघवम् ।  
 उच्छ्रीयन्तां पताकाश्च नानाचर्णाः समन्ततः ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी चोले-एक दिन एकान्तमें बैटे हुए  
 राजा दशरथने अपने कुल-पुरोहित वसिष्ठजीको  
 बुलाकर कहा ॥१॥ “भगवन् ! सभी पुरवासी, शालज्ञ,  
 बड़े-बूढ़े और मन्त्रिजन रामकी विशेषतया वारम्बार  
 प्रशंसा किया करते हैं ॥२॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरा  
 विचार है कि मैं अपने सर्वगुणसम्पन्न ज्येष्ठ पुत्र कमल-  
 नयन रामको राज्यपदपर अभिषिक्त कर दूँ क्योंकि मैं  
 अब वृद्ध हो गया हूँ ॥३॥ इस समय भरत शत्रुघ्नके  
 साथ अपने मामाके यहाँ मिलने गया है, तथापि मैं  
 कल शीघ्र ही रामका राज्याभिषेक करना चाहता हूँ ।  
 इस विषयमें आप भी अपनी सम्मति दे दीजिये ॥४॥  
 हे मुनिश्रेष्ठ ! आप अभिषेककी सामग्री एकत्रित  
 करोइये और रघुनाथजीके पास जाकर उनको यथोचित  
 सम्मतिदीजिये । इस समय नगरमें सब ओर रंग-विरंगी

तोरणानि विचित्राणि स्वर्णमुक्तामयानि वै ।  
 आहूय मन्त्रिणं राजा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ॥६॥  
 आज्ञापयति यद्यत्त्वां मुनिस्तत्त्समानय ।  
 यौवराज्येऽभिषेक्यामि इवोभूते रघुनन्दनम् ॥७॥  
 तथेति हर्षत्स मुनिं किं करोमीत्यभापत ।  
 तमुवाच महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥८॥  
 शः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः ।  
 तिष्ठुन्तु पोडश गजः स्वर्णरत्नादिभूषितः ॥९॥  
 चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्धवः ।  
 नानातीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः ॥१०॥  
 स्याप्यन्तां नववेयाप्रचर्माणि त्रीणि चानय ।  
 श्वेतच्छत्रं रत्नदण्डं मुक्तामणिविराजितम् ॥११॥  
 दिव्यमालपानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ।  
 मुनयः सत्कृतास्तत्र तिष्ठुन्तु कुशपाणयः ॥१२॥  
 नर्तक्यो वारमुख्यात्थ गायका वेणुकास्तथा ।  
 नानावादित्रकुशला वादयन्तु नृपाङ्गणे ॥१३॥  
 हस्त्यश्वरथपादाता वहिस्तिष्ठुन्तु सायुधाः ।  
 नगरे यानि तिष्ठुन्ति देवतायतनानि च ॥१४॥  
 तेषु प्रवर्ततां पूजा नानावलिभिरावृता ।  
 राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥१५॥  
 दृत्यादिदृश्य मुनिः श्रीमान् सुमन्त्रं नृपमन्त्रिणम् ।  
 स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम् ॥१६॥  
 रथमाल्य भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।  
 त्रीणि कक्षाण्यतिक्रम्य रथात्क्षतिमवातरत् ॥१७॥  
 अन्तः प्रविद्य भवनं स्वाचार्यत्वादवारितः ।  
 गुरुमागतमाङ्गाय रामस्तूर्णं कृताङ्गलिः ॥१८॥  
 ग्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद्धक्तिसंयुतः ।  
 स्वर्णपत्रेण पानीयमानिनायाशु जानकी ॥१९॥

जपिण्डयाँ लगायी जानी चाहिये ॥५॥ तथा चित्र-विचित्र सुवर्ण और मोतियोंके तोरण ( ज्ञालर ) बाँधे जाने चाहिये ।” उसी समय राजाने मन्त्रिश्रेष्ठ सुमन्त्रको बुलाकर आज्ञा दी कि मैं कल रघुनाथजीको युवराज-पदपर अभिषित करूँगा, उसके लिये मुनिवर वसिष्ठजी जो-जो सामग्री बताएँ वह सब एकत्रित करो ॥६-७॥

राजा दशरथसे ‘वहुत अच्छा’ कह सुमन्त्रने हर्ष-पूर्वक मुनिवरसे कहा कि ‘मैं क्या करूँ ?’, तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महातेजसी वसिष्ठजीने उससे कहा—॥८॥ “कल ग्रातःकाल मध्यद्वारपर सुवर्ण-भूषण-भूषित सोलहं कन्याएँ खड़ी रहनी चाहिये; तथा सुवर्ण और रत्न आदिसे विभूषित ऐरावतके कुछमें उत्पन्न एक चार द्राँतों-वाला हाथी रहना चाहिये, नाना तीर्थोंके जलसे पूर्ण हजारों सुवर्ण-कलश मँगवाये जायें ॥९-१०॥ तीन नवीन व्याघ्र-चर्म लाकर रक्खो और मुक्ता-मणि-सुशोभित रत्नदण्डयुक्त एक श्वेत छत्र लाओ ॥११॥ अनेकों दिव्य मालाएँ, दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषण लाकर रखें जाने चाहिये तथा अभिषेक-स्थानपर भली प्रकार सम्मान किये हुए अनेकों मुनिजन हाथमें कुशा लिये हुए उपस्थित रहें ॥१२॥ अनेकों नर्तकियाँ, मुख्य-मुख्य वारांगनाएँ, गायक, वेणुवादक तथा कुशल वाजे वजानेवाले महाराज दशरथके आँगनमें गानावजाना करें ॥१३॥ अभिषेक-स्थानके बाहर हाथी, घोड़े, रथ और पदाति यह चतुरंगिणी सेना अख-शस्त्र-से सुसज्जित होकर खड़ी रहे । नगरमें जितने देवालय हैं उन सबमें नाना प्रकारकी वलि-सामग्रीसे देवोंकी पूजा की जाय तथा राजालोग शीघ्र ही नाना प्रकारकी भैंटें लेकर आवें” ॥१४-१५॥

राजमन्त्री सुमन्त्रको इस प्रकार आज्ञा दे श्रीमान् वसिष्ठजी स्वयं श्रीरघुनाथजीके परम सुन्दर महलमें गये ॥१६॥ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने रथपर चढ़कर रघुनाथजीके महलकी तीन पैरियाँ पार कीं और फिर पृथिवीपर उत्तर पड़े ॥१७॥ तदनन्तर आचार्य होनेके कारण विना रोक-टोकके बे भीतर चले गये । उस समय गुरुजीको आये देख रामचन्द्रजी तुरन्त हाथ जोड़कर खड़े हो गये और भक्तिपूर्वक दण्डवत्-प्रणाम किया । उसी समय सीताजी सुवर्णके पात्रमें जंल ले आयीं ॥१८-१९॥

रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तिः ।  
 तदपः शिरसा धृत्वा सीतया सह राघवः ॥२०॥  
 धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्रामस्तव पादाम्बुधारणात् ।  
 श्रीरामेणैवमुक्तस्तु ग्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥२१॥  
 त्वत्पादसलिलं धृत्वा धन्योऽभूद्विरजापतिः ।  
 ब्रह्मापि मत्पिता ते हि पादतीर्थहताशुभः ॥२२॥  
 इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत् ।  
 जानामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या संजातमीद्वरम् ॥२३॥  
 देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये ।  
 रावणस्य बधार्थाय जातं जानामि राघव ॥२४॥  
 तथापि देवकार्यार्थं गुह्यं नोदृष्टाटयाम्यहम् ।  
 यथा त्वं मायथा सर्वं करोपि रघुनन्दन ॥२५॥  
 तथैवानुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम् ।  
 गुरुर्गुरुणां त्वं देव पितृणां त्वं पितामहः ॥२६॥  
 अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः ।  
 शुद्धसत्त्वमयं देहं धृत्वा स्वाधीनसम्भवम् ॥२७॥  
 मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्वं योगमायया ।  
 पौरोहित्यमहं जाने विगर्हं दृष्यजीवनम् ॥२८॥  
 इक्षवाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते ।  
 इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥२९॥  
 ततोऽहमाशया राम तत्र सम्बन्धकाङ्गया ।  
 अकार्बं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये ॥३०॥  
 ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन ।  
 त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी ॥३१॥  
 मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह ।  
 शुरुनिष्कृतिकामस्त्वं यदि देखेतदेव मे ॥३२॥

तत्र रघुनाथजीने गुरुजीको रहमिंहासनपर बैठा-  
 कर उनके चरण धोये और सीताजीके सहित उस  
 चरणोदकको भक्तिपूर्वक अपने शिरपर रखकर बहा-  
 “हे मुने ! आपके चरणोदकको धारण कर आज मैं  
 कृतकृत्य हो गया ।” भगवान् रामके दृश्य प्रकार कहने-  
 पर मुनिवर धसिएने हँसकर कहा ॥ २०-२१ ॥ “ऐ  
 राम ! आपके पादोदकको मनुकपर धारण कर पार्वती-  
 वत्तम भगवान् शंकर धन्य-धन्य हो गये तथा मेरे  
 पिता ब्रह्माजी भी आपके पादतीर्थका मंत्रन करनेमें ही  
 निष्पाप हो गये हैं ॥ २२ ॥ इन गमय केवल मन्मारकों  
 यह उपदेश करनेके लिये ही कि ‘गुरुर्गत्वा शाश्वत शिष्य  
 प्रकार ल्यवद्यार करना चाहिये’ आप इन प्रकार  
 सम्भाषण कर रहे हैं । मैं भली प्रकार जानता हूँ  
 आप छक्कीके सहित प्रकट हुए गात्रात् परमात्मा शिष्य  
 हैं ॥ २३ ॥ हे राघव ! मैं जानता हूँ आपने देवताओंका  
 कार्य सिद्ध करनेके लिये, भक्तोंको भक्ति गतिल करनेके  
 लिये और रावणका वध करनेके लिये ही अनन्त लिया  
 है ॥ २४ ॥ तथापि देवताओंको कार्य-निष्ठिके लिये  
 मैं इस गुप्त गहरायको प्रकट नहीं करता । हे रघुनन्दन !  
 जिस प्रकार मायथे आश्रयने आप नव कार्य यत्तेमें  
 उसी प्रकार मैं भी ‘तुम शिष्य हो और मैं गुरु हूँ’ इस  
 सम्बन्धके अनुकूल ल्यवद्यार करूँगा । शिष्य हैं देव :  
 वात्सव्यमें तो आप ही गुरुओंके गुरु और पितृगणोंके  
 भी पितामह हैं ॥ २५-२६ ॥ आप अन्तर्यामी,  
 जगद्वयवहारके प्रवर्तन्य, और मन-व्यापीय, अनिष्टय हैं;  
 और स्वेच्छासे यह शुद्ध सत्त्वमय शर्मीर धारण कर इस  
 लोकमें अपनी योगमायसे मनुष्यके मनान प्रतीन होते  
 हैं । मैं यह जानता हूँ कि पुरोहिताई अति निन्दनीय  
 और दृष्टिं जाविका है ॥ २७-२८ ॥ तो भी जब  
 पूर्वकालमें ब्रह्मजीके कहनेसे मुझे यह मालूम हुआ कि  
 इत्याकुवंशमें परमात्मा राम अवतार होंगे ॥ २९ ॥ तत्र  
 हे राम ! आपसे सम्बन्ध जोड़नेकी इच्छासे आपका  
 आचार्य बननेके लिये इस निन्दनीय पदको भी मैंने  
 स्वीकार कर लिया ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन ! आज मेरी  
 इच्छा पूर्ण हो गयी । अब यदि आप गुरुकृगसे  
 उक्तण होना चाहते हैं तो मुझे यही दाजिये कि  
 आपके अधीन रहनेवाली आपकी सर्वलोकविमोहिनी  
 महामाया मुझे मोहित न करे ॥ ३१-३२ ॥ हे

प्रसङ्गात्सर्वमप्युक्तं न वाच्यं कुत्रचिन्मया ।  
राजा दशरथेनाहं श्रेष्ठितोऽस्मि रघूद्वह ॥३३॥

त्वामामन्त्रयितुं राज्ये श्वोऽभिषेक्यति राघव ।  
अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि ॥३४॥

कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः ।  
गच्छामि राजसान्निध्यं त्वं तु प्रातर्गमिष्यसि ॥३५॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य ययौ राजगुरुद्वृतम् ।  
रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रहसन्निदमन्नवीत् ॥३६॥

सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति ।  
निमित्तमात्रमेवाहं कर्ता भोक्ता त्वमेव हि ॥३७॥

मम त्वं हि वहिः प्राणो नात्र कार्या विचारणा ।  
ततो वसिष्ठेन यथा भाषितं तत्तथाकरोत् ॥३८॥

वसिष्ठोऽपि नृपं गत्वा कुतं सर्वं न्यवेदयत् ।  
वसिष्ठस्य पुरो राजा ह्युक्तं रामाभिषेचनम् ॥३९॥

यदा तर्देव नगरे श्रुत्वा कश्चित्पुमान् जगौ ।  
कौसल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च ॥४०॥

श्रुत्वा ते हर्षसम्पूर्णे ददतुर्हारमुत्तमम् ।  
तस्मै ततः प्रीतमनाः कौसल्या पुत्रवत्सला ॥४१॥

लक्ष्मीं पर्यचरदेवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये ।  
सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम् ॥४२॥

केक्याविशगः किन्तु कामुकः किं करिष्यति ।  
इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गां देवीमपूजयत् ॥४३॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन् ।  
गच्छ देवि भुवो लोकमयोऽव्यायां प्रयत्नतः ॥४४॥

रामाभिषेकविद्यार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः ।

रघुश्रेष्ठ ! हस समय प्रसंगवश मैने ये सब बातें आपसे कह दी हैं, मैं ऐसा और कहाँ भी न कहूँगा । हे राघव ! महाराज दशरथने इस बातकी सूचना देनेके लिये कि कल वे आपको राजपदपर अभिषिक्त करेंगे—मुझे आपके पास भेजा है । आज आप सीताके सहित विधिपूर्वक उपवास और शुद्धता तथा इन्द्रियजयपूर्वक पृथिवीपर शयन करें । अब मैं राजाके पास जाता हूँ, आप कल प्रातःकाल वहाँ पधारें” ॥ ३३—३५ ॥

ऐसा कह राजपुरोहित वसिष्ठजी रथपर चढ़कर तुरन्त ही चले गये । तब रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीकी ओर देखकर हँसते हुए कहा—॥ ३६ ॥ “हे सुमित्रानन्दन ! कल मेरा युवराज-पदपर अभिषेक होगा, सो मैं तो केवल निमित्तमात्र ही होऊँगा, उसके कर्ता-भोक्ता तो तुम्हीं होगे ॥ ३७ ॥ क्योंकि मेरे बाह्यप्राण तो तुम्हीं हो—इसमें कोई विशेष सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं है ।” तदनन्तर वसिष्ठजी जैसा कह गये थे रघुनाथजीने वैसा ही किया ॥ ३८ ॥

इधर वसिष्ठजीने भी राजा दशरथके पास आकर जो कुछ किया था सो सब सुना दिया । जिस समय महाराज दशरथ वसिष्ठजीसे रामचन्द्रजीके अभिषेकके विषयमें कह रहे थे उसी समय किसी पुरुषने यह समाचार सुनकर सम्पूर्ण नगरमें सुना दिया और राममाता कौसल्या तथा सुमित्राको भी यह सूचना दे दी ॥ ३९—४० ॥ उन दोनोंने सुनते ही अति हर्ष-पूर्ण हो उसे एक अत्युत्तम हार दिया । तदुपरान्त पुत्रवत्सला कौसल्याने रामचन्द्रजीकी इष्ट-सिद्धिके लिये लक्ष्मीदेवीका पूजन किया ‘राजा दशरथ सत्यवादी हैं और उनके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि वे अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हैं ॥ ४१—४२ ॥ किन्तु वे कामी और कैकेयीके वशीभूत हैं; ऐसी अवस्थामें क्या वे इस प्रतिज्ञाको पूर्ण कर सकेंगे ?’ इस प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल होकर वह दुगदेवीका पूजन करने लगीं ॥ ४३ ॥

इसी समय देवताओंने सरस्वतीदेवीसे आग्रह किया कि ‘हे देवि ! तुम युक्तिपूर्वक भूलोकमें अयोध्यापुरीमें जाओ ॥ ४४ ॥ और वहाँ ब्रह्माजीकी आज्ञासे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विनाश उपस्थित

मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम् ॥४५॥  
 ततो विष्णे समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे ।  
 तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाय मन्थराम् ॥४६॥

सापि कुञ्जा त्रिवक्रा तु प्रासादाग्रमथारुहत् ।  
 नगरं परितो हृष्टा सर्वतः समलड्कृतम् ॥४७॥

नानातोरणसम्बाधं पताकाभिरलड्कृतम् ।  
 सर्वोत्सवसमायुक्तं विस्मिता पुनरागमत् ॥४८॥

धात्रीप्रच्छ मातः किं नगरं समलड्कृतम् ।  
 नानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या चातिहर्षिता ॥४९॥

ददाति विप्रमुख्येभ्यो वस्त्राणि विविधानि च ।  
 तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिपेचनम् ॥५०॥

श्वो भविष्यति तेनाद्य सर्वतोऽलड्कृतं पुरम् ।  
 तच्छ्रुत्वा त्वरितं गत्वा कैकेयीं वाक्यमव्यीत् ॥५१॥

पर्यकस्थां विशालाक्षीभिकान्ते पर्यवस्थिताम् ।  
 किं शेषे हुर्भगे मूढे महायमुपस्थितम् ॥५२॥

न जानीपेऽतिसौन्दर्यमानिनी मत्तगामिनी ॥५३॥  
 रामस्यानुग्रहाद्राज्ञः श्वोऽभिषेको भविष्यति ।

तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय कैकेयी प्रियवादिनी ॥५४॥  
 तस्यै दिव्यं ददौ स्वर्णनूपुरं रत्नभूषितम् ।

हर्षस्थाने किमिति मे कथयते भयमागतम् ॥५५॥

भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियंवदः ।  
 कौसल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूपते हि माम् ॥५६॥

रामाद्वयं किमापन्नं तव मूढे चदस्व मे ।  
 तच्छ्रुत्वा विप्रसादाथ कुञ्जाऽकारणवैरिणी ॥५७॥

शृणु मद्वचनं देवि यथार्थं ते महद्वयम् ।

करो । प्रथम तो तुम मन्थरामे प्रवेश करना और फिर कैकेयीमें ॥ ४५ ॥ हे शुभे ! इस प्रकार विष्ण उपस्थित हो जानेपर तुम फिर स्वर्गलोकको लौट आना ।” इसपर सरस्वतीने ‘बहुत अच्छा’ कहकर वैमा ही किया और प्रथम मन्थरामे प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

तब तीन स्थानमें टेढ़ी वह कुनैर्दी मन्थरा महान्दकी अद्वालिकापर चढ़ा और उसने देखा कि नगर सब औरसे सजाया गया है ॥ ४७ ॥ उसमें नाना प्रकारकी बन्दनवारें बँधी हुई हैं, चित्र-विचित्र पताकाएँ लुधोंभिन हो रही हैं और सब और उल्लंघन गए हैं । यह देखकर वह अत्यन्त विस्मित हो नंचे उनके आर्या ॥ ४८ ॥ और थायमे पृथा—“मैंया ! आज नगर क्यों सजाया गया है और गदागरनी कौनस्या भी नाना प्रकारमे उसव मनाती हुई अत्यन्त शर्दूपूर्वक ब्राह्मणोंको विविध वर्गाभूषण वयों दे रही है ?” नव धायने उसमें कहा—“कल श्रीरामजर्जका राज्याभिषेक होगा, इसीलिये आज यह अंगमे नगर सजाया गया है ।” यह नुनते ही उसने उन्न ही कैकेयीके पास जाकर कहा ॥ ४९—५० ॥ विशालाक्षी कैकेयी उस सनय प्रकारमें पक्षंगम बैठी थी, उससे मन्थरा बोला—“अविभग्निमि मूहे ! कैसे सो रही हो, तुम्हारे लिये बड़ा भाग नदूद उपस्थित हुआ है ॥ ५१ ॥ हे मनवाली चालनार्थी ! तुम्हे अपनी सुन्दरताका बड़ा घमण्ड है, इसीलिये तुम्हे किसी बातका पता ही नहीं रहना ॥ ५२ ॥” देखते, महाराजकी कृपासे कल रामका राज्याभिषेक होनेवाला है ।”

यह सुनकर प्रियवादिनी कैकेयी महाना उठ गयी हुई ॥ ५३ ॥ और उसे अति दिव्य गतजटिन मुवर्ण-नूपुर देकर कहा, “अर्हा ! यह तो वडे जानन्दकी बात है, इसमें तु संकट उपस्थित हुआ कैसे बनलती है ?” ॥ ५४ ॥ राम तो भरतकी उपेक्षा में अधिक प्रिय करनेवाला और मधुरगायी है, यह तो कौसल्या तथा मुझे समान भावसे देखता हुआ सदा ही मंरी सेवा किया करता है ॥ ५५ ॥ अर्हा मूँ ! त यह तो बता कि तुझे रामसे क्या भय उपस्थित हुआ है ?”

यह सुनकर विना कारण वैर करनेवाली मन्थरा विपाद करने लगी ॥ ५६ ॥ और बोला, “देवि !

त्वां तोपथन् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते ॥५८॥  
 कामुकोऽतध्यवादी च त्वां वाचा परितोपयन् ।  
 कार्यं करोति तस्या वै राममातुः सुपुष्कलम् ॥५९॥  
 मनस्पेतचिधायैव प्रेपयामास ते सुतम् ।  
 भरतं मातुलकुले प्रेपयामास सानुजम् ॥६०॥  
 सुमित्रायाः समीचीनं भविष्यति न संशयः ।  
 लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यं सोऽनुभविष्यति ॥६१॥  
 भरतो राघवस्याग्रे किङ्करो वा भविष्यति ।  
 विवास्यते वा नगरात्प्राणीर्वा हाप्यतेऽचिरात् ॥६२॥  
 त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचरिष्यसि ।  
 तरोऽपि मरणं श्रेयो यत्सप्तन्याः पराभवः ॥६३॥  
 अतः शीघ्रं यत्स्वाद्य भरतस्याभिषेचने ।  
 रामस्य वनवासार्थं वर्षणि नव पञ्च च ॥६४॥  
 ततो रुदोऽभये पुत्रस्तव राज्ञि भविष्यति ।  
 उपायं ते प्रवक्ष्यामि पूर्वमेव सुनिश्चितम् ॥६५॥  
 पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथः स्वयम् ।  
 इन्द्रेण याचितो धन्वी सहायार्थं महारथः ॥६६॥  
 जगाम सेनया साधं त्वया सह शुभानने ।  
 युद्धं प्रकुर्वतस्तस्य राक्षसैः सह धन्विनः ॥६७॥  
 तदाक्षकीलो न्यपतच्छिन्नतस्य न वेद सः ।  
 त्वं तु हस्तं समावेश्य कीलरन्ध्रेऽतिधैर्यतः ॥६८॥  
 स्थिरवत्यसितापाङ्गि पतिप्राणपरीप्सया ।  
 ततो हत्वाऽसुरान्सर्वान् ददर्श त्वामरिन्द्रमः ॥६९॥  
 आश्र्वयं परमं लेभे त्वामालिङ्गय मुदान्वितः ।  
 वृणीप्य यत्ते मनसि वाञ्छितं वरदोस्म्यहम् ॥७०॥  
 वरद्वयं वृणीप्य त्वमेवं राजाऽवदत्स्वयम् ।  
 त्वयोक्तो वरदो राजन्यदि दत्तं वरद्वयम् ॥७१॥

मेरी बांत खुनो, वास्तवमें तुम्हारे लिये बड़ा संकट उपस्थित हुआ है । राजा तुम्हें सन्तुष्ट करनेके लिये ही सदा चिकनी-चुपड़ी बातें बना दिया करते हैं ॥ ५८ ॥ वे बड़े कामी और मिथ्यावादी हैं; तुम्हें इस प्रकार केवल वातोंसे ही बहलाकर रामकी माताका ही पूरा-पूरा कार्य किया करते हैं ॥ ५९ ॥ अपने मनमें यही ठानकर उन्होंने छोटे भाई शत्रुघ्नके सहित तुम्हारे पुत्र भरतको ननिहाल भेज दिया है ॥ ६० ॥ इसमें सुमित्राके लिये तो निससन्देह सब कुछ ठीक ही होगा, क्योंकि लक्ष्मण रामके अनुगामी हैं इसलिये वे तो राज्य ही भोगेंगे ॥ ६१ ॥ किन्तु भरतको या तो रामका दास होकर रहना पड़ेगा या उन्हें शीघ्र ही नगरसे निकाल दिया जायगा अथवा उनका प्राणाघात किया जायगा ॥ ६२ ॥ और तुम्हें दासीके समान सदा कौसल्याकी सेवा करनी पड़ेगी । इस प्रकार सौतसे अपमानित होकर रहनेकी अपेक्षा तो मरना ही अच्छा है ॥ ६३ ॥ इसलिये अब तुम शीघ्र ही भरतके राज्याभिषेक और रामके चौदह वर्षतक वनवासके लिये प्रयत्न करो ॥ ६४ ॥ हे रानी ! ऐसा होनेपर तुम्हारे पुत्र भरत निर्भय और निष्कण्टक हो जायेंगे । इसके लिये मैंने जो पहलेसे ही सोच रखा है वह उपाय तुम्हें बताती हूँ ॥ ६५ ॥ पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके समय ख्यं इन्द्रने धनुर्धर महारथी राजा दशरथसे सहायताके लिये प्रार्थना की थी ॥ ६६ ॥ हे सुमुखि ! उस समय सेनाके सहित वे तुम्हें साथ लेकर वहाँ गये थे । जिस समय धनुर्धर महाराज दशरथ राक्षसोंसे युद्ध करनेमें निमग्न थे उस समय उनके विना जाने रथकी धुरीकी कील निकलकर गिर गयी, तब अत्यन्त धैर्यपूर्वक तुमने अपना हाथ उस कीलके छिद्रमें लगा दिया ॥ ६७-६८ ॥ और हे कृष्णाङ्गि ! पतिकी प्राणरक्षाके लिये तुम बहुत देरतक इसी स्थितिमें रही । तदनन्तर समस्त दैत्योंको मार चुकनेपर शत्रुघ्नन महाराज दशरथने तुम्हें देखा ॥ ६९ ॥ तुम्हें ऐसी स्थितिमें देखकर उन्हें अति आश्र्वय हुआ और अति प्रसन्नतासे तुम्हें गले लगाकर वे बोले—“मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ, तुम्हें जो इच्छा हो सो माँग लो ॥ ७० ॥ इस समय तुम दो वर माँग सकती हो ।” राजा के इस प्रकार कहनेपर तुमने कहा—“राजन् ! यदि आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे दो

त्वग्येव तिष्ठतु चिरं न्यासभूतं भमानव ।  
यदा मेऽवसरो भूयात्तदा देहि वरद्वयस् ॥७२॥

तथेत्युक्त्वा स्वयं राजा मन्दिरं ब्रज सुब्रते ।  
त्वतः श्रुतं मया पूर्वमिदानीं स्मृतिमागतम् ॥७३॥

अतः शीघ्रं प्रविश्याद्य क्रोधागारं रुषान्विता ।  
विषुच्य सर्वाभरणं सर्वतो विनिकीर्य च ।  
भूमावेव शयाना त्वं तूष्णीमातिष्ठ भामिनि ॥७४॥

शावत्सत्यं प्रतिज्ञाय राजाऽभीष्टं करोति ते ।  
श्रुत्वा त्रिवक्रयोक्तं तत्तदा केकयनन्दिनी ॥७५॥

तथ्यमेवाखिलं मेने दुःसङ्गाहितविभ्रमा ।  
तामाह कैकेयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धिरीदशी ॥७६॥

एवं त्वां बुद्धिसम्पन्नां न जाने वक्तसुन्दरि ।  
भरतो यदि राजा मे भविष्यति सुतः प्रियः ॥७७॥

ग्रामान् शतं प्रदास्यामि मम त्वं प्राणवल्लभा ।  
इत्युक्त्वा कोपभवनं प्रविश्य सहसा रुषा ॥७८॥

विषुच्य सर्वाभरणं परिकीर्य समन्ततः ।  
भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी ॥७९॥

प्रीवाच शृणु मे कुञ्जे यावद्रामो वनं ब्रजेत् ।  
प्राणां सत्यक्ष्येऽथ वा वक्ते शयिष्ये तावदेव हि ॥८०॥

निश्चयं कुरु कल्याणि कल्याणं ते भविष्यति ।  
इत्युक्त्वा प्रययौ कुञ्जा गृहं साऽपि तथाऽकरोत् ॥

धीरोऽत्यन्तदयन्वितोऽपि सुगुणा-  
चारान्वितो वाऽथवा  
नीतिज्ञो विधिवाददेशिकपरो  
विद्याविवेकोऽथवा ।

वर देना चाहते हैं ॥ ७१ ॥ तो हे अनव ! मेरी यह धरोहर बहुत समयतक आप ही रखिये, जिस समय इनका अवसर आवे उस समय आप ये दोनों वर मुझे दे दीजियेगा” ॥ ७२ ॥ तब राजाने ‘बहुत अच्छा’ कहकर तुमसे कहा ‘हे सुब्रते ! अब घर चलो ।’ महारानीजी । यह सम्पूर्ण वृत्तान्त पहले तुम्हाँसे मैंने सुना था, इस समय मुझे यह स्मरण हो आया है ॥ ७३ ॥ अतः हे भामिनि ! अब तुम शीघ्र ही रोप-पूर्वक कोपभवनमें जाओ और अपने समस्त आभूपण उतारकर इधर-उधर बखेर दो तथा जवतक सत्य प्रतिज्ञापूर्वक राजा तुम्हारा अर्भाष्ट कार्य करनेको तत्पर न हों तबतक चुपचाप पृथिवीपर पड़ी रहो ।”

त्रिवक्रा मन्थराकी ये बातें सुनकर दुःसंगवश बुद्धि भ्रष्ट हो जानेके कारण दुष्टा कैकेयीने उस समय उसका कशन सर्वथा ठीक मान लिया और उससे कहा—“तुझमें ऐसी बुद्धि कहाँसे आ गयी ? ॥७४—७६॥ अरी वाँकी सुन्दरी ! मैं तुझे इतनी बुद्धिमती नहीं जानती थीं । यदि मेरा प्रिय पुत्र भरत राजा हो गया तो मैं तुझे सौ गाँव दूँगी; तू तो मुझे प्राणोंके समान ध्यारी है ।” ऐसा कहकर कैकेयीने रोपपूर्वक कोप-भवनमें प्रवेश किया ॥ ७७-७८ ॥ और अपने सब बखाभूपण उतारकर इधर-उधर बखेर ढिये तथा मैटे-कुचले बछ पहनकर अति मलिन दशामें पृथिवीमें पड़कर बोली, “अरी कुञ्जे ! सुन, जवतक राम वनको न जायेंगे, प्राण भले ही छूट जायें, मैं इसी प्रकार पड़ी रहूँगी ॥ ७९-८० ॥

तब कुञ्जा यह समझाकर कि ‘हे कल्याणि ! तुम निःसन्देह ऐसा ही करना, इससे अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा’—अपने घर चली गयी और कैकेयीने भी वैसा ही किया ॥ ८१ ॥

सच है, कोई पुरुष अत्यन्त धैर्यवान्, दयालु, सद्गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, कर्तव्यनिष्ठ और गुरुका भक्त, अथवा विद्या-विवेक-सम्पन्न भी क्यों न हो यदि निरन्तर अत्यन्त पाप-बुद्धि दुष्ट पुरुषोंका संग करेगा तो अवश्य ही क्रमशः उन्हींकी

दुष्टानामातिपापभाविताधियां  
सङ्गं सदा चेद्भजे-  
चद्बुद्ध्या परिभावितो ब्रजति तत्  
साम्यं क्रमेण स्फुटस् ॥८॥

अतः सङ्गः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैव हि ।  
दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद्यथेयं राजकन्यका ॥८॥

बुद्धिसे प्रभावित होकर उन्होंके समान हो जायगा ॥८॥ इसलिये सदा ही दुष्ट पुरुषोंका संग छोड़ना चाहिये, क्योंकि दुःसंगसे पुरुष इस राजकन्या (कैकेयी) के समान ही पुरुषार्थच्युत हो जाता है ॥८॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे  
द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

### तृतीय सर्ग

राजा दशरथका कैकेयीको घर देना ।

श्रीमहादेव उचाच

ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात् ।  
आदिश्य मन्त्रिप्रकृतीः सानन्दो गृहमाविशत् ॥१॥

तत्राद्युप्रियां राजा किमेतदिति विहृलः ।  
या पुरा मन्दिरं तस्याः प्रविष्टे मयि शोभना ॥ २ ॥

हसन्ती मामुपायाति सा किं नैवाद्य दृश्यते ।  
इत्यात्मन्येव संचिन्त्य मनसाऽतिविदूयता ॥ ३ ॥

प्रच्छ दासीनिकरं कुतो वः स्वामिनी शुभा ।  
नायाति मां यथापूर्वं मत्प्रिया प्रियदर्शना ॥ ४ ॥

ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विन्नहे ।  
कारणं तत्र देव त्वं गत्वा निश्चेतुमर्हसि ॥ ५ ॥

इत्युक्तो भयसन्त्रस्तो राजा तस्याः समीपगः ।  
उपविश्य शर्नदेहं स्पृशन्वै पाणिनात्रवीत् ॥ ६ ॥

किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यङ्कादीन् विहाय च ।  
मां त्वं खेदयसे भीरु यतो मां नावभापसे ॥ ७ ॥

अलङ्कारं परित्यज्य भूमौ मलिनवाससा ।  
किमर्थं द्वृहि सकलं विधास्ये तद वाञ्छितम् ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—तदनन्तर महाराज दशरथने रामचन्द्रजीके अभ्युदयके लिये प्रजावर्ग और मन्त्रियोंको (माझलिक कार्योंके लिये) आज्ञा देकर आनन्दपूर्वक अपने रनिवासमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ वहाँ अपनी प्रिया कैकेयीको न देखकर वे अत्यन्त विहृल होकर मन-ही-मन कहने लगे, ‘क्या कारण है, जो पहले अपने महलमें घुसते हीं सदा हँसती हुई मेरे सामने आती थी वह सुसुखी आज दिखायी ही नहीं दे रही है ?’ अपने चित्तमें अत्यन्त दुःख मानकर इसी प्रकार सोचते-सोचते ॥ २-३ ॥ उन्होंने दासियोंसे पूछा—‘आज तुम्हारी शुभलक्षणा लामिनी कहाँ है ? वह प्रियदर्शना प्रिया आज पूर्ववत् मेरे सामने क्यों नहों आती ?’ ॥ ४ ॥

दासियोंने कहा—“देव ! कारण तो माल्दम नहीं, किन्तु आज वे कोप-भवनमें गयी हुई हैं; आप स्वयं ही वहाँ जाकर सब हाल जान लीजिये ” ॥ ५ ॥

दासियोंके इस प्रकार कहनेपर राजा भयभीत होकर उसके पास गये और वहाँ बैठकर उसके शरीरपर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए बोले—॥ ६ ॥ “अयि भीरु ! आज पलंग आदिको छोड़कर इस प्रकार पृथिवीपर क्यों पड़ी हो ? तुम हमसे कुछ बोलती नहों हो, इससे हमें बड़ा खेद हो रहा है ॥ ७ ॥ समस्त वस्त्राभूपण छोड़कर तुम मलिन वस्त्र पहने हुए पृथिवी-पर क्यों पड़ी हो ? तुम्हारी जो इच्छा हो सो कहो,

को वा तवाहितं कर्ता नारी वा पुरुषोऽपि वा ।  
स मे दण्डचश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥

ब्रूहि देवि यथा प्रीतिस्तदवश्यं समाप्रतः ।  
तदिदानीं साधयिष्ये सुदुर्लभमपि क्षणात् ॥ १० ॥

जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मां खवशे स्थितम् ।  
तथापि मां खेदयसे वृथा त्वं परिश्रमः ॥ ११ ॥

ब्रूहि कं धनिनं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियङ्करम् ।  
धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ॥ १२ ॥

ब्रूहि कं वावधिष्यामि वधार्हो वा विमोक्ष्यते ।  
किमत्र वहुनोक्तेन प्राणान्दास्यामि ते प्रिये ॥ १३ ॥

मम प्राणात्प्रियतरो रामो राजीवलोचनः ।  
तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्वितं तत्करोम्यहम् ॥ १४ ॥

इति ब्रुवाणं राजानं शपन्तं राघवोपरि ।  
शनैर्विमृज्य नेत्रे सा राजानं प्रत्यभाषत ॥ १५ ॥

यदि सत्यप्रतिज्ञोऽसि शपथं कुरुये यदि ।  
याच्चां मे सफलां कर्तुं शीघ्रमेव त्वमर्हसि ॥ १६ ॥

पूर्वं देवासुरे युद्धे मया त्वं परिवितः ।  
तदा वरद्वयं दत्तं त्वया मे तुष्टचेतसा ॥ १७ ॥

तद्दद्ययं न्यासभूतं मे स्थापितं त्वयि सुव्रत ।  
तत्रैकेन वरेणाशु भरतं मे प्रियं सुतम् ॥ १८ ॥

एषिः संभृतसंभारैयैवराज्येऽभिषेचय ।  
अपरेण वरेणाशु रामो गच्छतु दण्डकान् ॥ १९ ॥

सुनिवेषधरः श्रीमान् जटावल्कलभूषणः ।  
चतुर्दशं समास्तत्र कन्दमूलफलाशनः ॥ २० ॥

पुनरायातु तस्यान्ते वने वा तिष्ठतु खयम् ।  
प्रभाते गच्छतु वर्नं रामो राजीवलोचनः ॥ २१ ॥

मैं सब पूर्ज करूँगा ॥ ८ ॥ तुम्हारा अनिष्ट करनेवाला कौन है ? वह ली हो अथवा पुरुष अवश्य मेरे दण्डका पात्र होगा । यही नहीं, उसका वध भी किया जा सकता है ॥ ९ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार तुम्हारा प्रसन्नता हो वह मुझसे अवश्य कहो । वह कार्य अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी मैं इसी समय एक क्षणमें ही पूरा कर दूँगा ॥ १० ॥ तुम मेरे हृदयको जानती ही हो, मैं तुम्हारा अत्यन्त प्रिय और तुम्हारे वर्णाभूत हूँ । फिर भी तुम मुझे खिन्न करती हो ? तुम्हारा यह परिश्रम व्यर्थ है ॥ ११ ॥ बताओ, तुम्हारा प्रिय करनेवाले किस कंगालको मैं धनी कर दूँ अथवा तुम्हारे अप्रियकारी किस धनपतिको एक क्षणमें ही कंगाल बना दूँ ? ॥ १२ ॥ बताओ, किस अवश्यको मार डालूँ और किस वध्यको छोड़ दूँ ? हे प्रिये ! इस विषयमें और अधिक क्या कहूँ, मैं तुम्हें अपने ग्राण भी दे सकता हूँ ॥ १३ ॥ कमलनयन राम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं । मैं उन्हाँका शपथ करके कहता हूँ कि तुम्हें जो कुछ प्रिय हो मैं वही करूँगा” ॥ १४ ॥

महाराज दशरथके रामकी सौन्दर्य खाकर इसप्रकार कहनेपर कैकेयीने धीरे-धारे अपने आँसू पोषकर राजासे कहा—॥ १५ ॥ “राजन् ! यदि आप सत्य-प्रतिज्ञ हैं और शपथ भी करते हैं तो शीघ्र ही मैं जो कुछ माँगूँ उसे सफल कर देना चाहिये ॥ १६ ॥ पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें मैंने आपकी रक्षा की थी उस समय प्रसन्न होकर आपने मुझे दो वरदेनेको कहा था ॥ १७ ॥ हे सुन्दर ! मैंने वे दोनों वर आपके पास धरोहरके रूपमें रख दिये थे । अब उनमेंसे एक वरसे तो तुरन्त ही मेरे प्रिय पुत्र भरतको इस एकत्रित की हुई सामग्रीसे युवराज-पदपर अभियक्त कीजिये और दूसरेसे तुरन्त ही राम दण्डकनयनको चले जायँ ॥ १८-१९ ॥ वहाँ श्रीमान् रामको जटा-वल्कलादि धारण कर कन्द-मूल-फल खाते हुए सुनिवेषसे चौदह वर्षतक रहना चाहिये ॥ २० ॥ उसके पश्चात् अपनी इच्छासे चाहे वे अयोध्यामें लौट आवें अथवा वनहीमें रहें किन्तु कमलनयन राम कल सवेरे ही अवश्य वनको चले जायँ ॥ २१ ॥ यदि इसमें कुछ देरी होगी तो आपके सामने ही मैं अपने ग्राण छोड़ दूँगी ।

यदि किञ्चिद्विलम्बेत् प्राणां स्त्यक्ष्ये तवाग्रतः ।  
भव सत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेव मम प्रियम् ॥२२॥

श्रुत्वैतदारुणं वाक्यं कैकेय्या रोमहर्षणम् ।  
निपपात महीपालो वज्राहत इवाच्चलः ॥२३॥

शनैरुन्मील्य नयने विमृज्य परया भिया ।  
दुःखमो वा मया दृष्टो खथवा चित्तविभ्रमः ॥२४॥

इत्यालोक्य पुरः पर्तीं व्याघ्रीमिव पुरः स्थिताम् ।  
किमिदं भाष्ये भद्रे मम प्राणहरं वचः ॥२५॥

रामः कमपराधं ते कुतवान्कमलेक्षणः ।  
ममाग्ने राघवगुणान्वर्णयस्यनिशं शुभान् ॥२६॥

कौसल्यां मां सर्वं पश्यन् शुश्रूषां कुरुते सदा ।  
इति ब्रुवन्तीत्वं पूर्वमिदानीं भाष्येऽन्यथा ॥२७॥

राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे ।  
अनुगृहीत्वा मां वामे रामान्नास्ति भयं तव ॥२८॥

इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षः पादयोनिं पपात ह ।  
कैकेयीं प्रत्युवाचेदं साऽपि रक्तान्तलोचना ॥२९॥

राजेन्द्र किं त्वं भ्रान्तोऽसि उक्तं तद्वाप्सेऽन्यथा ।  
मिथ्या करोपि चेत्खीयं भाषितं नरको भवेत् ॥३०॥

वनं न गच्छेद्यदि रामचन्द्रः  
प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्तः ।

उद्धन्धनं वा विपभक्षणं वा  
कृत्वा मारिष्ये पुरतस्तवाहम् ॥३१॥

सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके  
विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु ।

रामोपरि त्वं शपथं च कृत्वा  
मिथ्याप्रतिज्ञो नरकं प्रयाहि ॥३२॥

इत्युक्तः प्रियया दीनो मग्नो दुःखार्थवे नृपः ।  
मूर्च्छितः पतितो भूमौ विसंज्ञो मृतको यथा ॥३३॥

आप अपनी प्रतिज्ञा सत्य कीजिये, मेरा प्रिय कार्य बस यही है” ॥ २२ ॥

कैकेयीके ऐसे रोमाञ्चकारी कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथ बज्राहत पर्वतके समान गिर पडे ॥ २३ ॥ तत्पथात् धीरे-धीरे नेत्र खोलकर अति भयपूर्वक आँसू पोछे और मन-ही-मन कहने लगे—‘मैंने यह कोई दुःखम् देखा है या मेरे चित्तको भ्रम हो गया है ?’ ॥ २४ ॥

इसी समय अपने सामने सिंहिनीके समान बैठी हुई रानी कैकेयीको देखकर कहने लगे—‘हे भद्रे ! मेरे प्राणोंको हरनेवाले तुम ये क्या वचन बोल रही हो ?’ ॥ २५ ॥ कमलनयन रामने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? तुम तो अहर्निश मेरे सामने रामके शुभ गुण गाया करती थी ॥ २६ ॥ तुम तो पहले कहा करती थी कि ‘राम मुझे और कौसल्याको समान जानकर सदा ही मेरी सेवा किया करते हैं ।’ फिर इस समय तुम यह उल्टी बात कैसे कह रही हो ? ॥ २७ ॥ तुम अपने पुत्रके लिये राज्य ले लो, किन्तु रामको घर ही रहने दो । हे वामे ! तुम मुझपर कृपा करो, रामसे तुम्हें कोई भय न करना चाहिये” ॥ २८ ॥

ऐसा कहकर महाराज दशरथ नेत्रोंमें जल भरकर कैकेयीके चरणोंमें गिर पडे । तब उस कैकेयीने आँखें लाल करके यों कहा—॥ २९ ॥ “राजेन्द्र ! क्या तुम्हारी बुद्धिमें भ्रम हो गया है जो अपने कथनके विपरीत बोल रहे हो; याद रखो, यदि तुमने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी तो तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा ॥ ३० ॥ सुनो, यदि कल प्रातःकाल ही मृगचर्म और बल्कल-वस्त्र धारण कर राम वनको न गये तो मैं तुम्हारे सामने ही फाँसी लगाकर या विष खाकर मर जाऊँगी ॥ ३१ ॥ तुम संसारमें सभी समाजोंमें ‘मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ’ ऐसा कहकर लोगोंको धोखेमें डाला करते हो, अब तुम रामकी शपथ करके की हुई प्रतिज्ञाको भी तोड़ रहे हो, अतः तुम्हें नरकमें जाना पड़ेगा” ॥ ३२ ॥

अपनी प्रियाके ऐसे कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथ दुःख-समुद्रमें झूलकर बड़े व्याकुल हो गये;

एवं रात्रिगता तस्य दुःखात्संवत्सरोपमा ।  
अरुणोदयकाले तु वन्दिनो गायका जगुः ॥३४॥

निवारयित्वा तान् सर्वान्केकेयी रोपमास्थिता ।  
तुतः प्रभातसमये मध्यक्षमुपस्थिताः ॥३५॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या क्षषयः कन्यकास्तथा ।  
छत्रं च चामरं दिव्यं गजो वार्जी तथैव च ॥३६॥

अन्याश्च वारमुख्या याः पौरजानपदास्तथा ।  
वसिष्ठेन यथा ऽज्ञासं तत्सर्वं तत्र संस्थितम् ॥३७॥

स्त्रियो वालाश्च दृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे ।  
कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम् ॥३८॥

सर्वभरणसम्पन्नं किरीटकटकोज्ज्वलम् ।  
कौस्तुभाभरणं इयामं कन्दर्पशतसुन्दरम् ॥३९॥

अभिषिक्तं समायातं गजारुदं सिताननम् ।  
श्वेतच्छ्रधरं तत्र लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ॥४०॥

रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत् ।  
इत्युत्सुकधियः सर्वे वभूवुः पुरवासिनः ॥४१॥

नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थं चेति चिन्तयन् ।  
सुमन्त्रः शनकैः प्रायाद्यत्र राजाऽविष्टुते ॥४२॥

वर्धयन् जयशब्देन प्रणमन्विशरसा नृपम् ।  
अतिखिन्नं नृपं दृष्टा कैकेयीं समपृच्छत ॥४३॥

देवि कैकेयि वर्धस्वकिं राजा दृश्यतेऽन्यथा ।  
तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ॥४४॥

राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ।  
प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्य इव लक्ष्यते ।

राममानय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्टुमिहेच्छति ॥४५॥

और मृतकके समान मूर्धित और संज्ञाशून्य होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अत्यन्त दुःख-के कारण उनकी वह रात्रि एक वर्षके समान बीती । इधर सूर्योदय होते ही गायक और वन्दीजन स्तुतिगान करने लगे ॥ ३४ ॥ किन्तु कैकेयीने अत्यन्त रोपमें भरकर उन सबको उसी समय रोक दिया । तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋषिगण, कन्याएँ, दिव्य छत्र और चैवरतया हाथी और घोड़े आदि सभी अभिषेकोपयोगी वस्तुएँ मध्य-द्वारपर उपस्थित की गयी ॥ ३५-३६ ॥ इनके अतिरिक्त वसिष्ठजीकी आज्ञानुसार मुख्य-मुख्य वारांगनाएँ तथा पुरवासी और जनपदवासी भी वहाँ उपस्थित हो गये ॥ ३७ ॥ उस रात ली, बालक और वृद्ध किसी-को भी नींद नहीं आयी । सभीको यहाँ चटपटी ली रही कि हम रेशमीं पीताम्बर पहने भगवान् रामको कव देखेंगे ? ॥ ३८ ॥ जो समस्त आभूपणोंसे सुसज्जित, उज्ज्वल किरीट और कटक पहने हुए हैं तथा कौस्तुभ-मणिसे विभूषित और सैकड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर इयाम-नर्ण हैं एवं सर्व-सुलक्षण-सम्पन्न श्रीलक्ष्मण-जीने जिनके ऊपर श्वेत छत्र लगाया हुआ है ऐसे श्री-रामको राज्याभिषेकके अनन्तर मन्द मुसकानके सहित हाथीपर चढ़कर आते हुए हम कव देखेंगे ? वह मङ्गलप्रभात कव होगा ? इस प्रकार सभी पुरवासियोंका चित्त अति उत्कण्ठित हो रहा था ॥ ३९-४१ ॥

इसी समय मन्त्रिवर सुमन्त्र यह सोचकर कि ‘महाराज अभीतक कैसे नहीं उठे’ धीरेसे जहाँ राजा दशरथ थे वहाँ गये ॥ ४२ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने जय-जयकार कर राजाको शिर झुकाकर प्रणाम किया और उन्हें अत्यन्त खिल देखकर कैकेयीसे पूछा— ॥ ४३ ॥ “देवि कैकेयि ! आपका अनुदय हो, कहिये आज महाराज अनमने कैसे दिखायी देते हैं ?” इसपर कैकेयीने कहा—“आज महाराजको रात्रि-में विलुप्त नींद नहीं आयी ॥ ४४ ॥ रात्रिभर रामका चिन्तन करते हुए ‘राम राम राम’ ही रटते रहे हैं । इस प्रकार जागते रहनेके कारण ही राजा कुछ अस्वस्य दिखायी देते हैं । महाराज रामको देखना चाहते हैं, इसलिये तुम शीघ्र ही उन्हें लिवा लाओ” ॥ ४५ ॥

सुमन्त्र उवाच-

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भासिनि ।  
तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ॥४६॥  
सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् ।  
इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा सुमन्त्रो राममन्दिरम् ॥४७॥  
अवारितः प्रविष्टेऽयं त्वरितं राममब्रवीत् ।  
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते राम राजीवलोचन ॥४८॥  
पितुर्गेहं मया सार्वं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ।  
इत्युक्तो रथमारुद्ध सम्भ्रमात्त्वरितो यथौ ॥४९॥  
रामः सारथिना सार्वं लक्ष्मणेन समन्वितः ।  
मध्यकक्षे वसिष्ठादीन् पश्यन्नेव त्वरान्वितः ॥५०॥  
पितुः समीपं सङ्गम्य ननाम चरणौ पितुः ।  
राममालिङ्गितुं राजा समुत्थाय ससम्भ्रमः ॥५१॥  
वाहू प्रसार्य रामेति दुःखान्मध्ये पपात ह ।  
हाहेति रामस्तं शीघ्रमालिङ्गयाङ्के न्यवेशयत् ॥५२॥

राजानं मूर्च्छितं दृष्टा चुक्रशुः सर्वयोपितः ।  
किमर्थं रोदनमिति वसिष्ठोऽपि समाविशत् ॥५३॥

रामः पश्च त्रिमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम् ।  
एवं पृच्छति रामेसा कैकेयी राममब्रवीत् ॥५४॥

त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखोपशान्तये ।  
किञ्चित्कार्यं त्वया राम कर्तव्यं नृपतेर्हितम् ॥५५॥

कुरु सत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानं सत्यवादिनम् ।  
राजा वरद्वयं दत्तं मम सन्तुष्टचेतसा ॥५६॥

त्वदधीनं तु तत्सर्वं चकुं त्वां लज्जते नृपः ।  
सत्यपाशेन सम्बद्धं पितरं त्रातुमर्हसि ॥५७॥

पुत्रशब्देन चैतद्वि नरकात्त्रायते पिता ।  
रामस्तयोदितं श्रुत्वा शूलेनाभिहतो यथा ॥५८॥

व्यथितः कैकेयीं प्राह किं मामेवं ग्रभाषसे ।

सुमन्त्र बोले—हे भासिनि ! महाराजकी आज्ञा पाये बिना मैं कैसे जा सकता हूँ ? मन्त्रीका यह बचन सुनकर महाराज बोले—॥४६॥ “सुमन्त्र ! मैं मनोहर-मूर्ति रामको देखूँगा । तुम उन्हें शीघ्र ही ले आओ ।” राजाके ऐसा कहते ही सुमन्त्र तुरन्त रामके महलको गये ॥ ४७ ॥ और बिना रोक-टोकके तुरन्त भीतर जाकर रामसे कहा—“कमल-नयन राम ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम शीघ्र ही मेरे साथ पिताजीके घर चलो, महाराज तुम्हें देखना चाहते हैं ।” यह सुनते ही राम चकित-से होकर तुरन्त ही रथपर चढ़कर चले ॥ ४८-४९ ॥ सारथी और लद्मणके सहित भगवान् रामने मध्यद्वारपर विराजमान वसिष्ठादि गुरुजनोंका केवल दर्शनमात्रसे ही सत्कार कर जल्दीसे पिताजीके पास पहुँच उनके चरणोंमें प्रणाम किया । उस समय रामको गले लगानेके लिये ज्यों ही उठकर महाराज दशरथने आवेगके साथ हाथ बढ़ाये कि वे बीचहीमें दुःखपूर्वक ‘हा राम ! हा राम !’ कहते हुए गिर पड़े । तब रामचन्द्रजीने हाहाकार करते हुए अति शीघ्रतसे उन्हें गले लगाकर अपनी गोदमें बैठा लिया ॥ ५०-५२ ॥

महाराजको मूर्च्छित देखकर रनिवासकी समस्त महिलाएँ रोने लगीं । तब यह सोचकर कि ‘यह रुदन क्यों हो रहा है ?’ वहाँ वसिष्ठजी भी चले आये ॥ ५३ ॥ भगवान् रामने कैकेयीसे पूछा—“महाराजके इस दुःखका क्या कारण है ?” उनके इसप्रकार पूछनेपर कैकेयी बोली—॥५४॥ “हे राम ! महाराजके इस दुःखके कारण तुम्हीं हो; तुम्हें उनके दुःखके शान्त करनेके लिये उनका कुछ प्रिय कार्य करना होगा ॥ ५५ ॥ तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, महाराजको भी सत्यवादी बनाओ । उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु उनकी सफलता तुम्हारे ही अधीन है । महाराजको तो तुमसे कहनेमें संकोच मालूम होता है; किन्तु तुम्हें सत्यपाशमें बँधे हुए अपने पिताजीकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये ॥ ५७ ॥ क्योंकि ‘पुत्र’ शब्दका अभिप्राय ही यह है कि पिता-की नरकसे रक्षा की जाय ।”

कैकेयीकी ये ब्रातें सुनकर रामने मानों शूलसे विद्ध हुएके समान व्यथित होकर कहा—“मातः ! आज

पित्रथे जीवितं दास्ये पिवेयं विपमुल्बणम् ॥५९॥  
 सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्  
 अनाज्ञसोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः ॥६०॥  
 उत्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः ।  
 उत्कोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते ॥६१॥  
 अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम ।  
 सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते ॥६२॥  
 इति रामप्रतिज्ञां सा श्रुत्वा वकुं प्रचक्रमे ।  
 रामत्वदभिपेकार्थं संभाराः संभृताश्च ये ॥६३॥  
 तैरेव भरतोऽवश्यमभिपेच्यः प्रियो मम ।  
 अपरेण चरेणाशु चीरवासा जटाधरः ॥६४॥  
 चन्त्रं प्रयाहि शीघ्रं त्वमद्यैव पितुराज्ञया ।  
 चतुर्दशं समाप्तत्र वस मुन्यन्नभोजनः ॥६५॥  
 एतदेव पितुस्तेऽद्य कार्यं त्वं कर्तुमर्हसि ।  
 राजा तु लज्जते वकुं त्वामेवं रघुनन्दन ॥६६॥

## श्रीराम उवाच

भरतस्यैव राज्यं स्यादहं गच्छामि दण्डकान् ।  
 किन्तु राजा न चक्षीह मां न जानेत्र कारणम् ॥६७॥  
 श्रुत्वैतद्रामवचनं द्वष्टा रामं पुरः स्थितम् ।  
 ग्राह राजा दशरथो दुःखितो दुःखितं वचः ॥६८॥  
 स्त्रीजितं आन्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् ।  
 निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत् ॥६९॥  
 एवं चेदनृतं नैव मां स्पृशेद्रघुनन्दन ।  
 इत्युक्त्वा दुःखसन्त्सो विललाप नृपत्तदा ॥७०॥  
 हा राम हा जगन्नाथ हा मम ग्राणवल्लभ ।  
 मां विसृज्य कथं घोरं विपिनं गन्तुमर्हसि ॥७१॥  
 इति रामं समालिङ्ग्य मुक्तकण्ठो रुरोद ह ।  
 विमृज्य नयने रामः पितुः सजलपाणिना ॥७२॥

हमसे ऐसी वातें क्यों करती हो ? पिताजीके लिये मैं जीवन दे सकता हूँ, भयंकर विपरी सकता हूँ ॥ ५८-५९ ॥ और सीता, कौसल्या तथा शश्यको भी द्योद्य सकता हूँ । जो पुत्र पिताकी आङ्गाके बिना ही उनका अभीष्ट कार्य करता है वह उत्तम है ॥ ६० ॥ जो पिताके कहनेपर करता है वह मध्यम द्योद्य है और जो कहनेपर भी नहीं करता वह पुत्र तो विष्टाके समान है ॥ ६१ ॥ अतः पिताजीने मैं लिये जो कुछ आङ्गा की है उसे मैं शब्दय पूर्ण करूँगा, यह सर्वथा सत्य है; राग एक मुख्यसे दो वाक कभी नहीं कहता" ॥ ६२ ॥

रामका ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर कैकेयीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया, "हे राग ! तुम्हारे अभिपेक्षक लिये जो कुछ सामग्री एकत्रित की गयी है ॥ ६३ ॥ उसके द्वारा निश्चय ही मेरे प्रिय पुत्र भरतका अभिपेक्ष होना चाहिये । ( यहीं गेरा प्रथम वर है ) । दूसरे वरके अनुसार पिताकी आङ्गाके आज तुरन्त ही तुम चलकर नहै और जटा धारणकर बनको जाओ और वहाँ मुनिजनोचित गोजन करते हुए चौढ़ह वर्द्धतक रहो ॥ ६४-६५ ॥ वस, तुम्हारे पिताका यहीं कार्य है, जो तुम्हें करना चाहिये । किन्तु राजा इन सब वातोंको तुमसे कहनेमें संकोच नहते हैं" ॥ ६६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले-माता ! भगव आनन्दसे यह राज्य भोगे और मैं भी अभी दण्डकारण्यको जाना हूँ । किन्तु इसका कारण मालूम नहीं होता कि महाराज मुझसे क्यों नहीं कहते ? ॥ ६७ ॥

रामके ये वचन सुनकर और उन्हें अपने सामने बैठे देखकर दुःखातुर महाराज दशरथने इस प्रकार अति दुःखभरे वचन कहे ॥ ६८ ॥ "राम ! मुझ छीपरवश, भ्रान्तचित्त, कुमार्गनामी पापात्माको बाँधकर यह राज्य लेलो; इससे तुम्हें कोई पाप न लगेता ॥ ६९ ॥ हे रघुनन्दन ! ऐसा होनेपर मुझे भी असत्य त्पर्श्न न करेगा ।" ऐसा कह राजा दशरथ दुःखातुर होकर विलाप करने लगे ॥ ७० ॥ 'हा राम ! हा जगन्नाथ ! हा ग्राणप्यारे ! मुझे छोड़कर तुम धोर घनमें जाना कैसे उचित समझ रहे हो ?' ॥ ७१ ॥

ऐसा कहकर उन्होंने रामको गले लगा लिया और जी खोलकर रोने लगे । तब रामने हाथमें जल लेकर

आश्वासयामास नृपं शनैः स नयकोविदः ।  
 किमत्र दुःखेन विभो राज्यं शासतु मेऽनुजः ॥७३॥

अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्यं पुनर्यासामि ते पुरम् ।  
 राज्यात्कोटिगुणं सौख्यं सम राजन्वने सतः ॥७४॥

त्वत्सत्यपालनं देवकार्यं चापि भविष्यति ।  
 कैकेय्याश्रं प्रियो राजन्वनवासो महागुणः ॥७५॥

इदानीं गन्तुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हृज्ज्वरः ।  
 सम्भाराशोपहीयन्तामभिषेकार्थमाहृताः ॥७६॥

मातरं च समाश्वास्य अनुनीय च जानकीम् ।  
 आगत्य पादौ वन्दित्वा तत्र यास्ये सुखं वनम् ॥७७॥

इत्युक्त्वा तु परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ ।  
 कौसल्याऽपि हरेः पूजां कुरुते रामकारणात् ॥७८॥

होमं च कारयामास ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ।  
 व्यायते विष्णुमेकाग्रमनसा मौनमास्थिता ॥७९॥

अन्तःस्थमेकं धनचित्प्रकाशं  
 निरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् ।

विष्णुं सदानन्दसयं हृदव्ये  
 सा भावयन्ती न ददर्श रामम् ॥८०॥

पिताके आँसू पौछे ॥ ७२ ॥ और नीतिकुशल रामजीने धीरे-धीरे उन्हें ढाढ़स बँधाया । वे कहने लगे—“प्रभो ! यदि मेरे छोटे भाई मरत राज्यशासन करें तो इसमें दुःखकी क्या बात है ? ॥ ७३ ॥ मैं भी इस प्रतिज्ञाका पालन कर फिर आपके पास अयोध्या लौट ही आऊँगा । और हे राजन् ! वनमें रहनेसे तो मुझे राज्यसे भी करोड़ गुना सुख होगा ॥ ७४ ॥ इसमें आपके सत्यकी रक्षा होगी, देवताओंका कार्य सिद्ध होगा और कैकेयीका भी हित होगा; अतः हे राजन् ! वनवासमें सब प्रकार महान् गुण है ॥ ७५ ॥ अब मैं शीघ्र ही जाना चाहता हूँ; माता कैकेयीकी हार्दिक व्यया शान्त हो । अभिषेकके लिये एकत्रित की ढुई यह सामग्री अलग रख दी जाय ॥ ७६ ॥ माता कौसल्याको सान्त्वना देकर और जानकीको समझा-बुझाकर मैं अभी आता हूँ और आपके चरणोंकी वन्दना-कर आनन्दपूर्वक वनको जाता हूँ” ॥ ७७ ॥

ऐसा कहं उन्होंने पिताकी परिक्रमा की और मातासे मिलनेके लिये आये । इस समय माता कौसल्या रामके मंगलके लिये श्रीविष्णुभगवान्‌की पूजा कर रही थीं ॥ ७८ ॥ उन्होंने कुछ पहले हवन कराके ब्राह्मणों-को बहुत-सा धन दिया था और इस समय वह मौन धारणकर एकाग्रचित्तसे श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान कर रही थीं ॥ ७९ ॥ अपने हृदयमें अन्तर्यामी, चिदवन-स्वरूप, तेजोमय, निरतिशयस्वरूप, सदानन्दमय भगवान् विष्णुका ध्यान करती रहनेके कारण उन्होंने श्रीरामचन्द्र-जीको नहीं देख पाया ॥ ८० ॥

इति श्रीमद्व्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे  
 तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



## चतुर्थ सर्ग

भगवान् रामका मातासे विदा होना तथा सीता और लक्ष्मणके  
सहित बनगमनकी तैयारी करना।

श्रीमहादेव उवाच

ततः सुमित्रा दृष्टैनं रामं राजीं ससम्भ्रमा ।  
कौसल्यां बोधयामास रामोऽयं समुपस्थितः ॥ १ ॥

ध्रुत्वैव रामनामैषा बहिर्दृष्टिप्रवाहिता ।  
रामं दृष्ट्वा विशालाक्षमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ॥ २ ॥

सूर्घन्यवद्वाय पस्पर्श गात्रं नीलोत्पलच्छवि ।  
भुज्ञश्व पुत्रेति च प्राह मिष्टमन्नं क्षुधादितः ॥ ३ ॥

रामः प्राह न मे मातर्भोजनावसरः कुतः ।  
दण्डकागमने शीघ्रं मम कालोऽद्य निश्चितः ॥ ४ ॥

कैकेयीवरदानेन सत्यसन्धि पिता मम ।  
मरताय ददौ राज्यं ममाप्यारण्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥

चतुर्दश समास्तत्र ह्युपित्वा मुनिवेषधृक् ।  
आगमिष्ये पुनः शीघ्रं न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा सहसोद्दिग्मा मूर्च्छिता पुनरुत्थिता ।  
आह रामं सुदुःखार्ता दुःखसागरसम्पुत्ता ॥ ७ ॥

यदि राम वनं सत्यं यासि चेन्नय मामपि ।  
त्वद्विहीना क्षणाद्दं वा जीवितं धारये कथम् ॥ ८ ॥

यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्त्वा तिष्ठेन कुत्रचित् ।  
तथैव त्वां न शक्रोमि त्यक्तुं ग्राणात्प्रियं सुतम् ॥ ९ ॥

मरताय प्रसन्नश्वेद्राज्यं राजा प्रयच्छतु ।  
किमर्थं वनवासाय त्वामाज्ञाप्यति प्रियम् ॥ १० ॥

कैकेय्या वरदो राजा सर्वस्वं वा प्रयच्छतु ।  
त्वया किमपराद्दं हि कैकेय्या वा नृपस्य वा ॥ ११ ॥

पिता गुरुर्यथा राम तवाहमधिका ततः ।  
पित्राज्ञसो वनं गन्तुं वारयेयमहं सुतम् ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! तब महारानी सुमित्राने रामको देखकर सम्भ्रमपूर्वक महारानी कौसल्याको चेत कराकर बताया कि राम यहाँ हुए हैं ॥ १ ॥ रामका नाम सुनते ही उनका बहिर्दृष्टि हुई और उन्होंने विशालनयन रामको देख गंड लगाकर गोदमें बैठा लिया ॥ २ ॥ तथा उनका शिर नृंथकर उनके नील-कमल-सद्वा श्याम शरीरपर हाथ पेरा और कहा—“बेटा, भूख लगी होगी तुल मिश्रन खालो” ॥ ३ ॥

रामजी बोले—“माता ! मुझे भोजन करनेका समय नहीं है क्योंकि आज मेरे लिये यह मुम्ब शीघ्र ही दण्डकारण्य जानेके लिये निश्चित किया गया है ॥ ४ ॥ मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिताजीने माता कैकेयीको वर देकर भरतको राज्य और मुझे अति उत्तम वनवास दिया है ॥ ५ ॥ वहाँ मुनिवेषसे चौदह कर्त्त रहकर मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा; आप किसी प्रकारका चिन्ता न करें” ॥ ६ ॥

अचानक ऐसी त्रात सुनकर माता कौसल्या दुःखसे अचेत हो गयीं और फिर चेत होनेपर दुःख-सागरमें उछलती-इबर्ती दुःखातुर होकर रामसे कहने लगीं ॥ ७ ॥ “राम ! यदि सचमुच हीं तुम वनको जाते हों तो मुझे भी साथ ले चलो; तुम्हारे त्रिना मैं आधे क्षण भी कैसे जीवित रह सकती हूँ ? ॥ ८ ॥ जिस प्रकार गाँ अपने अल्पवयस्क बछड़ेको छोड़कर अन्यत्र नहीं रह सकती उसी प्रकार मैं भी तुझ अपने प्राणप्रिय पुत्रको नहीं छोड़ सकती ॥ ९ ॥ यदि राजा भरतसे प्रसन्न हैं तो उन्हें राज्य भले हीं दें परन्तु तुझ प्रियपुत्रको वनवासका आज्ञा क्यों देते हैं ? ॥ १० ॥ कैकेयीको वर देकर चाहे महाराज अपना सर्वस्व दे डालें, ( इसमें कोई आपत्ति नहीं ) किन्तु तुमने राजा अवशा कैकेयीका क्या विगाड़ा है ? ॥ ११ ॥ हे राम ! जिस प्रकार पिता तुम्हारे गुरु हैं उसी प्रकार मैं भी तो उनसे अधिक तुम्हारी गुरु हूँ ! यदि पिताने तुमसे वन जानेको कहा है तो मैं तुम्हें रोकती हूँ ॥ १२ ॥ यदि मेरे वाक्यका

यदि गच्छसि मद्माक्यमुद्धृत्य नृपवाक्यतः ।  
तदा प्राणान्परित्यज्य गच्छाभियमसादनम् ॥१३॥

लक्ष्मणोऽपि ततः क्षुत्वा कौसल्यावचनं रूपा ।  
उवाच राघवं वीक्ष्य दहन्विव जगत्वयम् ॥१४॥

उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम् ।  
वद्धा निहन्मि भरतं तद्वन्धून्मातुलानपि ॥१५॥

अद्य पश्यन्तु मे शौर्यं लोकान्प्रदहतः पुरा ।  
राम त्वभियेकाय कुरु यत्तमरिन्दम् ॥१६॥

घनुष्पाणिरहं तत्र निहन्यां विघ्नकारिणः ।

इति द्वुवन्तं सौभित्रिमालिङ्ग्य रघुनन्दनः ॥१७॥

शूरोऽसि रघुशार्दूल भमात्यन्तहिते रतः ।  
जानामि सर्वं ते सत्यं किन्तु तत्समयो नहि ॥१८॥

यदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं च यत् ।  
यदि सत्यं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते ॥१९॥

भोगा मेघवितानस्य विद्युत्तेखेव चञ्चलाः ।  
आयुरप्यग्निसन्तस्तलोहस्य जलविन्दुवत् ॥२०॥

यथा व्यालगलस्योऽपि भेको दंशानपेक्षते ।  
तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान् ॥२१॥

करोति दुःखेन हि कर्मतन्त्रं  
शरीरभोगार्थमहर्निश्च. नरः ।

देहस्तु भिन्नः पुरुषात्समीक्ष्यते  
को वात्र भोगः पुरुषेण भूज्यते ॥२२॥

पितृमातृसुतभ्रातृदारवन्धादिसङ्गमः ।  
प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठैषवच्चलः ॥२३॥

छायेव लक्ष्मीश्चपला प्रतीता  
तारुण्यमन्मूर्मिवद्भुवं च ।

स्वप्नोपमं स्त्रीसुखमायुरल्यं  
तथापि जन्तोरभिमान एषः ॥२४॥

उल्लङ्घन कर तुम राजाकी आज्ञासे. बनको चले जाओगे तो मैं अपना प्राण छोड़कर यमपुरको चली जाऊँगी” ॥ १३ ॥

तब लक्ष्मणने भी कौसल्याके वचन सुनकर रामजी-की ओर देखकर रोषसे त्रिलोकीको दग्ध करते हुए-से कहा ॥ १४ ॥ “मैं उन्मत्त, भ्रान्तचित्त और कैकेयीके वशवर्ती राजा दशरथको बाँधकर भरतको उनके सहायक मामा आदिके सहित मार डालूँगा ॥ १५ ॥ आज सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध करनेवाले कालानलके समान मेरे पौरुषको पहले वे सब लोग देख लें । हे शत्रुदमन राम ! आप अभियेककी तैयारी कीजिये ॥ १६ ॥ उसमें विद्व उपस्थित करनेवालोंको मैं हाथमें धनुष-व्याण लेकर मार डालूँगा ।”

लक्ष्मणजीके इस प्रकार कहनेपर रघुनाथजीने उन्हें गले लगाकर कहा ॥ १७ ॥ “हे रघुश्रेष्ठ ! तुम कडे शरीर और मेरे परम हितकारी हो । तुम जो कुछ कहते हो वह मैं सब सत्य मानता हूँ, किन्तु यह उसका समय नहीं है ॥ १८ ॥ यह जो कुछ राज्य और देह आदि दिखायी देता है वह सब यदि सत्य होता तो अवश्य तुम्हारा परिश्रम सफल होता ॥ १९ ॥ किन्तु ये भोग तो मेघरूपी वितानमें चमकती हुई बिजलीके समान चञ्चल हैं और आयु अग्रिमें तपाये हुए लोहेपर पड़ी हुई जलकी ब्रूँदके समान क्षणिक है ॥ २० ॥ जिस प्रकार सर्पके मुँहमें पड़ा हुआ भी मेंटक मच्छरोंको ताकता रहता है उसी प्रकार लोग कालरूप सर्पसे प्रस्ता हुए भी अनित्य भोगोंको चाहते रहते हैं ॥ २१ ॥ कैसा आश्वर्य है कि शरीरके भोगोंके लिये ही मनुष्य रात-दिन अति कष्ट सहकर नाना प्रकारकी क्रियाएँ करता रहता है । यदि यह समझ ले कि शरीर आत्मासे भिन्न है तो फिर भला पुरुष कैसे किसी भोगको भोग सकता है ? ॥ २२ ॥ पिता, माता, पुत्र, माई, ली और बन्धु-वान्धवोंका संयोग प्याजपर एकत्रित हुए जीवों अथवा नदी-प्रवाहसे इकट्ठी हुई लकड़ियोंके समान चञ्चल है ॥ २३ ॥ यह निस्सन्देह दिखायी पड़ता है कि लक्ष्मी छायाके समान चञ्चल, यौवन जलन्तरंगके समान अनित्य है, खी-सुख स्वप्नके समान मिथ्या और आयु अत्यन्त अल्प है तथापि प्राणियोंका इनमें कितना अभिमान है ? ॥ २४ ॥ यह संसार सदा रोगादि-संकुल

संसृतिः स्वमसदशी सदा रोगादिसङ्कुला ।  
 गन्धर्वनगस्त्रख्या मूढतामुवर्तते ॥२५॥  
 आयुष्यं क्षीयते यसादादित्यस्य गतागतैः ।  
 दृष्टाऽन्येषां जरामृत्यु कथञ्चिच्चैव वृच्यते ॥२६॥  
 स एव दिवसः सैव रात्रिरित्येव मूढधीः ।  
 भोगाननुपदत्येव कालवेगं न पद्धति ॥२७॥  
 प्रतिक्षणं क्षरत्येतदायुरामघटाम्बुद्धत् ।  
 सप्तत्रां इव रोगैषाः शरीरं प्रहरन्त्यहो ॥२८॥  
 जरा व्याघ्रीव पुरतस्तर्जयन्त्यविष्टुते ।  
 मृत्युः सहैव यात्येप समयं सम्प्रतीक्षते ॥२९॥  
 देहेऽहंभावमापन्नो राजाहं लोकविश्रुतः ।  
 इत्यस्मिन्मनुते जन्तुः कृमिविद्भस्संज्ञिते ॥३०॥  
 त्वगस्थिमांसविष्णमूत्रेरतोरक्तादिसंयुतः ।  
 विकारी परिणामी च देह आत्मा कर्त्तव्य वद ॥३१॥  
 यमास्थाय भवैँहोकं दग्धुमिच्छति लक्ष्मण ।  
 देहाभिमानिनः सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति हि ॥३२॥  
 देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ।  
 नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते ॥३३॥  
 अविद्या संसृतेर्हेतुविद्या तस्या निवर्तिका ।  
 तस्माद्यतः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुशुकुभिः ।  
 कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुस्तदन ॥३४॥  
 तत्रापि क्रोध एवालं मोक्षविभाय सर्वदा ।  
 येनाविष्टः पुमान्हन्ति पितृब्रातुसुहृत्सखीन् ॥३५॥  
 क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारवन्धनम् ।  
 धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं परित्यज ॥३६॥  
 क्रोध एष महान् शत्रुस्तृष्णा वैतरणी नदी ।  
 सन्तोषो नन्दनवनं शान्तिरेव हि कामधुक् ॥३७॥  
 तस्मात्क्षान्ति भजस्वाद्य शत्रुरेवं भवेत्त ते ।  
 देहेन्द्रियमनःप्राणबुद्ध्यादिभ्यो विलक्षणः ॥३८॥

तथा स्वप्न और गन्धर्व-नगरके समान मिथ्या है, मृद्ग-  
 जन ही इसको सत्य मानवर इसका अनुकरण करते  
 हैं ॥२५॥ नित्य सूर्यके उदय और अन्त तुम्हें से  
 आयु क्षीण हो रही है तथा नित्य ही दृसरोंको  
 बृद्धावस्था और मृत्यु हीती देना जाता है तो भी  
 मृद्ग पुरुषको किसी प्रकार चेतन नहीं होता ॥२६॥  
 नित्यप्रति उसी प्रकार दिन और रात दोनों हीं किन्तु  
 मृद्गमति पुरुष गोंगोंके पांछे ही ढौळता है, कान्धों  
 गतिको नहीं देखता ॥२७॥ करने वाले भी हृषि  
 जलके समान आयु प्रतिक्षण क्षीण हो रही है और  
 रोग-समूह शत्रुओंके समान शरीरको युद्धाये डालते  
 हैं ॥२८॥ बृद्धावस्था नित्यिनोंके समान इतनी हूँ  
 सामने खड़ी है और वह मृत्यु भी उनके साथ हीं  
 चलती है (अन्त) समयका प्रतीक्षा कर रही है ॥२९॥  
 किन्तु देहमें अहं-भावना करनेवाला जीव इस शृणि,  
 विष्णा और भन्नाहृषि शरीरको हीं 'मे लोक-प्रसिद्ध राजा  
 हूँ' ऐसा गानता है ॥३०॥ हे लक्ष्मण ! तुम कुल  
 सोचकर बनाओ कि जिनके आश्रयसे तुम संसारको  
 दग्ध करना चाहते हों वह त्वचा, अन्ति, मांस, विष्णा,  
 मूत्र, शुक्र और रुधिर आदिसे बना हुआ विकारी और  
 परिणामी देह आत्मा किस प्रकार हों सकता है ? हे  
 भाई ! इस देहाभिमानसे तुम पुरुषमें हीं गुण्यर्थ दोष  
 प्रकट हुआ करते हैं ॥३१-३२॥ 'मैं देह हूँ' इस  
 बुद्धिका नाम ही अविद्या है और 'मैं देह नहीं, चेतन-  
 आत्मा हूँ' इसीको विद्या कहते हैं ॥३३॥ अविद्या  
 जन्म-मरणहृषि संसारकी कारण है और विद्या उसीको  
 निवृत्त करनेवाली है; अतः गोकृष्ण-कामियोंको सदा  
 विद्योपार्जनका प्रयत्न करना चाहिये । हे शत्रुदमन !  
 काम-क्रोध आदि इस साधनमें विद्या करनेवाले शत्रु  
 हैं ॥३४॥ उनमें भी मोक्षमें विद्या उपस्थित करनेके  
 लिये तो एकमात्र क्रोध ही पर्याप्त है, जिसका आवेदा  
 होनेसे पुरुष पिता, माता, सुहृद और शत्रुओंका भी वध  
 कर डालता है ॥३५॥ मनके सन्तापका मूल क्रोध  
 ही है और क्रोध ही संसारका बन्धन तथा धर्मका  
 क्षय करनेवाला है। इसलिये तुम क्रोधको छोड़  
 दो ॥३६॥ यह क्रोध महान् शत्रु है, तृणा वैतरणी  
 नदी है, सन्तोष नन्दनवन है और शान्ति ही कामधेनु  
 है ॥३७॥ इसलिये तुम शान्ति धारण करो, इससे  
 (क्रोधरूपी) शत्रुका तुमपर प्रभाव न होगा । आत्मा

आत्मा शुद्धः स्वयंज्योतिरविकारी निराकृतिः ।  
 यावदेहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वं नात्मनो विदुः ॥३९॥  
 तावत्संसारदुःखौष्ट्रैः पीडियन्ते मृत्युसंयुताः ।  
 तस्मात्त्वं सर्वदा भिन्नमात्मानं हृदि भावय ॥४०॥  
 शुद्धचादिभ्यो वहिः सर्वमनुवर्तस्तु मा खिदः ।  
 भुजन्प्रारब्धमस्थिलं सुखं वा दुःखमेव वा ॥४१॥  
 प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्नपि न लिप्यसे ।  
 वाह्ये सर्वत्र कर्तृत्वमावहन्नपि राघव ॥४२॥  
 अन्तःशुद्धस्तुभावस्त्वं लिप्यसे न च कर्मभिः ।  
 एतन्मयोदितं कृत्स्नं हृदि भावय सर्वदा ॥४३॥  
 संसारदुःखरस्थिलेवाध्यसे न कदाचन ।  
 त्वमप्यस्त्र मयादिष्टं हृदि भावय नित्यदा ॥४४॥  
 समागमं प्रतीक्षस्तु न दुःखैः पीड्यसे चिरम् ।  
 न सदैकत्र संवासः कर्ममार्गानुवर्तिनाम् ॥४५॥  
 यथा प्रवाहपतितपुवानां सरितां तथा ।  
 चतुर्दशसमासहृथा क्षणाद्विमिव जायते ॥४६॥  
 अनुमन्यस्त्र मामस्त्र दुःखं सन्त्यज्य दूरतः ।  
 एवं चेत्सुखसंवासो भविष्यति वने मम ॥४७॥  
 इत्युक्त्वा दण्डवन्मातुः पादयोरपतचिरम् ।  
 । उत्थाप्याङ्के समावेश्य आशीर्भिरभ्यनन्दयत् ॥४८॥  
 सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।  
 रक्षन्तु त्वां सदा यान्तं तिष्ठन्तं निद्रया युतम् ॥४९॥  
 इति ग्रस्थापयामास समालिङ्ग्य पुनः पुनः ।  
 लक्ष्मणोऽपि तदा रामं नत्वा हर्षाशुगद्ददः ॥५०॥  
 आह राम ममान्तस्यः संशयोऽयं त्वया हृतः ।

देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि आदिसे पृथक् तथा शुद्ध स्वयंप्रकाश, अविकारी और निराकार हैं। जब-तक मनुष्य देह, इन्द्रिय और प्राण आदिसे आत्माकी मिलता नहीं जानते तबतक वे मृत्युपाशमें बँधकर सांसारिक दुःखसमूहसे पीडित होते रहते हैं। इसलिये तुम सर्वदा अपने हृदयमें बुद्धि आदिसे आत्माको मिल अनुभव करो, इस सम्पूर्ण बाह्य व्यवहारका अनुवर्तन करो; और सुख अथवा दुःखरूप जैसा प्रारब्ध हो उसीको मोगते हुए चित्तमें खेद न मानो ॥ ३८-४१ ॥ हे रघुपुत्र ! बाहरसे ( इन्द्रिय आदिद्वारा ) कर्तृत्व प्रकट करते हुए जो कार्य प्रारब्धवश उपस्थित हो उसे करते रहनेसे भी तुम बन्धनमें नहीं पड़ोगे ॥४२॥ भीतरसे राग-द्वेषरहित और शुद्धस्तुभाव रहनेके कारण तुम कर्मोंसे लिप्त न होगे। मेरे इस सम्पूर्ण कथनपर तुम सर्वदा अपने हृदयमें विचार करो ॥ ४३ ॥ ऐसा करनेसे तुम सम्पूर्ण सांसारिक दुःखोंसे कभी बाधित न होगे। हे माता ! तुम भी मेरे इस कथनपर नित्य विचार करना ॥ ४४ ॥ और मेरे पितृ मिलनेकी प्रतीक्षा करती रहना। तुम्हें अधिक काल दुःख न होगा। कर्मबन्धनमें बँधे हुए जीवोंका सदा एक ही साय रहना-सहना नहीं हुआ करता ॥ ४५ ॥ जैसे नदीके प्रवाहमें पड़कर बहती हुई ढोंगियाँ सदा साथ-साथ ही नहीं चलतीं। माता ! यह चौदह वर्षकी अवधि आधे क्षणके समान बीत जायगी, आप अब दुःखको दूर करके हमें वन जानेकी अनुमति दीजिये। आपके ऐसा करनेसे मैं वनमें सुखपूर्वक रह सकूँगा” ॥ ४६-४७ ॥

ऐसा कह श्रीरामचन्द्रजी बहुत देरतक दण्डके समान माताके चरणोंमें पड़े रहे। तदनन्तर माताने उन्हें उठाकर गोदमें बैठा लिया और आशीर्वाद देकर उनकी प्रशंसा की ॥ ४८ ॥ वे बोलीं—“तुम्हारे चलते, बैठते अथवा सोते समय गन्धर्वों-सहित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिक सम्पूर्ण देवगण तुम्हारी सर्वदा रक्षा करें” ॥ ४९ ॥

इस प्रकार बारम्बार हृदयसे लगाकर माताने रामको विदा किया। तब लक्ष्मणजीने भी रामजीसे आँखोंमें आनन्दाश्रु भरकर गदगद वाणीसे कहा—“हे राम ! आपने मेरा आन्तरिक सन्देह दूर कर दिया, अब मैं

यास्यामि पृष्ठो राम सेवां कर्तुं तदादिश ॥५१॥

अतुगृहीष्व मां राम नोचेत्प्राणं स्त्यजाम्यहम् ।

तथेति राघवोऽप्याह लक्ष्मणं याहि माचिरम् ॥५२॥

प्रतस्थे तां समाधातुं गतः सीतापतिर्विभुः ।

आगतं पतिमालोक्य सीता सुसितभाषिणी ॥५३॥

स्वर्णपात्रस्य सलिलैः पादौ प्रक्षाल्य भक्तिरः ।

पश्च पतिमालोक्य देव किं सेनया विना ॥५४॥

आगतोऽसि गतः कुत्र श्वेतच्छत्रं च ते कुतः ।

वादित्राणि न वाघन्ते किरीटादि विवर्जितः ॥५५॥

सामन्तराजसहितः सम्भ्रमान्नागतोऽसि किम् ।

इति स सीतया पृष्ठो रामः ससितमबीत् ॥५६॥

राजा मे दण्डकारण्ये राज्यं दत्तं शुभेऽखिलम् ।

अतस्तपालनार्थयि शीघ्रं यास्यामि भासिनि ॥५७॥

अद्यैव यास्यामि वनं त्वं तु शश्रूसमीपगा ।

शुश्रूपां कुरु मे मातुर्न मिथ्यावादिनो वयम् ॥५८॥

इति ब्रुवन्तं श्रीरामं सीता भीताऽन्नवीद्वचः ।

किमर्थं वनराज्यं ते पित्रा दत्तं महात्मना ॥५९॥

तासाह रामः कैकेयै राजा प्रीतो वरं ददौ ।

भरताय ददौ राज्यं वनवासं समानघे ॥६०॥

चतुर्दशं समास्तत्र वासो मे किल याचितः ।

तथा देव्या ददौ राजा सत्यवादी दयापरः ॥६१॥

अतः शीघ्रं गमिष्यामि मा विन्नं कुरु भासिनि ।

श्रुत्वा तद्रामवचनं जानकी प्रीतिसंयुता ॥६२॥

अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्त्वमेष्यसि ।

इत्याह मां विना गन्तुं तव राघव नोचितम् ॥६३॥

आपकी सेवा करनेके लिये आपके पाँछे-पाँछे चलेंगा, आप इसके लिये आज्ञा दीजिये ॥ ५०-५१ ॥ ऐ ग्रन्थो ! आप मुख्यपर कृपा कांजिये, नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूँगा ।” तब रघुनाथजीने भी छलणासे कहा—‘बहुत अच्छा, चलो देरा न करो’ ॥ ५२ ॥

तदनन्तर सीतापति गगवान् राम सीताजीके समझानेके लिये चले और अपने मालूमें पहुँचे तब मन्द-मुसकानपूर्वक बोलनेवाली श्रीसीताजीने पनिदेवको आते देख एक सुवर्ण-पत्रमें जल देकर भक्तिपूर्वक उनके चरण धंये और श्वर्माको और देखने हुए पूछा—“देव ! इस समय मेनाके विना ही आप कैसे आये हैं ? आप ग्रामकाल कहाँ जायें ? आपका श्वेत छत्र कहाँ है ? वालोंका वजना नयों बढ़ गया है और आप किरीटादि राजोचित आभूतणोंने गहित क्यों हैं ? ॥ ५३-५५ ॥ आप मन्त्री और गजाओंके सहित बड़े ठाट-बाटसे क्यों नहीं आये ?”

सीताजीके इस प्रकार पूछनेपर श्रीसीताजीने मुसकाकर कहा ॥ ५६ ॥ “हे श्रुते ! पिताजीने मुझे दण्डकारण्यका सम्पूर्ण राज्य दिया है, अतः हे भासिनि ! मैं शीघ्र ही उसका प्रबन्ध करनेके लिये चाहूँ जाऊँगा ॥ ५७ ॥ मैं आज ही वनको जा रहा हूँ; तुम अपनी जालुके पास जावर उनको सेवा-शुश्रूपामें रहो । मैं झठ नहीं बोलता” ॥ ५८ ॥

रामचन्द्रजीके इस प्रकार करनेपर सीताजीने भयभीत होकर कहा—“आपके गहात्मा पिताजीने आपको वनका राज्य वयों दिया है ?” ॥ ५९ ॥

तब रामचन्द्रजीने उनसे कहा—“हे अनधे ! महाराजने प्रसन्नतापूर्वक कैकेयीको वर देकर भरतको राज्य और मुझे वनवास दिया है ॥ ६० ॥ देवी र कैकेयीने मेरे लिये चौदह वर्षतक वनमें रहना मांगा था, सो सत्यवादी दयालु महाराजने देना द्वीक्षार दर लिया है ॥ ६१ ॥ अतः हे भासिनि ! मैं शीघ्र ही वहाँ जाऊँगा, तुम इसमें किसी प्रकारका विनाखड़ा न करना ।” रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर सीताजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा—“पहले मैं वनको जाऊँगी उसके पीछे आप आना । हे राघव ! मुझे छोड़कर आपको वनमें जाना उचित नहीं है” ॥ ६२-६३ ॥

तामाह राघवः प्रीतः स्वप्रियां प्रियवादिनीम् ।  
 कथं वनं त्वां नेष्येऽहं बहुव्याघ्रमृगाकुलम् ॥६४॥  
 राक्षसा धोरंरूपाश्च सन्ति मानुषभोजिनः ।  
 सिंहव्याघ्रवराहाश्च सञ्चरन्ति समन्ततः ॥६५॥  
 केद्यम्लफलमूलानि भोजनार्थं सुमध्यमे ।  
 अपूपानि व्यज्ञनानि विद्यन्ते न कदाचन ॥६६॥  
 काले काले फलं वाऽपि विद्यते कुत्र सुन्दरि ।  
 मार्गो न दृश्यते कापि शर्कराकण्टकान्वितः ॥६७॥  
 गुहागह्वरसम्बाधं शिळ्ठीदंशादिभिर्युतम् ।  
 एवं वहुविधं दोषं वनं दण्डकसंज्ञितम् ॥६८॥  
 पादचारेण गन्तव्यं शीतवातातपादिस्त् ।  
 राक्षसादीन्वने दण्डवा जीवितं हास्यसेऽचिरात् ॥६९॥  
 तसाङ्गदे गृहे तिष्ठ शीघ्रं द्रक्ष्यसि मां पुनः ।  
 रामस्य वचनं श्रुत्वा सीता दुःखसमन्विता ॥७०॥  
 प्रत्युवाच स्फुरद्वक्त्रा किञ्चित्कोपसमन्विता ।  
 कथं मामिच्छसे त्यक्तुं धर्मपल्लीं पतिव्रताम् ॥७१॥  
 त्वदनन्यामदोपां मां धर्मज्ञोऽसि दयापरः ।  
 त्वत्समीपे स्थितां राम को वा मां धर्षयेद्दने ॥७२॥  
 फलमूलादिकं यद्यत्त्वं भुक्तावशेषितम् ।  
 तदेवामृततुल्यं मे तेन तुष्टा रमाम्यहम् ॥७३॥  
 त्वया सह चरन्त्या मे कुशाः काशाश्च कण्टकाः ।  
 पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न संशयः ॥७४॥  
 अहं त्वां क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी ।  
 बाल्ये मां वीक्ष्य कश्चिद्दै ज्योतिःशास्त्रविशारदः ॥  
 ग्राह ते विपिने वासः पत्या सह भविष्यति ।  
 सत्यवादी द्विजो भूयाद्भिष्यामि त्वया सह ॥७६॥

तब रघुनाथजीने ग्रसन्न होकर अपनी प्रिया प्रियवादिनी जानकीसे कहा—“मैं तुम्हें अनेकों व्याघ्रादि वन्य-पशुओंसे पूर्ण वनमें कैसे साथ ले चलूँ ॥ ६४ ॥ वहाँ मनुष्योंको खानेवाले भयंकर राक्षस रहते हैं और सब ओर सिंह, व्याघ्र तथा शूकर आदि हिंस-जीव फिरते हैं ॥ ६५ ॥ हे सुन्दर कमरवाली । वहाँ भोजन-के लिये कड़ुए और खट्टे फल-मूलादि ही मिलते हैं; किसी प्रकारके पूए आदि व्यज्ञन वहाँ कभी नहीं मिलते ॥ ६६ ॥ हे सुन्दरि ! वे फल भी सदा नहीं मिलते, किसी-किसी समय कहीं मिलते हैं । उस वनमें कहीं-कहीं तो धूलि और काँटोंसे ढके रहनेके कारण मार्ग भी दिखायी नहीं देता ॥ ६७ ॥ वह दण्डकारण्य ऐसे ही अनेकों दोषोंसे भरा हुआ है । उसमें अनेकों गुफाएँ और गड्ढे हैं तथा वह ज़िङ्गी और डाँसोंसे मरा हुआ है ॥ ६८ ॥ ऐसे वनमें शीत, वायु और धाम आदिके समय भी पैदल ही चलना पड़ता है । मुझे सन्देह है कि तुम वनमें राक्षसादिकी भयंकर मूर्ति देखकर तुरन्त ही प्राणत्याग कर बैठोगी ॥ ६९ ॥ इसलिये हे भद्रे ! तुम घर ही रहो, मुझे शीघ्र ही फिरदेख पाओगी ।”

रामके ये वचन सुनकर सीताने दुःखातुर होकर कुछ क्रोधसे ओंठ कँपाते हुए कहा—“मुझ पतिव्रता धर्मपलीको आप घर क्यों छोड़ना चाहते हैं ? ॥ ७०-७१ ॥ आप धर्मज्ञ और दयाल हैं फिर अपनी अनन्यमत्ता और दोषहीना मुझ पलीको क्यों छोड़ते हैं ? हे राम ! वनमें भी आपके पास रहते हुए मेरा कोई क्या विगाड़ सकता है ? ॥ ७२ ॥ जो भी फल-मूलादि आपके खानेसे बचेंगे वे ही मेरे लिये अमृतके समान होंगे । उनसे सन्तुष्ट होकर मैं आनन्दपूर्वक रहूँगी ॥ ७३ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपके साथ विचरते हुए मेरे लिये कुश-कास और कण्टकादि भी फूलोंके समान होंगे ॥ ७४ ॥ मैं आपको किसी प्रकारका कष्ट न दूँगी, बल्कि आपके कार्यमें सहायिका होऊँगी । बाल्यावस्थामें एक ज्योतिष्शास्त्रविशारद महात्माने मुझे देखकर कहा था कि तू अपने पति के साथ वनमें रहेगी । उन ब्राह्मण महोदयका वाक्य सत्य हो, मैं अवश्य आपके साथ वनमें चलूँगी ॥ ७५-७६ ॥ एक बात और कहती हूँ, उसे सुनकर आप मुझे वनको ले चलिये । आपने बहुत-से

अन्यतिक्षितप्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मां नय काननम् ।  
रामायणानि वहुशः श्रुतानि वहुभिर्द्विजैः ॥७७॥

सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद्वद् ।  
अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी ॥७८॥

यदि गच्छसि मां त्यक्त्वा प्राणस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः  
इति तं निश्चयं ज्ञात्वा सीताया रघुनन्दनः ॥७९॥

अब्रवीदेवि गच्छ त्वं वनं शीघ्रं मया सह ।  
अरुन्धत्यै प्रयच्छाशु हारानाभरणानि च ॥८०॥

ब्राह्मणेभ्यो धनं सर्वं दत्त्वा गच्छामहे वनम् ।  
इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाशु द्विजानाहृय भक्तिः ॥८१॥

ददौ गवां वृन्दशतं धनानि  
वस्त्राणि दिव्यानि विभूषणानि ।

कुदुम्बवद्धयः श्रुतशीलवद्धयो  
मुदा द्विजेभ्यो रघुवंशकेतुः ॥८२॥

अरुन्धत्यै ददौ सीता मुख्यान्पाभरणानि च ।  
रामो मातुः सेवकेभ्यो ददौ धनमनेकधा ॥८३॥

स्वकान्तःपुरवासिभ्यः सेवकेभ्यस्तथैव च ।  
पौरजानपदेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ॥८४॥

लक्ष्मणोऽपि सुमित्रां तु कौसल्यायै समर्पयत् ।  
वनुष्पाणिः समागत्य रामस्याग्रे व्यवस्थितः ॥८५॥

रामः सीता लक्ष्मणश्च जग्मुः सर्वे नृपालयम् ॥८६॥

श्रीरामः सह सीतया नृपयथे  
गच्छन् शनैः सानुजः  
पौरान् जानपदान्कुतृहलवशः  
सानन्दमुद्दीक्षयन् ।

रथामः कामसहस्रसुन्दरवपुः  
कान्त्या दिशो भासयन् ।

पादन्यासपवित्रिताऽखिलजगत्  
प्रापालय तत्पितुः ॥८७॥

ब्राह्मणोंके मुखसे वहुत-सी रामायणे सुना होंगा ॥ ७७ ॥  
वताइये, इनमेंसे किसीमें भी क्या सीताके विना रामजी  
वनको गये हैं ? अतः मैं आपकी पूर्णतया सहायिका  
होकर अवश्य आपके साथ चलूँगा ॥ ७८ ॥ यदि  
आप मुझे छोड़कर चले जायेंगे तो मैं अभी आपके  
सामने ही अपने प्राण छोड़ दूँगा ।”

तब रघुनाथजीने सीताका ऐसा दृढ़ निश्चय देखकर  
कहा—“देवि ! तुम शीघ्र ही मेरे साथ वनको चलो; ये  
हार आदि सम्पूर्ण आभूषण वसिष्ठजीकी द्वी अरुन्धती-  
को दे दो ॥ ७९-८० ॥ हम अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों-  
को देकर वनको चलेंगे ।”

ऐसा कह भगवान् रामने लक्ष्मणजीद्वारा भक्ति-  
पूर्वक ब्राह्मणोंको दुलबाया ॥ ८१ ॥ और उन खुदुलकेनु  
भगवान् रामने प्रसन्नतापूर्वक सैकड़ों गांओंके झुण्ड,  
वहुत-सा धन, दिव्य वस्त्र और आभूषण कुदुम्बी तथा  
विद्रान् और शीलसम्पन्न ब्राह्मणोंको दिये ॥ ८२ ॥  
सीताजीने अपने मुख्य-मुख्य आभूषण अरुन्धतीजीको  
दे दिये तथा अपनी माताके सेवकोंको भी रामने वहुत-  
सा धन दिया ॥ ८३ ॥ इसी प्रकार अपने अन्तःपुर-  
वासी सेवकों, पुरवासियों, देशवासियों तथा ब्राह्मणोंको  
भी उन्होंने वहुत-सा धन दिया ॥ ८४ ॥

इधर श्रीलक्ष्मणजीने भी अपनी माता सुमित्राको  
कौसल्याजीको सौंप दिया और आप हाथमें धनुप  
लेकर रामके सामने आकर खड़े हो गये । तदनन्तर  
राम, लक्ष्मण और सीता सब महाराज दशरथके पास  
चले ॥ ८५-८६ ॥ सहस्रों कामदेवोंके समान सुन्दर व्याम  
शरीरवाले भगवान् राम सीता और छोटे भाई लक्ष्मणके  
सहित अपनी कान्तिसे दशों दिशाओंको प्रकाशित  
करते हुए धीरे-धीरे राजमार्गसे चले । उस समय जो  
पुरवासी और जनपदवासी लोग कुदुहलवश आनन्दमयी  
दृष्टिसे उनकी ओर देख रहे थे उनके देखते हुए और  
अपने चरण-रूपर्शसे सम्पूर्ण संसारको पवित्र करते  
हुए वे अपने पिताके घर पहुँचे ॥ ८७ ॥

इति श्रीमद्व्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे  
चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

## पञ्चम सर्ग

भगवान् का बनगमन

श्रीमहादेव उवाच

आयान्तं नागरा दृष्टा मार्गे रामं सजानकिम् ।  
 लक्ष्मणेन समं वीक्ष्य ऊङुः सर्वे परस्परम् ॥ १ ॥  
 कैकेया वरदानादि श्रुत्वा दुःखसमावृताः ।  
 वत राजा दशरथः सत्यसन्धं प्रियं सुतम् ॥ २ ॥  
 स्त्रीहेतोरत्यजत्कामी तस्य सत्यवता कुतः ।  
 कैकेयी वा कथं दुष्टा रामं सत्यं प्रियद्वारम् ॥ ३ ॥  
 विवासयामास कथं क्रूरकर्माऽतिमूढधीः ।  
 हे जना नात्र वस्तव्यं गच्छामोऽर्थव काननम् ॥ ४ ॥  
 यत्र रामः सभार्थश्च सात्त्वुजो गन्तुमिच्छति ।  
 पश्यन्तु जानकीं सर्वे पादचारेण गच्छतीम् ॥ ५ ॥  
 पुंभिः कदाचिद्दृष्टा वा जानकी लोकसुन्दरी ।  
 साऽपि पादेन गच्छन्ती जनसङ्घेष्वनावृता ॥ ६ ॥  
 रामोऽपि पादचारेण गजाशादिविवर्जितः ।  
 गच्छति द्रक्ष्यथ चिभुं सर्वलोकैकसुन्दरम् ॥ ७ ॥  
 राक्षसी कैकेयीनाम्नी जाता सर्वविनाशिनी ।  
 रामस्यापि भवेद्दुःखं सीतायाः पादयानतः ॥ ८ ॥  
 वलवान्विविरेवात्र पुंप्रयतो हि दुर्बलः ।

इति दुःखाकुले वृन्दे साधूनां मुनिपुङ्गवः ॥ ९ ॥  
 अत्रवीद्वामदेवोऽथ साधूनां सद्व्यमध्यगः ।  
 मातुशोचथ रामं वा सीतां वा वच्चिम तच्चतः ॥ १० ॥  
 एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः ।  
 एषा सा जानकी लक्ष्मीयोगमायेति विश्रुता ॥ ११ ॥  
 असौ शेषस्तमन्वेति लक्ष्मणाख्यथ साम्प्रतम् ।  
 एष मायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव ॥ १२ ॥  
 एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माऽभूद्विश्वभावनः ।  
 सत्त्वाविष्टस्तथा विष्णुत्रिजगत्प्रतिपालकः ॥ १३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—जानकी और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीको मार्गमें आते देख और कैकेयीके वरदानादिका समाचार सुन समस्त नगरवासी दुःखातुर होकर आपसमें कहने लगे—“हाय ! कामवश राजा दशरथने अपने सत्यपरायण प्रिय पुत्रको खीके कहनेसे क्यों छोड़ दिया ? उसकी सत्यता कहाँ चली गयी ? और दुष्टा कैकेयीने भी सत्यवादी और प्रियकारी रामको क्यों बनवास दिया ? वह ऐसी क्रूरकर्मा और हतबुद्धि क्यों हो गयी ? भाइयो ! अब हमें यहाँ न रहना चाहिये; हम भी आज ही बनको चलेंगे, जहाँ खी और छोटे भाईके सहित श्रीराम जाना चाहते हैं। देखो तो, आज जानकीजी पैदल चल रही हैं ॥ १-५ ॥ हाय ! जिस त्रिलोकसुन्दरी जानकीको पहले कभी किसी पुरुषने शायद ही देखा हो, वही आज बिना किसी परदेके जनसमूहमें पैदल चल रही हैं ॥ ६ ॥ भाइयो ! इन सर्वलोकैकसुन्दर भगवान् रामकी ओर भी देखो; ये भी आज बिना हाथी-घोड़ेके पैदल ही जा रहे हैं ॥ ७ ॥ यह कैकेयी-नामकी राक्षसी सबका नाश करनेके लिये उत्पन्न हुई है। भाई ! इन सीताजीके पैदल चलनेसे रामजीको भी तो बड़ा दुःख होता होगा ॥ ८ ॥ किन्तु किया क्या जाय ? इसमें दैव ही प्रबल है, पुरुषका प्रयत्न सर्वथा असमर्थ है ।”

इस प्रकार साधु-समाजको दुःखातुर देख मुनिवर वामदेव उनके बीचमें आकर कहने लगे—“मैं आप-लोगोंको वास्तविक वात बताता हूँ, आप इन राम और सीताके लिये किसी प्रकारकी चिन्ता न करें ॥ ९-१० ॥ ये राम आदिनारायण भगवान् विष्णु हैं और ये जानकीजी योगमाया नामसे विख्यात श्रीलक्ष्मीजी हैं ॥ ११ ॥ इस समय जो लक्ष्मण नाम धारणकर इनका अनुगमन कर रहे हैं ये शेषजी हैं। ये पुरुषोत्तम भगवान् ही मायाके गुणोंसे युक्त होकर विभिन्न आकारवाले-से प्रतीत हुआ करते हैं ॥ १२ ॥ रजोगुणसे युक्त होकर ये ही विश्वरचयिता ब्रह्माजी हुए हैं और सत्त्वगुणविशिष्ट होनेपर ये ही त्रिलोक-

एष सद्गतामसोऽन्ते जगत्प्रलयकारणम् ।  
 एष मत्स्यः पुरा भूत्वा भक्तं वैवस्ततं मनुम् ॥१४॥  
 नाव्यारोप्य लयस्थान्ते पालयामास राघवः ।  
 समुद्रमथने पूर्वं मन्दरे सुतलं गते ॥१५॥  
 अधारयत्स्वपृष्ठेऽदिं कूर्मरूपी रघूत्तमः ।  
 मही रसातलं याता प्रलये द्वकरोऽभवत् ॥१६॥  
 तोलयामास दंष्ट्राये तां खोणीं रघुनन्दनः ।  
 नारसिंहं वपुः कृत्वा प्रह्लादवरदः पुरा ॥१७॥  
 त्रैलोक्यकण्टकं रक्षः पाटयामास तन्मखैः ।  
 पुत्रराज्यं हृतं हृष्टा ह्यदित्या याचितः पुरा ॥१८॥  
 वामनत्वमुपागम्य याचया चाहरत्पुनः ।  
 दुष्टक्षत्रियभूमारनिवृत्यै भार्गवोऽभवत् ॥१९॥  
 स एव जगतां नाथ इदानीं रामतां गतः ।  
 रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो निहनिष्यति ॥२०॥  
 मानुषेणैव मरणं तस्य दृष्टं दुरात्मनः ।  
 राजा दशरथेनापि तपसाऽराधितो हरिः ॥२१॥  
 पुत्रत्वाकाङ्ग्या विष्णोस्तदा पुत्रोऽभवद्धरिः ।  
 स एव विष्णुः श्रीरामो रावणादिवधाय हि ॥२२॥  
 गन्ताऽद्यैव वनं रामो लक्ष्मणेन सहायवान् ।  
 एषा सीता हरेमाया सृष्टिस्त्यन्तकरिणी ॥२३॥  
 राजा वा कैकेयी वापि नात्र कारणमण्वपि ।  
 दूर्द्वृनुर्नारदः प्राह भूभारहरणाय च ॥२४॥  
 रामोऽप्याह स्वयं साक्षाच्छ्रवो गमिष्याम्यहं वनम् ।  
 अतो रामं समुद्दिष्य चिन्तां त्यजत वालिशाः ॥२५॥  
 रामरामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि ।  
 तेषां मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन ॥२६॥

रक्षक भगवान् विष्णु होते हैं ॥१३॥ तथा कल्पान्तर-  
 में तमोगुणका आश्रय कर ये ही जगत्का प्रलय  
 करनेवाले रुद्र होते हैं । पूर्वकालमें इन्हीं रघुनाथजीने  
 मत्स्यरूप होकर अपने भक्त वैवस्तत मनुको नावमें  
 बैठाकर प्रलयकालके समय उनकी रक्षा की थी ।  
 समुद्र-मन्थनके समय, जब मन्दराचल पानात्म-  
 लेकको जाने लगा ॥१४-१५॥ तब इन्हीं  
 रघुनाथजीने कूर्मरूप होकर उसे अपनी पीठपर धारण  
 किया था । प्रलयकालमें जब पृथिवी रसातलको चली  
 गयी तो ये शक्तरूप हुए ॥१६॥ और उस  
 पृथिवीको अपनी ढाढ़ोपर उठा लिया । इसी प्रकार  
 एक बार प्रह्लादको वर देनेके लिये इन्होंने नूर्मिहृष्यप  
 धारण किया ॥१७॥ और तीनों लोकोंके कण्ठवत्सप  
 दैत्यराज हिरण्यकश्चिपुको अपने नग्नोंसे फाड़ डाला ।  
 एक बार, अपने पुत्र इन्द्रका राज्य गया हुआ  
 देख जब अदितिने इनसे प्रार्थना की ॥१८॥ नव  
 इन्होंने वामनरूप धारणकर याचना करके उसे किर  
 लौटा लिया । इन्हींने पृथिवीके भाररूप दृष्ट क्षत्रिय-  
 गणोंको नष्ट करनेके लिये भृगुपुत्र परशुरामका रूप  
 धारण किया था ॥१९॥ वे ही जगत्प्रभु इस नमय  
 रामरूपसे प्रकट हुए हैं; अब ये रावण आदि करोड़ों  
 राक्षसोंका वध करेंगे ॥२०॥ उस दृग्भारती मूलु  
 मनुष्यके हाथ ही बढ़ी है । गहाराज दशरथने (अपने  
 पूर्वजन्ममें) नपत्न्यद्वारा भगवान् विष्णुको इन्हें  
 आराधना की थी कि वे उनके यहाँ पुत्ररूपसे  
 अवतार लें; इसीलिये भगवान् इनके पुत्र हुए हैं ।  
 वे विष्णु भगवान् ही श्रीरामचन्द्रजी हैं । अब ये  
 रावणके वधके लिये आज ही लक्षणलहित वनको  
 जायेंगे । ये सीताजी जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और  
 प्रलय करनेवाली साक्षात् भगवान्को माया हैं ॥२१-  
 २३॥ इनके वन-गमनमें राजा या कैकेयी अगुमात्र  
 भी कारण नहीं हैं । कल ही इनसे नारदजीने पृथिवी-  
 का भार उतारनेके लिये प्रार्थना की थी ॥२४॥  
 उस समय खयं रामने भी उनसे यही कहा था कि  
 कल मैं वनको जाऊँगा । अतः भोले भाव्यो ! आप-  
 लोग रामके लिये कोई चिन्ता न करें ॥२५॥  
 संसारमें जो लोग नित्य प्रति 'राम-राम' जपा करते  
 हैं उनको भी किसी समय मृत्युके भय आदि नहीं

का पुनरुत्तम रामस्य दुःखशङ्का महात्मनः ।  
रामनाम्नैव मुक्तिः स्यात्कलौ नान्येन केनचित् ॥२७॥  
भक्तानां भजनार्थीय रावणस्य वधाय च ॥२८॥  
राजश्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं मानुषं वपुराश्रितः ।  
इत्युक्त्वा विरामाथ वामदेवो महामुनिः ॥२९॥

थुत्वा तेऽपि द्विजाः सर्वे रामं ज्ञात्वा हरिं विभूम् ।  
जहुर्हृत्संशयग्रन्थं राममेवान्वचिन्तयन् ॥३०॥  
य इदं चिन्तयेन्नित्यं रहस्यं रामसीतयोः ।  
तस्य रामे द्वा भक्तिर्भवेद्विज्ञानपूर्विका ॥३१॥  
रहस्यं गोपनीयं चो यूयं वै राघवप्रियाः ।  
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रस्तेऽपि रामं परं विदुः ॥३२॥

ततो रामः समाविश्य पितृगेहसवारितः ।  
सानुजः सीतया गत्वा कैकेयीमिदमन्वीत् ॥३३॥  
आगताः स्मो वयं मातृस्त्रयस्ते सम्मतं वनम् ।  
गन्तुं कृतधियः शशिराजापयतु नः पिता ॥३४॥

इत्युक्ता सहस्रोत्थाय चीराणि प्रददौ स्वयम् ।  
रामाय लक्ष्मणायाथ सीतायै च पृथक् पृथक् ॥३५॥  
रामस्तु वस्त्राण्युत्सूज्य वन्यचीराणि पर्यधात् ।  
लक्ष्मणोऽपि तथा चक्रे सीता तन्न विजानती ॥३६॥  
हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्या मुखमंक्षत ।  
रामो गृहीत्वा तच्चीरमंशुके पर्यवेष्यत् ॥३७॥

तदूद्घारा रुदुः सर्वे राजदाराः समन्ततः ।  
वसिष्ठस्तु तदाकर्ण्य रुदितं भर्त्सयन् रुपा ॥३८॥

होते ॥ २६ ॥ फिर उन महात्मा रामके लिये तो दुःखकी शंका ही कैसे हो सकती है ? कलियुगमें तो एकमात्र राम-नामसे ही मुक्ति हो सकती है और किसी उपायसे नहीं ॥ २७ ॥ ये जगत्कर्ता प्रभु भक्तोंको गुण-कीर्तनका सुयोग देनेके लिये और रावणको मारनेके लिये ही मायामानुषरूपसे संसारमें लीला कर रहे हैं ॥ २८ ॥ इसके सिवा राजा दशरथकी मनोरथ-सिद्धिके लिये भी इन्होंने यह मनुष्य-शरीर धारण किया है ।” ऐसा कह महामुनि वामदेवजी भौन हो गये ॥ २९ ॥

यह सुन वहाँ एकत्रित हुए सब द्विजगणोंने भी भगवान् रामको सर्वव्यापक श्रीविष्णु भगवान् जाना और वे अपने हृदयका संशय छोड़कर श्री-रामचन्द्रजीका ही स्मरण करने लगे ॥ ३० ॥ “जो पुरुष नित्यप्रति राम और सीताके इस रहस्यका मनन करेगा, उसकी भगवान् राममें विज्ञानके सहित हृदभक्ति हो जायगी ॥ ३१ ॥ आप सब लोग रामके परम प्रिय हैं अतः इस रहस्यको सदा गुप्त रखें ।” ऐसा कह विप्रवर वामदेवजी वहाँसे चले गये और पुरजनोंने भी जाना कि राम परमात्मा हैं ॥ ३२ ॥

तदनन्तर रामजीने ब्रिना किसी रोक-टोकके पिताके महलमें प्रवेश किया और लक्ष्मण तथा सीताके सहित वहाँ पहुँचकर कैकेयीसे कहा—॥ ३३ ॥ “माताजी ! आपके कथनानुसार हम तीनों बनको जानेके लिये तैयार होकर आ गये हैं; अब शीघ्र ही पिताजी हमें आज्ञा दे ॥ ३४ ॥

रामके ऐसा कहनेपर कैकेयीने सहसा उठकर स्वयं ही राम, लक्ष्मण और सीताको अलग-अलग बल्कल-बद्ध दिये ॥ ३५ ॥ तब रामचन्द्रजीने अपने राजोचित वस्त्रोंको उतारकर बनवासियोंके से वस्त्र धारण किये; लक्ष्मणजीने भी ऐसा ही किया किन्तु सीताजी उन्हें पहनना नहीं जानती थीं ॥ ३६ ॥ अतः उन वस्त्रोंको हाथमें लेकर वे लज्जापूर्वक रामजीकी ओर देखने लगीं । तब रामचन्द्रजीने उस चीरको लेकर सीताजीके वस्त्रोंपर ही लपेट दिया ॥ ३७ ॥

यह देखकर रनिवासकी सभी लियाँ रोने लगीं । तब वसिष्ठजीने उनके रोनेका शब्द सुनकर क्रोधित हो कैकेयीको डाँटते हुए कहा—“अयि दुःशाले !

कैकथीं प्राहु दुर्वृते राम एव त्वया वृतः ।  
वनवासाय दुष्टे त्वं सीतायै किं प्रयच्छसि ॥३९॥

युदि रामं समन्वेति सीता भक्त्या पतिव्रता ।  
दिव्याम्बरधरा नित्यं सर्वभरणभूपिता ॥४०॥

समयत्वनिशं रामं वनदुखनिवारिणी ।  
राजा दशरथोऽप्याह सुमन्त्रं रथमानय ॥४१॥

रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः ।  
इत्युक्त्वा राममालोक्य सीतां चैव सलक्ष्मणम् ॥४२॥

दुःखान्निपतितो भूमौ रुरोदाशुपरिप्लुतः ।  
आहरोह रथं सीता शीघ्रं रामस्य पश्यतः ॥४३॥

रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरं रथमारुहत् ।  
लक्ष्मणः खड्गयुगलं धनुस्तूणीयुगं तथा ॥४४॥

यृहीत्वा रथमारुह्य नोदयामास सारथिम् ।  
तिष्ठ तिष्ठ सुमन्त्रेति राजा दशरथोऽब्रवीत् ॥४५॥

गच्छ गच्छेति रामेण नोदितोऽचोदयद्रथम् ।  
रामे दूरं गते राजा भूच्छितः प्रापत्तुविः ॥४६॥

पौरास्तु वालवृद्धाश्च वृद्धा ब्राह्मणसत्तमाः ।  
तिष्ठ तिष्ठेति रामेति क्रोशन्तो रथमन्वयुः ॥४७॥

राजा रुदित्वा सुचिरं मां नथन्तु यृहं प्रति ।  
कौसल्याया राममातुरित्याह परिचारकान् ॥४८॥

किञ्चित्कालं भवेत्तत्र जीवनं दुःखितस्य मे ।  
अत ऊर्ध्वं न जीवामि चिरं रामं विना कृतः ॥४९॥

तंतो यृहं ग्रविश्यैव कौसल्यायाः पपात ह ।  
सूच्छितश्च चिराद्बुध्वा तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥५०॥

रामस्तु तमसातीरं गत्वा तत्रावसत्सुखी ।  
जलं प्राद्य निराहारो वृक्षमूलेऽस्यपद्मिभुः ॥५१॥

सीतया सह धर्मात्मा धनुष्पाणिस्तु लक्ष्मणः ।  
पालयामास धर्मजः सुमन्त्रेण सुमन्वितः ॥५२॥

तने तां केवल रामके बन जानेका ही बर माँगा है न ? फिर तसीताको भी बनके बख कैसे देता है ? ॥३८-३९॥ यदि पतिव्रता सीता भक्तिवश रामके साथ जाना चाहती है तो वह समझ आभृथणोंसे विभूषित और दिव्य बख धारण किये हुए ही जाय ॥४०॥ तथा नित्यप्रति रामके वनवास-दुःखको दूर करती हुई उनको आनन्दित करे ।"

तब महाराज दशरथने सुमन्त्रसे कहा—“सुमन्त्र ! तुम रथ ले आओ ॥४१॥ वनवासियोंके प्रिय ये राम आदि रथपर चढ़कर हीं बनको जायेंगे ॥”पूरा कह वे सीता और लक्ष्मणके सहित रामको देख-कर दुःखसे पृथिवीपर गिर पड़े और अँगोंमें आँख भरकर रोने लगे । तब रामजीके देखते-देखते शान्त हीं सीताजी रथपर चढ़ीं ॥४२-४३॥ फिर रामचन्द्रजी पिताकी परिकामा कर रथान्तर हुए और उनके पांछे दो खड्ग तथा दो धनुप और तरकश लेकर लक्ष्मणजी सवार हुए और सारथीसे रथ हाँकनेको कहा । तब राजा दशरथ कहने लगे—‘सुमन्त्र ! ठहरो, ठहरो’ ॥४४-४५॥ किन्तु रामचन्द्रजीने ‘चलो, चलो’ कहकर शान्तता करनेको कहा । इसलिये सुमन्त्रने रथ हाँक दिया । रामके दूर निकल जानेपर महाराज मृच्छिन होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥४६॥ तदनन्तर समस्त पुरवासी, वालक-वृद्ध और वयांवृद्ध मुनिगण ‘हे राम ! ठहरो, मन जाओ’ इस प्रकार चिट्ठाते हुए रथके पांछे-पांछे चले ॥४७॥

राजा दशरथ बहुत देरतक रोते रहे, फिर उन्होंने अपने सेवकोंसे कहा—“मुझे रामका माता कौसल्याके घर ले चलो ॥४८॥ मुझ हृदियका बहों रहकर कुछ काल जीना हो सकता है; किन्तु रामसे रहित होकर अब मैं अधिक काल जीवित नहीं रह सकूँगा” ॥४९॥ तब कौसल्याके घर पहुँचते हीं राजा अचेत होकर पृथिवीपर गिर पड़े; फिर बहुत देर पांछे चेत होनेपर वे चुपचाप चढ़े रहे ॥५०॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी तमसान्दर्भके तटपर पहुँचकर वहाँ सुखपूर्वक रहे और रात्रिके समय विना कुछ आहार किये केवल जल पीकर सीताजीके सहित वृक्षके नीचे सो गये । तथा सुमन्त्रके सहित धर्मात्मा

पौरा: सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरतः ।  
शक्ता रामं पुरं नेतुं नोचेद्दंच्छामहे वनम् ॥५३॥

इति निश्चयमाज्ञाय तेषां रामोऽतिविसितः ।  
ज्ञाहं गच्छामि नगरमेते वै क्लेशभागिनः ॥५४॥

भविष्यन्तीति निश्चित्य सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ।  
इदानीमेव गच्छामः सुमन्त्र रथमानय ॥५५॥

इत्याज्ञसः सुमन्त्रोऽपि रथं वाहैरयोजयत् ।  
आरुह्य रामः सीता च लक्ष्मणोऽपि ययुद्धुतम् ॥५६॥

अयोध्याभिमुखं गत्वा किञ्चिद्दूरं ततो ययुः ।  
तेऽपि राममद्वैतं प्रातरुत्थाय दुःखिताः ॥५७॥

रथनेभिगतं मार्गं पश्यन्तस्ते पुरं ययुः ।  
हृदि रामं सर्सीतं ते ध्यायन्तस्तस्थुरन्तरम् ॥५८॥

सुमन्त्रोऽपि रथं शीघ्रं नोदयामास सादरम् ।  
स्फीतान् जनपदान्पश्यन् रामः सीतासमन्वितः ॥

गङ्गातीरं समागच्छच्छवेराविदूरतः ।  
गङ्गां दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्दमानसः ॥६०॥

शिशपादृथमूले स निष्पाद रघूत्तमः ।  
ततो गुहो जनैः श्रुत्वा रामगममहोत्सवम् ॥६१॥

सखायं स्वामिनं द्रुणं हर्षाच्चूर्णं समापतत् ।  
फलानि मधुपुष्पादि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥६२॥

रामस्याग्रे विनिश्चित्य दण्डवत्प्रापतद्विः ।  
गुहमुत्थाप्य तं तूर्णं राघवः परिष्खजे ॥६३॥

संपृष्ठकुशलो रामं गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।  
धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन ॥६४॥

बभूव परमानन्दः सपृष्ठा तेऽज्ञं रघूत्तम ।

लक्ष्मणजी धनुष लेकर उनकी रक्षा करते रहे ॥ ५१-५२ ॥ उनके पास ही समस्त पुरवासी आकर ठहर गये । उन्होंने निश्चय किया कि हम या तो रामको अयोध्या लौटा ले चलेंगे, नहीं तो हम भी इनके साथ वनको ही चले जायेंगे ॥ ५३ ॥ रामचन्द्रजीको उनके इस निश्चयका पता चलनेपर अति विस्मय हुआ और उन्होंने यह सोचकर कि मैं तो अयोध्याको लौटूँगा नहीं, ये व्यर्थ वनमें क्लेश भोगेंगे, सुमन्त्रको बुलाकर कहा—“सुमन्त्र, तुम रथ ले आओ, हम अभी चलेंगे” ॥ ५४-५५ ॥

रामकी ऐसी आज्ञा होनेपर सुमन्त्रने रथमें बोड़े जोत दिये तब राम, लक्ष्मण और सीता उसपर चढ़कर शीघ्रतासे चले ॥ ५६ ॥ उन्होंने अपना रथ कुछ दूर अयोध्याकी ओर ले जाकर फिर वनकी ओर बढ़ाया । प्रातःकाल होनेपर पुरवासियोंने उठकर जब रामको न देखा तो वे अत्यन्त दुःखी हुए ॥ ५७ ॥ और रथके पहियोंकी लीकके मार्गको देखते हुए वे अयोध्यापुरी लौट आये तथा प्रतिदिन हृदयमें राम और सीताका ध्यान करते हुए वहाँ रहने लगे ॥ ५८ ॥

इधर सुमन्त्रने भी शीघ्र ही आदरपूर्वक अपना रथ बढ़ाया । तब सीताके सहित श्रीरामचन्द्रजी विस्तृत देशोंको देखते हुए शृंगवेरपुरके पास गंगाजीके तटपर पहुँचे । गंगाजीको देखकर उन्होंने प्रसन्न-चित्तसे नमस्कार करके स्नान किया ॥ ५९-६० ॥ और फिर रघुश्रेष्ठ रामजी शिशपा (सीसमके) वृक्षकी छायामें बैठे । इसी समय निषादराज गुहने लोगोंके मुखसे रामजीके आनेका मंगलसमाचार सुना ॥ ६१ ॥ यह सुनते ही वह तुरन्त अपने एकमात्र सखा और स्वामी श्रीरघुनाथजीको देखनेके लिये प्रसन्न-चित्तसे भक्तिपूर्वक फल, शहद और पुष्पादि लेकर वहाँ आया ॥ ६२ ॥ और वह भेटकी सामग्री रामके आगे डालकर दण्डके समान पृथिवीपर गिर पड़ा । तब श्रीरघुनाथजीने उसे तुरन्त ही उठाकर गले लगा लिया ॥ ६३ ॥

तदुपरान्त रामजीके कुशल पूछनेपर गुहने हाथ जोड़कर कहा—“हे लोकपावन ! मैं धन्य हूँ, आज मेरा निषाद-ज्ञातिमें जन्म लेना सफल हो गया ॥ ६४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आपके अंगसंगसे मुझे परम आनन्द प्राप्त

नैषादराज्यमेतत्ते किङ्करस्य रघुत्तम ॥६५॥  
 त्वदधीनं वसन्नन् पालयासान् रघुद्वह ।  
 आगच्छ यामो नगरं पावनं कुरु मे गृहम् ॥६६॥  
 गृहाण फलमूलानि त्वदर्थं सञ्चितानि मे ।  
 अनुगृहीत्वा भगवन् दासस्तेऽहं सुरोत्तम ॥६७॥  
 रामस्तमाह सुप्रीतो वचनं शृणु मे सखे ।  
 न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नव वर्षाणि पञ्च च ॥६८॥  
 दत्तमन्येन नो भुज्ञे फलमूलादि किञ्चन ।  
 राज्यं ममैतत्ते सर्वं त्वं सखा मेऽतिविष्टभः ॥६९॥  
 वटक्षीरं समानार्थ्य जटाषुकुटमादरात् ।  
 ववन्ध लक्ष्मणेनाथ सहितो रघुनन्दनः ॥७०॥  
 जलमात्रं तु सम्प्राइय सीतिया सह राघवः ।  
 आस्त्रूतं कुशपर्णाद्यैः शयनं लक्ष्मणेन हि ॥७१॥  
 उवास तत्र नगरप्रासादाये यथा पुरा ।  
 सुध्याप तत्र वैदेशा पर्यङ्क इव संस्कृते ॥७२॥  
 ततोऽविदूरे परिगृह्य चापं  
 सवाणतूणीरथनुः स लक्ष्मणः ।  
 रक्ष रामं परितो विपश्यन्  
 गुहेन सार्धं सशरासनेन ॥७३॥

हुआ है । हे रघुवर ! आपके दासका यह नैपाद-राज्य आपहीका है इसलिये हे रघुनाथजी ! आप यहाँ रहकर हमलोगोंका रक्षा कीजिये । चलिये नगरमें पधारकर मेरा घर पवित्र कीजिये ॥ ६५-६६ ॥ हे भगवन् ! आपके लिये मैंने जो कुछ फल-मूलादि एकत्रित किये हैं उन्हें खाकार कीजिये । हे सुरश्रेष्ठ ! मैं आपका दास हूँ, आप मुझपर कृपा कीजिये” ॥ ६७ ॥

तब रामचन्द्रजीने अति प्रसन्न होकर उससे कहा—“मित्र ! तुनो, मैं चौदह वर्षतक किसी घर या गाँवमें नहीं जा सकता ॥ ६८ ॥ और न किसी औरके दिये हुए फल-मूलादि ही खा सकता हूँ । मित्र ! तुम्हारा यह सम्पूर्ण राज्य मेरा ही है और तुम भी मेरे अत्यन्त प्रिय सखा हो” ॥ ६९ ॥

तदनन्तर रघुनाथजीने वटका दृश्य मैंगाकर लक्ष्मणके सहित भली प्रकार सँचारकर जटाजट बाँधि ॥ ७० ॥ लक्ष्मणजीने कुश और पत्तोंका एक शश्या बना दी, उसीपर केवल जल पीकर सीताके सहित श्रीरघुनाथजी विराजमान हुए और पहले जिस प्रकार अयोध्यापुरी-के महलमें जनकनन्दिनीके सहित लुसजित पलंगपर पौढ़ते थे उसी प्रकार सो गये ॥ ७१-७२ ॥ उनके पास ही धनुप, वाण और तरकश लिये हुए श्रीलक्ष्मणजी धनुपधारी गुहके सहित धनुप चढ़ाकर इधर-उधर देखते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी रखवाली करने लगे ॥ ७३ ॥

इति श्रीमद्भ्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे  
 पञ्चमः सर्गः ॥५॥

## षष्ठि सर्ग

गंगोत्तरण तथा भरद्वाज और बालमीकिजीसे भेंट ।

श्रीमहादेव उवाच

सुसं रामं समालोक्य गुहः सोऽश्रुपरिप्लुतः ।  
 लक्ष्मणं प्राह विनयाद् भ्रातः पश्यसि राघवम् ॥ १ ॥  
 शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतिया सह ।  
 यः शेते स्वर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी घोले-हे पार्वति ! उस समय रामजी-को सोते देख गुहने आँखोंमें आँसू भरकर नम्रतापूर्वक लक्ष्मणजीसे कहा—“भाई ! देखते हो, जो रघुनाथजी अपने भव्य-भवनमें सुन्दर विद्युनेसे युक्त सुवर्ण-निर्मित पलंगपर पौढ़ते थे वे हीं आज सीताजीके सहित कुश और पत्तोंकी साथरीपर पड़े

कैकेयी रामदुःखस्य कारणं विधिना कृता ।  
 मन्थराबुद्धिमास्याय कैकेयी पापमाचरत् ॥३॥  
  
 तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे शृणु वचो मम ।  
 कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कथं हेतुः सुखस्य वा ॥४॥  
 सपूर्वार्जितकर्मेव कारणं सुखदुःखयोः ॥५॥  
 सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता  
     परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।  
 अहं करोमीति बृथाऽभिमानः  
     स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥६॥  
 सुहन्मित्रार्युदासीनद्वेष्यमध्यस्थवान्धवाः ।  
 स्वयमेवाचरन्कर्म तथा तत्र विभाव्यते ॥७॥  
 सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः ।  
 यद्यद्यथागतं तत्तद्भुक्त्वा स्वस्थमना भवेत् ॥८॥  
 न मे भोगागमे वाञ्छान मे भोगविवर्जने ।  
 आगच्छत्वथ मागच्छत्वभोगवशगो भवेत् ॥९॥  
 यस्मिन् देशे च काले च यसाद्वायेन केन वा ।  
 कृतं शुभाशुभं कर्म भोजयं तत्तत्र नान्यथा ॥१०॥  
 अलं हर्षविपादाभ्यां शुभाशुभफलोदये ।  
 विधात्रा विहितं यद्यत्तदलङ्घ्यं सुरासुरैः ॥११॥  
 सर्वदा सुखदुःखाभ्यां नरः प्रत्यवरुद्ध्यते ।  
 शरीरं पुण्यपापाभ्यामुत्पन्नं सुखदुःखवत् ॥१२॥  
 सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।  
 द्वयमेतद्वि जन्तुनामलङ्घ्यं दिनरात्रिवत् ॥१३॥  
 सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम् ।  
 द्वयमन्योन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्कवत् ॥१४॥  
 तस्माद्वैर्येण विद्वांस इष्टानिष्टोपपत्तिषु ।  
 न हृष्यन्ति न मुहूर्न्ति सर्वं मायेति भावनात् ॥१५॥  
 गुहलक्ष्मणयोरेवं भाषतोर्विमलं नभः ।  
 वभूव रामः सलिलं स्पृष्टा प्रातः समाहितः ॥१६॥

हुए हैं ॥ १-२ ॥ विधाताने रामजीके इस दुःखका कारण कैकेयीको बना दिया । मन्थराकी बुद्धिपर विश्वास करके कैकेयीने यह बड़ा पापका काम किया ॥” ॥ ३ ॥

यह सुनकर लक्ष्मणजीने कहा—“भाई ! मेरी बात सुनो; किसीके दुःख अथवा सुखका कारण दूसरा कौन है ? अर्थात् कोई भी नहीं है । मनुष्यका पूर्वकृत कर्म ही उसके सुख अथवा दुःखका कारण होता है ॥४-५॥ सुख और दुःखका देनेवाला कोई और नहीं है; ‘कोई अन्य सुख-दुःख देता है’ यह समझना कुबुद्धि है । ‘मैं करता हूँ’ यह वृथा अभिमान है, क्योंकि लोग अपने-अपने कर्मोंकी ढोरीमें बँधे हुए हैं ॥ ६ ॥ यह मनुष्य स्वयं ही पृथक्-पृथक् आचरण करके उसके अनुसार सुदृढ़, मित्र, शत्रु, उदासीन, द्वेष्य, मध्यस्थ और बन्धु आदिकी कल्पना कर लेता है ॥ ७ ॥ अतः मनुष्यको चाहिये कि प्रारब्धानुसार सुख या दुःख जो कुछ भी जैसे-जैसे प्राप्त हो उसे वैसे ही भोगते हुए सदा प्रसन्नचित्त रहे ॥ ८ ॥ हमें न तो भोगों-की प्राप्तिकी इच्छा है और न उन्हें त्यागनेकी । भोग आयें या न आयें हम भोगोंके अधीन नहीं हैं ॥९॥ जिस देश अथवा जिस कालमें जिस-किसीके द्वारा शुभ अथवा अशुभ कर्म किया जाता है, उसे निस्सन्देह उसी प्रकार भोगना पड़ता है ॥ १० ॥ अतः शुभ अथवा अशुभ कर्मफलके उदय होनेपर हर्ष अथवा दुःख मानना व्यर्थ है, क्योंकि विधाताकी गतिका देवता अथवा दैत्य कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥११॥ मनुष्य सदा ही सुख और दुःखसे घिरा रहता है क्योंकि मनुष्य-शरीर पाप और पुण्यके मेलसे उत्पन्न होनेके कारण सुख-दुःखमय ही है ॥ १२ ॥ सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख आता है । ये दोनों ही दिन और रात्रिके समान जीवोंसे अनुलङ्घनीय हैं ॥१३॥, सुखके भीतर दुःख और दुःखके भीतर सुख सर्वदा वर्तमान रहता है । ये दोनों ही जल और कीचड़के समान आपसमें मिले हुए रहते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये विद्वान् लोग ‘सब कुछ माया ही है’ इस भावनाके कारण इष्ट या अनिष्टकी प्राप्तिमें धैर्य रखकर हर्ष या शोक नहीं मानते ” ॥ १५ ॥

गुह और लक्ष्मणके इस प्रकार बातचीत करते-करते आकाशमें उजाला हो गया । तब रामचन्द्रजीने

उचाच शीघ्रं सुदृढां नावमानय मे सखे ।  
श्रुत्वा रामस्य वचनं निपादाधिपतिर्गुहः ॥१७॥

स्वयमेव दृढां नावसानिनाय सुलक्षणाम् ।  
स्वामिन्नारुद्धितां नौकां सीतया लक्ष्मणेन च ॥१८॥

वाहये ज्ञातिभिः सार्थमहमेव समाहितः ।  
तथेति राघवः सीतामारोप्य शुभलक्षणाम् ॥१९॥

गुहस्य हस्तावालम्ब्य स्वयं चारेहदल्युतः ।  
आयुधादीन् समारोप्य लक्ष्मणोऽप्यासुरोह च ॥२०॥

गुहस्तान्वाहयामास ज्ञातिभिः सहितः स्वयम् ।  
गङ्गामध्ये गता गङ्गां प्रार्थयामास जानकी ॥२१॥

देविं गङ्गे नमस्तुभ्यं निवृत्ता चनवासतः ।  
रामेण सहिताहं त्वा लक्ष्मणेन च पूजये ॥२२॥

इत्युक्त्वा परकूलं तौ शनैरुत्तीर्य जन्मतुः ॥२३॥

गुहोऽपि राघवं प्राह गमिष्यामि त्वया सह ।  
अनुजां देहि राजेन्द्र नोचेत्प्राणां स्त्यजाम्यहम् ॥२४॥

श्रुत्वा नैपादिवचनं श्रीरामस्तमथाब्रवीत् ।  
चतुर्दश समाः स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम् ॥२५॥

आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं रामभाषितम् ।  
इत्युक्त्वाऽलिङ्ग्य तं भक्तं समाश्वास्य पुनः पुनः ॥

निर्वर्तयामास गुहं सोऽपि कुच्छाद्यौ गृहम् ॥२७॥

ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन समन्वितः ॥२८॥

भरद्वाजाश्रमपदं गत्वा वहिरुपस्थितः ।  
तत्रैकं वदुकं दृष्ट्वा रामः प्राह च हे बटो ॥२९॥

रामो दाशरथिः सीतालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ।  
आस्ते वहिर्वनस्येति द्विच्यतां मुनिसन्निधौ ॥३०॥

तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा पादयोः पतितो मुनेः ।  
स्वामिन् रामः समागत्य वनाद्विरवस्थितः ॥३१॥

सावधानतापूर्वक आचमन यत्र प्रातःकिया को ॥१६॥  
और बोले—“मित्र ! शांघ्री मेरे लिये एक सुदृढ नौका  
लाओ ।” रामके ये वचन सुनकर निपादगज गृह स्थर्य  
ही एक सुलक्षण-सम्पन्न सुदृढ नौका ने आये और  
बोले—“स्वामिन ! मीका और लक्ष्मणके सहित नायपर  
चढ़िये ॥ १७-१८ ॥ अपने ज्ञान-गाठयोंके नाम  
स्वयं इसे सावधानतापूर्वक चला डैगा ।” तब गृहनाथ-  
जीने ‘बहुत अच्छा’ कहा, प्रथम शुभलक्षणा मीनांजी-  
को उत्तपर चढ़ाया ॥ १९ ॥ फिर गुहका दाम पकाय-  
कर श्रीअच्युत भगवान् गृहनाथजी स्थर्य चढ़े ।  
तदनन्तर अपने आयुधादिकों गूँव श्रीलक्ष्मणगजी नौका-  
खड़ हुए ॥ २० ॥

तब गुहने अपने ज्ञान-गाठयोंके सहित स्थर्य नौका  
चलायी । त्रिस ममय नाय गङ्गाके दीनमें पहुँची तब  
जानकीजीने गङ्गाजीमे द्वार्थना की ॥ २१ ॥ “देनि  
गङ्गे ! मैं तुम्हें प्रणाम करनी हूँ । चनवासुरं लैदूनेपर  
मैं राम और लक्ष्मणके सहित तुम्हारी पृजा करूँगी ।”  
इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् ये शनैःशनैः पार  
उत्तरकर आगे चलने लगे ॥ २२-२३ ॥ तब गुहने  
श्रीरघुनाथजीने कहा—“हे गोपन्द ! मैं भी आपके  
साथ ही चढ़ूँगा; आप सुझे आजा दीजिये, ताकि तो मैं  
प्राण छोड़ दूँगा ॥ २४ ॥

निपादपुत्रके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे  
कहा—“मैं चौदह वर्ष दण्डकारण्यमें रहकर यहाँ निर-  
आँज़गा । मैं जो कुछ कहता हूँ तथा ही कहना हूँ,  
रामकी बात कभी मिथ्या नहीं हो जायती ।” ऐसा  
कहे रामजीने भक्त गुहको दावस बैंधा उसे चारनार  
गले लगाकर विदा किया । तब निपादगज गृह बढ़ी  
कठिनतासे घर लौटे ॥ २५-२७ ॥

तदनन्तर जानकी और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्र-  
जी भरद्वाज मुनिके आश्रमके पास पहुँचकर चारू गढ़े  
हो गये । वहाँ एक ब्रह्मचारीको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने  
कहा—“हे बटो ! मुनिवरसे जाकर कहो किदद्वार्यका  
पुत्र राम सीता और लक्ष्मणके सहित आश्रमके चारू  
खड़ा है” ॥ २८-३० ॥

रघुनाथजीका यह कथन सुनकर ब्रह्मचारीने  
तुरन्त ही मुनिवरके पास जाकर उनके चरणोंमें शिर  
रखकर कहा—“भगवन् ! पती और लोटे भाईके सहित

सभार्यः सालुजः श्रीमानाह मां देवसन्धिभः ।  
भरद्वाजाय मुनये ज्ञापयस्व यथोचितम् ॥३२॥

तच्छृत्वा सहसोत्थाय भरद्वाजो मुनीश्वरः ।  
गृहीत्वाद्यं च पादं च रामसामीप्यमाययौ ॥३३॥  
दृष्टा रामं यथान्यायं पूजयित्वा सलक्ष्मणम् ।  
आह मे पर्णशालां भो राम राजीवलोचन ॥३४॥  
आगच्छ पादरजसा पुनीहि रघुनन्दन ।  
इत्युक्त्वोट्जमानीय सीतया सह राघवौ ॥३५॥  
भक्त्या पुनः पूजयित्वा चकारातिथ्यमुत्तमम् ।  
अद्याहं तपसः पारं गतोऽसि तत्र सङ्गमात् ॥३६॥  
ज्ञातं राम ततोदन्तं भूतं चागामिकं च यत् ।  
जानामि त्वां परात्मानं मायया कार्यमातुषम् ॥३७॥  
यदर्थमवतीर्णोऽसि प्रार्थितो ब्रह्मणा पुरा ।  
यदर्थं बनवासस्ते यत्करिष्यसि वै पुरः ॥३८॥  
जानामि ज्ञानदृष्ट्याहं जातया त्वदुपासनात् ।  
इतः परं त्वां किं वक्ष्ये कृतार्थोऽहं रघूतम् ॥३९॥  
यस्त्वां पश्यामि काकुतस्यं पुरुषं प्रकृतेः परम् ।  
रामस्तमभिवाद्याह सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥४०॥  
अनुग्राहास्त्वया ब्रह्मन्वयं क्षत्रियवान्धवाः ।  
इति सम्भान्यतेऽन्योन्यमुषित्वा मुनिसन्धियौ ॥४१॥  
ग्रातरुत्थाय यमुनामुत्तीर्य मुनिदारकैः ।  
कृत्पुवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघवः ॥४२॥  
प्रययौ चित्रकूटाद्विं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रमः ।  
गत्वा रामोऽथ वाल्मीकिराश्रमं क्रपिसङ्कुलम् ॥४३॥  
नानामृगद्विजाकीर्ण नित्यपुण्यफलाकुलम् ।  
तत्र दृष्ट्वा समासीनं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥४४॥

श्रीमान् रामचन्द्र आये हैं और आश्रमके बाहर खड़े हैं। उन देवतुल्य श्रीरामजीने मुझसे कहा है कि मुनिवर भरद्वाजको इसकी यथायोग्य सूचना दो” ॥ ३१-३२ ॥

यह सुनकर मुनिनाथ भरद्वाज सहसा उठ खड़े हुए और अर्द्ध-पादादि लेकर रामके पास आये ॥ ३३ ॥ रामको देखकर उन्होंने लक्ष्मणजीसहित उनकी नियमानुसार पूजा की और कहा—“हे राम ! हे कमलनयन रघुनन्दन ! आइये, अपनी चरण-रजसे मेरी पर्णशालाको पवित्र कीजिये ।” ऐसा कह वे सीताजीके सहित दोनों रघुकुमारोंको अपनी कुटियामें ले आये ॥ ३४-३५ ॥ और फिर उनका भक्तिपूर्वक पूजन कर भली प्रकार आतिथ्य-सत्कार किया तदनन्तर मुनिवर बोले—“राम ! आज आपके समागमसे मेरी तपस्या पूर्ण हो गयी ॥ ३६ ॥ हे रघुनन्दन ! मैं आपका भूत और भविष्यत् सम्पूर्ण वृत्तान्त जानता हूँ । मैं यह भी जानता हूँ कि आप साक्षात् परमात्मा हैं और कार्यकी सिद्धिके लिये ही मायासे मनुष्यरूप हुए हैं ॥ ३७ ॥ पूर्वकालमें ब्रह्माके प्रार्थना करनेसे जिसलिये आपने अवतार लिया है, जिसलिये आपको बनवास हुआ है और जो कुछ आप आगे करेंगे वह सब, आपकी उपासनाद्वारा प्राप्त हुई ज्ञान-दृष्टिसे मैं जानता हूँ । हे रघुश्रेष्ठ ! आपसे मैं अधिक क्या कहूँ ? मैं तो कृतार्थ हो गया, जो आज प्रकृतिसे परे साक्षात् पुरुषोत्तम आप ककुत्स्थनन्दनको देख रहा हूँ ।”

तत्र सीता और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणाम करके कहा—॥ ३८-४० ॥ “ब्रह्मन् ! हम क्षत्रिय-कुलोत्पन्न हैं; अतः आपकी कृपाके पात्र हैं” इस प्रकार परस्पर एक दूसरेसे कहनेके उपरान्त वे मुनिके यहाँ ठहर गये ॥ ४१ ॥

प्रातःकाल जागनेपर श्रीरघुनाथजी मुनिकुमारोंकी बनायी हुई डोंगीपर चढ़कर यमुनाके पार हुए और मुनिवरके बताये हुए मार्गसे चित्रकूट-पर्वतकी ओर चले जहाँ वाल्मीकिजीका आश्रम था। उस ऋषिगणोंसे भरे हुए, नाना घृग और पक्षियोंसे समाकुलतया सर्वदा फल-पुण्यादिसे परिपूर्ण वाल्मीकिजीके आश्रममें जाकर श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी बैठे हुए हैं ॥ ४२-४४ ॥ तत्र श्रीरामचन्द्रजीने

ननाम शिरसा रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।  
हृष्वां रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम् ॥४५॥

जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ।  
कन्दर्पसदृशाकारं कमनीयाम्बुजेक्षणम् ॥४६॥

हृष्वैव सहसोत्तस्यौ विस्मयानिमिपेक्षणः ।  
आलिङ्ग्य परमानन्दं रामं हर्षश्रुलोचनः ॥४७॥

पूजयित्वा जगत्पूज्यं भक्त्याध्यादिभिरादृतः ।  
फलमूलैः स मधुरैभोजयित्वा च लालितः ॥४८॥

रथवः प्राञ्जालिः प्राह वाल्मीकिं विनयान्वितः ।  
पितुराजां पुरस्कृत्य दण्डकानागता वयम् ॥४९॥

भवत्तो यदि जानन्ति किं वक्ष्यामोऽत्र कारणम् ।  
यत्र मे सुखवासाय भवेत्स्थानं वदस्व तत् ॥५०॥

सीतया सहितः कालं किञ्चित्तत्र नयाम्यहम् ।  
हत्युक्तो राघवेणासौ मुनिः सस्मितमन्वीत् ॥५१॥

त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् ।  
तत्वापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि ॥५२॥

एवं साधारणं स्थानमुक्तं ते रघुनन्दन ।  
सीतया सहितस्येति विशेषं पृच्छतस्तव ॥५३॥

तद्वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत्ते नियतमन्दिरम् ।  
शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टणां च जन्तुषु ।

त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम् ॥५४॥

धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम् ।  
सीतया सह ते राम तस्य हत्युक्तमन्दिरम् ॥५५॥

त्वन्मन्त्रजापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः ।  
निर्द्वन्द्वो निःस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ॥५६॥

निरहङ्कारिणः शान्ता ये रागद्वेषवर्जिताः ।

लक्ष्मण और सीताके सहित उन्हें शिर झुकाकर प्रणाम किया । तब श्रीवाल्मीकिजीने सुन्दर कमलके समान नेत्रवाले, कामदेवकी-सी आङ्गतिवाले, जटा-मुकुटधारी, त्रिलोकमोहन लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीको सीता और लक्ष्मणके सहित देखा ॥ ४५-४६ ॥

उन्हें देखते ही श्रीवाल्मीकिजी सहसा उठ खड़े हुए, उनके नेत्र आश्चर्यसे निमेपश्चन्त्य हो गये और उन्होंने नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भर परमानन्दस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीका आलिंगन किया ॥ ४७ ॥ तथा अहि भक्तिमावसे जगत्पूज्य भगवान् रामकी अर्थादिसे सादर पूजा कर उन्हें मीठे-मीठे फल-मूलादि खिलाकर उनका लालन किया ॥ ४८ ॥

तब श्रीरघुनाथजीने अति नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर श्रीवाल्मीकिजीसे कहा—“हम पिताजीकी आज्ञा मान कर दण्डक-वनमें आये हैं ॥ ४९ ॥” आप सब कुछ जानते ही हैं, फिर हम आपको इसका कारण क्या बताएँ ? अब आप मुझे कोई ऐसा स्थान बताइये जहाँ मैं सुखपूर्वक रह सकूँ ॥ ५० ॥ आपके बताये हुए उस स्थानमें मैं सीताके साथ रहकर कुछ समय विताऊँगा ।”

रघुनाथजीके इस प्रकार कहनेपर मुनिवरने मुसकाकर कहा—॥ ५१ ॥ “हे राम ! सम्पूर्ण ग्राणियोंके आप ही एकमात्र उत्तम निवासस्थान हैं और सब जीव भी आपके निवासगृह हैं ॥ ५२ ॥ हे रघुनन्दन ! इस प्रकार यह मैंने आपका साधारण निवासस्थान बताया, परन्तु आपने विशेषरूपसे सीताके सहित अपने रहनेका स्थान पूछा है इसलिये हे रघुश्रेष्ठ ! अब मैं आपका जो निश्चित गृह है वह बताता हूँ । जो शान्त, समदर्शी और सम्पूर्ण जीवोंके प्रति द्वेषहीन हैं तथा अहर्निश आपका ही भजन करते हैं उनका हृदय आपका प्रधान निवासस्थान है ॥ ५३-५४ ॥ जो धर्म और अधर्म दोनोंको छोड़कर निरन्तर आपका ही भजन करता है, हे राम । उसके हृदयमन्दिरमें सीताके सहित आप सुखपूर्वक रहते हैं ॥ ५५ ॥ जो आपहीके मन्त्रका जाप करता है, आपहीकी शरणमें रहता है तथा द्वन्द्वहीन और निःस्पृह है उसका हृदय आपका सुन्दर मन्दिर है ॥ ५६ ॥ जो अहंकारशून्य, शान्तस्वभाव, राग-द्वेष-रहित और मृतपिण्ड, पत्थर

समलोक्षणकनकास्तेपां ते हृदयं गृहम् ॥५७॥  
त्वयि दत्तमनोबुद्धिर्यः सन्तुष्टः सदा भवेत् ।  
त्वयि सन्त्यक्तकर्मा यस्तन्मनस्ते शुभं गृहम् ॥५८॥  
यो न द्वेष्यप्रियं प्राप्य प्रियं प्राप्य न हृष्यति ।  
सर्वं मायेति निश्चित्य त्वां भजेत्तन्मनो गृहम् ॥५९॥  
पद्मावादिविकारान्यो देहे पश्यति नात्मानि ।  
शुचृद् सुखं भयं दुःखं प्राणबुद्धयोर्निरीक्षते ॥६०॥  
संसारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्य ते मानसं गृहम् ॥६१॥  
पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं  
त्वां चिद्धनं सत्यमनन्तमेकम् ।  
अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं  
तेषां हृदव्जे सह सीतया वस ॥६२॥  
निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनां  
त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम् ।  
त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मपाणां  
सीतासमेतस्य गृहं हृदव्जे ॥६३॥  
राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ।  
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मपित्वमवास्त्रान् ॥६४॥  
अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः ।  
जन्ममात्रद्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥६५॥  
शूद्रायां वहवः पुत्रा उत्पन्ना मेऽजितात्मनः ।  
ततश्चोरैश्च सङ्गम्य चौरोऽहमभवं पुरा ॥६६॥  
घनुर्वाणघरो नित्यं जीवानामन्तकोपमः ।  
एकदा मुनयः सप्त हृष्टा महति कानने ॥६७॥  
साक्षान्मया प्रकाशन्तो ज्वलनार्कसमग्रभाः ।  
तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥६८॥

तथा सुवर्णमें समान दृष्टि रखनेवाले हैं, उनका हृदय आपका घर है ॥ ५७ ॥ जो तुम्हाँमें मन और बुद्धि-को लगाकर सदा सन्तुष्ट रहता है और अपने समझ कर्मोंको तुम्हारे ही अर्पण कर देता है उसका मन ही आपका शुभ गृह है ॥ ५८ ॥ जो अप्रियको पाकर द्वेष नहीं करता और प्रियको पाकर हर्षित नहीं होता तथा ‘यह सम्पूर्ण प्रपञ्च मायामात्र है’ ऐसा निश्चय कर सदा आपका भजन करता है उसका मन ही आपका घर है ॥ ५९ ॥ जो (सत्ता, जन्म लेना, बढ़ना, बदलना, क्षीण होना और नष्ट होना इन) छः विकारोंको शरीरमें ही देखता है, आत्मामें नहीं; तथा क्षुधा, तृप्ति, सुख, दुःख और भय आदिको प्राण और बुद्धिके ही धर्म मानता है और खयं सांसारिक धर्मोंसे मुक्त रहता है उसका चित्त आपका निज गृह है ॥ ६०-६१ ॥ जो लोग चिद्धन, सत्यखलूप, अनन्त, एक, निलेप, सर्वगत और स्तुत्य आप परमेश्वरको समझ अन्तःकरणोंमें विराजमान देखते हैं, हे राम ! उनके हृदय-कमळमें आप सीताजीके सहित निवास कीजिये ॥ ६२ ॥ निरन्तर अभ्यास करनेसे जिनका हृदय स्थिर हो गया है, जो सर्वदा आपकी चरण-सेवामें लगे रहते हैं तथा आपके नाम-संकीर्तनसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं उनके हृदय-कमळमें सीताके सहित आपका निवास-गृह है ॥ ६३ ॥ हे राम ! जिसके प्रभावसे मैंने ब्रह्मर्थ-पद प्राप्त किया है, आपके उस नामकी महिमा कोई किस प्रकार वर्णन कर सकता है ? ॥ ६४ ॥ पूर्वकालमें मैं किरातोंके साथ रहता था और उन्हींके साथ रहकर बड़ा हुआ । मैं निरन्तर शूद्रोंके आचरणोंमें रत रहता था, मेरी द्विजातीयता केवल जन्ममात्रकी थी ॥ ६५ ॥ मुझ अजितेन्द्रियके शूद्र-के गर्भसे बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए । उस समय चोरोंके समागमसे मैं भी पक्का चोर हो गया था ॥ ६६ ॥ जीवोंके अन्तकर्ता कालके समान मैं सदा धनुष-वाण धारण किये रहता था । एक दिन एक घोर वनमें मैंने साक्षात् सप्तर्थियोंको जाते देखा । वे अपनी प्रभासे अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशमान थे । उनके सम्पूर्ण वस्त्रादि छीननेकी इच्छासे मैं लोभके वश होकर उनके पीछे दौड़ा और बोला—‘ठहरो, ठहरो !’ तब मुनीश्वरोंने मेरी ओर देखकर पूछा—“हे द्विजाधम !

ग्रहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठु तिष्ठेति चात्रवम् ।  
 दद्धा मां मुनयोऽपृच्छन्निकमायासि द्विजांधम् ॥६९॥  
 अहं तानब्रवं किञ्चिदादातुं मुविसत्तमाः ।  
 पुत्रदारादयः सन्ति वहवो मे बुभुक्षिताः ॥७०॥  
 तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने ।  
 ततो मामूचुरव्यग्राः पृच्छ गत्वा कुदम्बकम् ॥७१॥  
 यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसञ्चयः ।  
 यूयं तद्वागिनः किंवा नेति वेति पृथक्पृथक् ॥७२॥  
 वर्यं स्थास्थामहे तावदागामिष्यासि निश्चयः ।  
 तथेत्युक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥७३॥  
 अपृच्छं पुत्रदारादीस्तैरुक्तोऽहं रघूत्तम् ।  
 पापं तवैव तत्सर्वं वर्यं तु फलभागिनः ॥७४॥  
 तच्छ्रुत्वा जातानिवेदो विचार्य पुनरागमम् ।  
 मुनयो यत्र तिष्ठन्ति करुणापूर्णमानसाः ॥७५॥  
 मुनीनां दर्शनादेव शुद्धान्तःकरणोऽभवम् ।  
 धनुरादीन्परित्यज्य दण्डवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥७६॥  
 रक्षध्वं मां मुनिश्रेष्ठागच्छन्तं निरयार्णवम् ।  
 इत्यग्रे पतितं दद्धा मामूचुमुनिसत्तमाः ॥७७॥  
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः ।  
 उपदेश्यामहे तुभ्यं किञ्चित्तेनैव मोक्ष्यसे ।  
 परस्परं समालोच्य दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः ॥७८॥  
 उपेक्ष्य एव सद्बृत्तैस्तथापि शरणं गतः ।  
 रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः ॥७९॥  
 इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ।  
 एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥८०॥  
 आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप ।  
 इत्युक्त्वा प्रयत्नः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥८१॥  
 अहं यथोपदिष्टं तैस्तथाऽकरवमञ्जसा ।  
 जपन्नेकाग्रमनसा वाहं विस्मृतवानहम् ॥८२॥

क्यों आ रहा है ? ” ॥ ६७-६९ ॥ मैंने कहा—“हे मुनिश्रेष्ठगण ! मेरे बहुतने भूम्ये पुत्र-कल्पनादि हैं । अतः उनके पोषणार्थ बुद्ध लंबेके लिये आ रहा है ॥ ७० ॥ उन्होंका पालन-पोषण करनेके लिये मैं वन-पर्वतादिमें बूमना फिरता हूँ । ” तब उन मुनीश्वरोंने मुझसे निर्मयतापूर्वक कहा—“अन्द्रा, एक बार ऐ अपने कुद्रुम्बियोंके पास जाकर ग्रन्थेकरने अठग-अठग पृछ कि मैं ग्रन्थिदिन जो पापन्तरव्य बदलता हूँ उनके आप लोग भी भागी हैं या नहीं ? ” ॥ ७१-७२ ॥ इस वातका निश्चय रख कि जबतक न ढौंकर आयेगा हम यहाँ रहेंगे । ” मैं ‘बहुत अन्द्रा’ कह अपने शर आया और जिस प्रकार मुनीश्वरोंने मुझसे कहा या मैंने अपने पुत्र-नाम आदिसे पृथग् । हे रघुश्रेष्ठ ! तब वे थोड़े, “वह पाप तो सब तुर्गाको लगेगा, हम तो उसमें प्राप्त हुए फल(वन आदि) को ही भोगनेवाले हैं । ” ॥ ७३-७४ ॥ यह सुनकर मुझे अनिवैशम्य हुआ और मैं विचार करता हुआ, जहाँ करुणासे परिपूर्ण दृश्यवाने मुनीश्वर थे, वहाँ आया ॥ ७५ ॥ तब उन मुनीश्वरोंके दर्शननामाने ही मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया और मैं भलुप आदिको फैदेकर दण्डके जनान पृथग्यापर गिर पड़ा ॥ ७६ ॥ ‘हे मुनिश्रेष्ठगण ! इस पापन्तरग्रामे पढ़े हुए मेरे आप रक्षा कीजिये—इस प्रकार चिङ्गाने हुए मुझे अपने सामने पड़ा देव वे मुनिश्रेष्ठ मुखमें बोले— ॥ ७७ ॥ “खड़ा हो, खड़ा हो, तेरा जलनेंगे जल ल हो गया है; तेरा अवश्य कल्पाण होंगा । हम तुझे योड़ा-सा उपदेश करते हैं उससे त सुक्ल हो जायगा । ” तब उन्होंने आपसमें मिलकर यह विचार किया कि यद्यपि यह ब्राह्मणाधम अत्यन्त दुराचारी होनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये उपेक्षाका ही पात्र है तथापि अब यह शरणमें आ गया है, इसलिये मोक्ष-मार्गके उपदेशद्वारा इसकी यन्त्रपूर्वक रक्षा करनी ही चाहिये ॥ ७८-७९ ॥ हे राम ! ऐसा विचारकर उन्होंने आपके नामाक्षरोंको उलटा करके मुझसे कहा “न इसी सानपर रहकर एकाग्र-चित्तसे सदा ‘मरा-मरा’ जपा कर ॥ ८० ॥ जबतक हम फिर लैटकर आयें तबतक त सर्वदा हमारे कथनानुसार इसका जाप कर । ” ऐसा कहकर वे सब दिव्यदर्शन मुनीश्वर चले गये ॥ ८१ ॥ तब उन्होंने मुझे जैसा उपदेश दिया था मैंने ठीक वैसा ही

एवं वहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः ।  
सर्वसज्जनिहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥८३॥

ततो युगसहस्रान्ते ऋषयः पुनरागमन् ।  
मामूचुनिष्क्रमत्वेति तच्छुत्वा तृणमुत्थितः ॥८४॥

वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः ।  
मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर ॥८५॥

वल्मीकात्सम्भवो यसाद्वितीयं जन्म तेऽभवत् ।  
इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यगतिं रघुकुलोत्तम ॥८६॥

अहं ते राम नामनथ प्रभावादीदशोऽभवम् ।  
अद्य साक्षात्प्रपश्यामि ससीतं लक्ष्मणेन च ॥८७॥

रामं राजीवपत्राक्षं त्वां मुक्तो नात्र संशयः ।  
आगच्छ राम भद्रं ते स्थलं वै दर्शयाम्यहम् ॥८८॥

एवमुक्त्वा मुनिः श्रीमांछुक्ष्मणेन समन्वितः ।  
शिष्यैः परिवृतो गत्वा मध्ये पर्वतगङ्गयोः ॥८९॥

तत्र शालां सुविस्तीर्णा कारयामास वासभूः ।  
प्राकपश्चिमं दक्षिणोदक्षशोभनं मन्दिरद्वयम् ॥९०॥

जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः ।  
तत्र ते देवसद्वा ह्यवसन् भवनोत्तमे ॥९१॥

वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयं  
रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ।

देवैर्मुनीन्द्रैः सहितो मुदाऽस्ते  
खगें यथा देवपतिः स शक्या ॥९२॥

किया । इस प्रकार निरन्तर एकाग्रचित्तसे जप करते-करते मुझे बाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ ८२ ॥ इस तरह बहुत समयतक निश्चलतापूर्वक रहनेसे मुझ सर्वसज्जनिहीनके ऊपर वल्मीक (मिठीका ढेर) बन गया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर, एक हजार युग बीतनेपर वे ऋषीश्वर फिर लौटे और मुझसे कहा—‘निकल आओ’ यह सुनकर मैं तुरन्त खड़ा हो गया ॥ ८४ ॥ और जिस प्रकार कुहरे को पार करके सूर्य निकल आता है उसी प्रकार मैं वल्मीकिसे निकल आया । तब मुनिगणने मुझसे कहा “हे मुनिवर ! तुम वाल्मीकि हो ॥ ८५ ॥ इस समय तुम वल्मीकिसे निकले हो, इसलिये तुम्हारा यह दूसरा जन्म हुआ है ।” हे रघुश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर वे दिव्यलोकको चले गये ॥ ८६ ॥ हे राम ! आपके नामके प्रभावसे मैं ऐसा हो गया जो आज सीता और लक्ष्मणके सहित साक्षात् आप कमलनयनको देख रहा हूँ । अहा ! मैं नित्सन्देह मुक्त हो गया । हे राम ! आपका मंगल हो, आइये मैं आपको रहनेके लिये स्थान दिखालाता हूँ” ॥ ८७-८८ ॥

ऐसा कह शिष्योंसे घिरे हुए श्रीमान् मुनिवर वाल्मीकिजीने लक्ष्मणके सहित गंगा और पर्वतके बीचके स्थलमें जाकर वहाँ भगवान् रामके रहनेके लिये एक सुविशाल शाला बनवायी, उसमें एक पूर्वपश्चिम और दूसरा उत्तर-दक्षिण ऐसे दो सुन्दर घर बनाये गये ॥ ९१-९० ॥ उस भव्य भवनमें जानकीके सहित श्रीराम और लक्ष्मण देवताओंके समान रहने लगे ॥ ९१ ॥ श्रीवाल्मीकिजीसे भली प्रकार सम्मान पाकर देवता और मुनिजनोंके सहित श्रीरामचन्द्रजी वहाँ सीता और लक्ष्मणके साथ इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे जैसे खर्गलोकमें शचीके साथ देवराज इन्द्र रहते हैं ॥ ९२ ॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे  
अयोध्याकाण्डे पंष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥



## सप्तम सर्ग

सुमन्त्रका प्रत्यागमन, राजा दशरथका खर्गदास तथा भरतजीका ननिहालसे आना और  
वसिष्ठजीके आदेशसे पिताका अन्त्येष्टि-संस्कार करना ।

श्रीमहादेव उवाच

सुमन्त्रोऽपि तदाऽथोऽध्यां दिनान्ते प्रविवेश ह ।  
वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य वाष्पाकुलितलोचनः ॥ १ ॥  
बहिरेव रथं स्थाप्य राजानं द्रष्टुमाययौ ।  
जयशब्देन राजानं स्तुत्वा तं प्रणनाम ह ॥ २ ॥  
  
ततो राजा न मन्तं तं सुमन्त्रं विहूलोऽन्वीत् ।  
सुमन्त्र रामः कुत्रास्ते सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ३ ॥  
कुत्र त्वक्तस्त्वया रामः किं मां पापिनमन्वीत् ।  
सीता वा लक्ष्मणो वाऽपि निर्दयं मां किमन्वीत् ॥ ४ ॥  
हा राम हा गुणनिधे हा सीते प्रियवादिनी ।  
दुःखार्णवे निमग्नं मां प्रियमाणं न पश्यसि ॥ ५ ॥  
  
विलप्त्यैवं चिरं राजा निमग्नो दुःखसागरे ।  
एवं मन्त्री रुदन्तं तं प्राञ्जलिर्बाक्यमन्वीत् ॥ ६ ॥  
रामः सीता च सौमित्रिभ्या नीता रथेन ते ।  
शृङ्गवेरपुराभ्याशे गङ्गाकूले व्यवस्थिताः ॥ ७ ॥  
गुहेन किञ्चिदानीतं फलमूलादिकं च यत् ।  
स्पृष्ट्वा हस्तेन सम्प्रीत्या नाग्रहीद्विसर्ज तत् ॥ ८ ॥  
वटक्षीरं समानाय्य गुहेन रघुनन्दनः ।  
जटामुकुटमावद्य मामाह नृपते स्वयम् ॥ ९ ॥  
सुमन्त्र ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते ।  
साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति ॥ १० ॥  
मातुर्में वन्दनं ब्रूहि शोकं त्यजतु मत्कृते ।  
आश्वासयतु राजानं वृद्धं शोकपरिष्कृतम् ॥ ११ ॥  
सीता चाश्रुपरीताक्षी मामाह नृपसर्तम् ।  
दुःखगद्या वाचा रामं किञ्चिदवेक्षती ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इधर सायंकालके समय सुमन्त्रने भी वख्से मुख ढाँपकर नेत्रोंमें जल भरे हुए अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ रथको बाहर ही खड़ाकर वे राजाको देखनेके लिये अन्तःपुरमें गये और जयशब्दसे उनका स्तुतिकर उन्हें प्रणाम किया ॥ २ ॥

राजाने सुमन्त्रको नमस्कार करते देख दुःखसे व्याकुल होकर कहा—“सुमन्त्र ! सीता और लक्ष्मणके सहित राम कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥ तुमने रामको कहाँ छोड़ा है ? उन्होंने मुझ पापीके लिये क्या कहा ? तथा सीता और लक्ष्मणने भी मुझ निर्दर्याके लिये क्या कहा है ? ॥ ४ ॥ हा राम ! हा गुणनिधे ! हा प्रियवादिनि सीते ! क्या तुम मुझको दुःख-समुद्रमें डूबकर मरते हुए नहीं देखते हो ?” ॥ ५ ॥

इस प्रकार बहुत देरतक चिलाप करके राजा दुःख-समुद्रमें डूब गये । महाराजको इस प्रकार रंते देन्ह मन्त्रीने हाथ जोड़कर कहा—॥ ६ ॥ “महाराज ! मैं राम, सीता और लक्ष्मणको आपके रथमें बैठाकर ले गया था । वे शृंगवेरपुरके पास गंगाजीके किनारं जाकर टिके ॥ ७ ॥ वहाँ निपादराज गुह बुद्ध फल-मूलादि ले आया, किन्तु रामजीने उन्हें ग्रहण नहीं किया, केवल प्रातिपूर्वक हाथसे छूकर ही छोड़ दिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर श्रीरघुनाथजीने गुहसे वटका दूध मँगवाकर अपनी जटाओंका मुकुट बनाया और फिर वे खयं मुझसे बोले—॥ ९ ॥ “सुमन्त्र ! महाराज-से कहना वे हमारे लिये शोक न करें; हमें वनमें अयोध्यासे भी अधिक सुख प्राप्त होगा ॥ १० ॥ मातासे भी मेरा प्रणाम कहकर कहना कि मेरेलिये शोक करना छोड़ दें । महाराज बृह्म और शोकाकुल हैं, उन्हें भली प्रकार ढाँड़स वँधाना” ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर नेत्रोंमें जल भरकर कुछ-कुछ रामकी ओर देखते हुए सीताने दुःखसे गद्गद-कण्ठ हो मुझसे कहा—॥ १२ ॥ “दोनों सासुओंके चरण-

साष्टाङ्गं प्रणिपातं मे ब्रूहि शश्रवोः पदाम्बुजे ।  
 इति प्रसुदती सीता गता किञ्चिदवाङ्मुखी ॥१३॥

ततस्तेऽशुपरीताक्षा नावमारुहुस्तदा ।  
 यावद्गङ्गां समुत्तीर्य गतास्तावदहं स्थितः ॥१४॥

कृतो दुःखेन महता पुनरेवाहमागतः ।  
 ततो रुदन्ती कौसल्या राजानमिदमन्वीत् ॥१५॥

कैकेयै प्रियभार्यै प्रसन्नो दत्तवाल्वरम् ।  
 त्वं राज्यं देहि तस्यैव मत्पुत्रः किं विवासितः ॥१६॥

कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं तु रोदिषि ।  
 कौसल्यावचनं श्रुत्वा क्षते स्पृष्ट इवाग्निना ॥१७॥

पुनः शोकाश्रुपूर्णाक्षः कौसल्यामिदमन्वीत् ।  
 दुःखेन प्रियमाणं मां किं पुनर्दुःखयस्यलम् ॥१८॥

इदानमिव मे प्राणा उत्क्रमिष्यन्ति निश्चयः ।  
 शस्तोऽहं वाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा ॥१९॥

पुराहं यौवने दृमथापवाणधरो निशि ।  
 अचरं मृगयासक्तो नद्यास्तरीरे महावने ॥२०॥

तत्रार्घरात्रसमये शुनिः कथित्पादितः ।  
 पिपासादितयोः पित्रोर्जलमानेतुमुद्यतः ।

अपूर्यज्जले कुम्भं तदा शब्दोऽस्यन्महान् ॥२१॥

गजः पित्रति पानीयमिति मत्वा महानिशि ।  
 वाणं धनुषि सन्धाय शब्दवेधिनमक्षिप्तम् ॥२२॥

हा हतोऽस्मीति तत्राभूच्छब्दो मानुपसूचकः ।  
 कस्यापि न कृतो दोषो मया केन हतो विधे ॥२३॥

प्रतीक्षते मां माता च पिता च जलकाङ्क्षया ।  
 तच्छुल्लभयसन्त्रस्तस्ततोऽहं पौरुषं वचः ॥२४॥

शनैरुक्त थ तत्पाश्च स्वामिन् दशरथोऽस्म्यहम् ।  
 अजात्ते मया विद्वत्तातुर्महसि मां मुने ॥२५॥

कमलोंमें मेरा साष्टांग प्रणाम कहना ।” ऐसा कह कुछ शिर झुकाकर रोती हुई वे वहाँसे चली गयीं ॥ १३ ॥ इसके पीछे वे सब नेत्रोंमें जल भरे हुए नाव-पर चढे । जबतक वे गङ्गाजीको पार कर उस पार पहुँचे तबतक मैं वहाँ खड़ा रहा ॥ १४ ॥ फिर वहाँ-से चलकर वहें दुःखसे मैं यहाँ पहुँचा हूँ ।”

तब कौसल्याने रोते हुए राजा से इस प्रकार कहा— ॥ १५ ॥ “राजन् ! आपने यदि प्रसन्न होकर अपनी प्रिया कैकेयीको वर दिया तो भले ही आपने उसीके पुत्रको राज्य दिया होता, किन्तु मेरे पुत्रको देश-निकाला क्यों दिया ? ॥ १६ ॥ और अपने आप ही यह सारी करतूत करके अब आप रोते क्यों हैं ?” कौसल्याके ये वचन सुनकर महाराजको ऐसी वेदना हुई मानो घबराएं अग्निका स्पर्श हो गया हो ॥ १७ ॥

तब महाराजने नेत्रोंमें शोकाश्रु भरकर कौसल्यासे कहा—“मैं तो आप ही दुःखसे मर रहा हूँ, फिर इस प्रकार मुझे और दुःख क्यों देती हो ? इससे क्या लाभ है ? ॥ १८ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि मेरे प्राण अभी निकलनेवाले हैं । पूर्वकालमें मेरी मूर्खताके कारण मुझे एक मुनीश्वरने शाप दिया था ॥ १९ ॥ (वह क्या इस प्रकार है—) पहले एक बार मैं युवावस्थाके मदसे उन्मत्त हुआ मृगयामें आसत्त होकर रात्रिके समय धनुष और वाण लिये एक घोर वनमें नदीके किनारे धूम रहा था ॥ २० ॥ उस आधी रातके समय किन्हीं प्यासे मुनीश्वरने अपने तृष्णित माता-पिताके निमित्त जल ले जानेके लिये जलमें घंडा छुटोया; उस समय उसका महान् शब्द हुआ ॥ २१ ॥ तब यह सोन्चकर कि इस घोर रात्रिमें कोई हाथी जल पी रहा है मैंने अपने धनुषपर शब्दवेषी वाण चढ़ा-कर छोड़ा ॥ २२ ॥ वहाँपर मनुष्यकी सूचनादेनेवाला यह शब्द हुआ ‘हाय ! मैं मारा गया ! हे विधे ! मैंने तो किसीका भी कोई अपराध नहीं किया था, फिर मुझपर यह वार किसने किया ? ॥ २३ ॥ हाय ! मेरे माता-पिता भी जलकी आकांक्षासे मेरी बाट देख रहे होंगे ।’ यह मानुष-वचन सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हुआ और धीरेसे उनके पास जाकर बोला—“प्रभो ! मैं दशरथ हूँ, मैंने ही अनजानमें यह वाण छोड़ा है; हे मुने ! आप मेरी रक्षा कीजिये” ॥ २४-२५॥

इत्युक्त्वा पादयोस्तस्य पतितो गद्दाक्षरः ।  
तदा मामाह स मुनिर्मा भैषीर्नृपसत्तम् ॥२६॥

ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वां वैश्योऽहं तपसि स्थितः ।  
पितरौ मां प्रतीक्षेते क्षुच्चृदभ्यां परिपीडितौ ॥२७॥

तयोस्त्वमुदकं देहि शीघ्रमेवाविचारयन् ।  
न चेत्वां भस्मसात्कुर्यात्पिता मे यदि कुप्यति ॥२८॥

जलं दत्त्वा तु तौ नत्वा कुतं सर्वं निवेदय ।  
शल्यमुद्धर मे देहात्प्राणस्त्वक्षयामि पीडितः ॥२९॥

इत्युक्तो मुनिना शीघ्रं वाणमुत्पाद्य देहतः ।  
सजलं कलशं धृत्वा गतोऽहं यत्र दम्पती ॥३०॥

अतिवृद्धाकन्धदशौ क्षुत्पिपासादितौ निशि ।  
नायाति सलिलं गृह्ण पुत्रः किं वाऽत्र कारणम् ॥३१॥

अनन्यगतिकौ वृद्धौ शोच्यौ रुद्परिपीडितौ ।  
आवामुपेक्षते किं वा भक्तिमानावयोः सुतः ॥३२॥

इतिचिन्ताव्याकुलौतौ मत्पादन्यासजं ध्वनिम् ।  
श्रुत्वा प्राह पिता पुत्र किं विलम्बः कृतस्त्वया ॥३३॥

देहावयोः सुपानीयं पिव त्वमपि पुत्रक ।  
इत्येवं लपतो भौत्या सकाशमगमं शर्नेः ॥३४॥

पादयोः प्रणिपत्याहमव्रवं विनयान्वितः ।  
नाहं पुत्रस्त्वयोध्याया राजादशरथोऽस्मयहम् ॥३५॥

पापोऽहं मृगयासको रात्रौ मृगविहिसकः ।  
जलावतारादृदूरेऽहं स्थित्वा जलगतं ध्वनिम् ॥३६॥

श्रुत्वाहं शब्दवेधित्वादेकं वाणमथात्यजम् ।  
हतोऽसीति ध्वनिं श्रुत्वा भयात्तत्राहमागतः ॥३७॥

जटा विकरीर्य पतितं दृष्ट्वाहं मुनिदारकम् ।  
भीतो गृहीत्वा तत्पादौ रक्षरक्षेति चान्ववम् ॥३८॥

“ऐसा कहकर मैं गदगद-कण्ठ हो उनके चरणोंमें गिर पड़ा । तब उन मुनीश्वरने मृगमें कहा—“हे वृपश्रेष्ठ ! डरा मत ॥ २६ ॥ तुमें व्रजालया नहीं लगी, क्योंकि मैं तपस्यामें लगा दुआ वैद्य हूँ । मैं माता-पिता भृग और प्यासमें ल्याकुल हूँ तो वैरा चार देखते होंगे ॥ २७ ॥ इन्हियं अब यिना गुल मोर विचार कियं शावर ही तुम उन्हें जल दे आओ, नां तो यदि मैं पिता कुपित हो गये तो तुम्हें मम कर डालेंगे ॥ २८ ॥ उन्हें जल देकर और नमस्कार देन अपना सारा छल्य सुना देना । मृदु अप्रकृत धीरा हो रही है, तुम मैं धर्मगम्भीर ताण निकाल रहीं, अब मैं प्राण छोड़ूँगा ॥ २९ ॥

“मुनिके ऐसा कालनेपर मैंने तुम्हें गर्वन्ती वाण निकाल दिया और जलया पढ़ा; कहकर जारी उनके माता-पिता ऐ वहाँ गया ॥ ३० ॥ इस समय वे इस प्रकार चिन्तामें ल्याकुल हो गए थे—‘इस अवस्था वृक्ष और आंखोंमें लालार है तथा भग्न-भागमें रुदीन हो रहे हैं; क्या कारण है कि इस शविके समर्थमें हमारा पुत्र अर्मादक जल देकर नहीं आदा, तमारा और कोई तमारा नहीं है, इस गुल, शंखलीय और प्यासमें ल्याकुल हैं। क्या कारण है कि ऐसी अवस्थामें हमारा पितृगत पुत्र हमारी उम्रका कर रहा है ?’ इसी समय मैं रिंगोंकी अदाद सुनकर पिलावें पृष्ठा—“ये टा ! आज तुमने इन्हों देखे कैसे की ? ॥ ३१-३२ ॥ लाओ, दौड़ हो जाएं पूर्व जल पिलाओ और तुम भी पिलो ।” उनके इस प्रकार कालनेपर मैं उत्तर-उत्तर भीतें उनके पास गया ॥ ३२ ॥ योरु उनके चरणोंमें व्रणान बहके अनि नदनापूर्वक बहते—“मैं आपका पुत्र नहीं हूँ विक्रिय अमोऽवाका राजा ददारथ हूँ ॥ ३५ ॥ मैं पापामा मृगयाका आमनिकों कारण शत्रिके समय पशुओंका वध करता दिखता था। यद्यपि मैं उस समय जलके नारने दूर था अिन्तु शब्दवेधी होनेके कारण जलमें हुए शब्दको लुलकर तारी मृग समझकर उसे मारनेके लिये मैंने एक वाण छोड़ दिया। पर जब मैंने यह शब्द लुना कि—‘त्वं प्रेया इवा तो उत्तरा हुआ वहाँ आया ॥ ३६-३७ ॥’ अंगनेपर जब मैंने एक मुनिकुमारको जल्लि ये पड़े देखा तो भयसे उसके चरण पकड़ लिए ॥ ‘रक्षा

मामैषीरिति मां प्राह ब्रह्महत्याभयं न ते ।  
 मत्पित्रोः सलिलं दत्त्वा नत्वा प्रार्थय जीवितम् ॥३९॥

इत्युक्तो मुनिना तेन हागतो मुनिहिंसकः ।  
 प्रक्षेतां मां दयावुक्तौ युवां हि शरणागतम् ॥४०॥

इति थुत्वा तु दुःखातो विलप्य वहु शोच्य तम् ।  
 पतितां नौ सुतो यत्र नय तत्राविलम्बयन् ॥४१॥

ततो नीतो सुतो यत्र मया तां वृद्धदम्पती ।  
 स्पृश्मा सुतं तीं हस्ताभ्यां वहुशोऽथ विलेपतुः ॥४२॥

हाहेति कन्दमानां तां पुत्रपुत्रेत्यवोचताम् ।  
 जलं देहीति पुंत्रिति किमर्थं न ददास्यलम् ॥४३॥

ततो मामृत्तुः शीघ्रं चिति रचय भूयते ।  
 मया तदेव रचिता चितिस्तत्त्वं निवेशिताः ।

त्रयस्तत्राग्निरुत्सूटो दग्धास्ते त्रिदिवं युः ॥४४॥

तत्र धृद्धः पिता प्राह त्वमप्येवं भविष्यसि ।  
 पुत्रशोकेन मरणं प्राप्स्यसे वचनान्मम ॥४५॥

स इदानीं मम प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः ।  
 इत्युक्त्वा विललापाथ राजा योकसमाकुलः ॥४६॥

हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर ।  
 त्वद्वियोगादहं प्राप्तो मृत्युं केग्यिसम्भवम् ॥४७॥

बदन्वेवं दग्धरथः प्राणांस्त्वयक्त्वा दिवं गतः ।  
 कांगुल्या च सुमित्रा च तथान्या राजयोपितः ॥४८॥

चुक्रुशुश्र विलेपुत्र उरस्तादनपूर्णकम् ।  
 वसिष्ठः प्रययां तत्र प्रातर्मन्त्रभिरावृतः ॥४९॥

तेलद्रोष्यां दशरथं क्षिप्त्वा दृतानथावतीत् ।  
 गच्छत त्वरितं साश्चा युधाजिन्नगरं प्रति ॥५०॥

तत्रास्ते भरतः श्रीमाङ्गुष्ठगुणसहितः प्रभुः ।

करो, रक्षा करो' ऐसा कहने लगा ॥ ३८ ॥ तब उन्होंने मुझसे कहा—“ठरो मत, तुम्हें ब्रह्महत्याका भय नहीं है । मेरे माता-पिताको जल देकर उन्हें प्रणाम कर जीवनदान मँगो” ॥ ३९ ॥ मुनिकुमारके ऐसा कहनेपर यह मुनिहिंसक आपके पास आया है । आप दोनों बड़े दयालील हैं, मैं आपकी शरण आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें” ॥ ४० ॥

“यह सुनकर वे दुःखात बोकर उसके लिये अत्यन्त शोक करते और रोते हुए पृथिवीपर गिर पड़े और बोले—“जहाँ हमारा घेटा है, हमें तुरन्त ही वहाँ ले चलो” ॥ ४१ ॥ तब, जहाँ वह लड़का पड़ा था वहाँ उन वृद्ध-दम्पतिको मैं ले गया और वे उसे दाखेसे स्पर्श कर अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ ४२ ॥ वे ‘हा पुत्र ! हा पुत्र !’ कहकर रोते हुए बोले—“घेटा ! हमें जल दो, हमें जल दो ! आज जल क्यों नहीं देते हो ?” ॥ ४३ ॥ फिर उन्होंने मुझसे कहा—“राजन ! शीघ्र ही चिता बनाओ” ॥ मैंने तुरन्त ही वहाँ चिता बना दी । तब वे तीनों उसपर चढ़ गये और अग्नि लगानेपर उसमें भस्म होकर खर्गलोकको चढ़े गये ॥ ४४ ॥ उस समय वृद्ध पिताने मुझसे कहा—“तुम्हारे लिये भी ऐसा ही होगा, तुम भी मेरे वचनसे पुत्र-शांकसे ही मरोगे” ॥ ४५ ॥

“वही अनिवार्य शापकाल इस समय उपस्थित हुआ है” ॥ ऐसा कहकर राजा दशरथ अत्यन्त शोकाकुर्ल होकर विलाप करने लगे ॥ ४६ ॥ “हा पुत्र राम ! हा सीते ! हा गुणाकर लक्ष्मण ! तुम्हारे विषयोगसे मैं कैक्रेयीसे उपस्थित की हुई मृत्युको प्राप्त हो रहा हूँ” ॥ ४७ ॥

इस प्रकार कहते हुए महाराज दशरथ प्राण त्याग-कर खर्गलोकको चढ़े गये । उस समय कौसल्या, सुमित्रा और अन्यान्य राजियाँ छाती पीट-पीटकर रोने और विलाप करने लगीं । ग्रान्तकाल होनेपर वहाँ मन्त्रियोंके सहित रुनिवर बसिएझी आये ॥ ४८-४९ ॥ और राजा दशरथके शवको एक तैल-पूर्ण नौकामें रखवाकर दृतोंसे बोले—“तुमलोग शीघ्र ही घोड़ोंपर चढ़कर युवत्रितकी राजधानीको जाओ” ॥ ५० ॥ वहाँ शत्रुघ्नके सहित श्रीमान् महाराज भरत विराजमान हैं । उनसे मेरी आङ्गासे जाकर इस प्रकार कहना

उच्यतां भरतः शीघ्रमागच्छेति ममाज्ञया ॥५१॥ कि भरत श्रीराम ही अयोध्यापुरामें आकर महाराज अपोद्यां प्रति राजानं कैकेयीं चापि पश्यतु । दशरथ और कैकेयींका दर्शन करें ।”

इत्युक्तास्त्वरितं दूता गत्वा भरतमातुलम् ॥५२॥ वसिष्ठजीके इस प्रकार कहनेपर उन्होंने तुम्हन दो आकर भरतके मामा नुशानित और दोटे भाई शशुदेव सहित भरतको प्रणाम करके “हाँ—“हाँ ! वसिष्ठजीने आपके लिये यह शब्द है कि दोटे दो शत्रुघ्नके सहित महाराज भरत तुम्हन ही बिना एक आगा-र्षीषा सांने अयोध्यापुरामें नहीं आये ॥” ऐसी आज्ञा सुनकर श्रीभगवज्ञा भयमें दशरथ ही तुम्हन ही गुरुव्रीको आदेशसे लोटे भाई नहिं करके लाप चले । और वह सोचकर कि ‘अथव यही महाराज या श्रीशत्रुघ्नायज्ञापर कोई धोर नंदिन उपनिषद रहा है ॥ ५२—५३॥ नार्गमें मन्त्रज्ञान चिन्ता नहीं नगरमें पहुँचे । वहाँ उन्होंने देखा कि नगर शोभाहीन, जनसमूहसे नहिं तथा उम्मायांने नहीं रहा है । वह देखकर वे अत्यन्त चिन्तित हुए । गःस-भवनमें जाकर देखा तो वह राजिनामानि राज्य ही नहा है और वहाँ अकेला ऐसीसी एक आननदर दिली हुई है । माताको देखकर उन्होंने भन्तुर्विक उगरे चरणोंमें शिर रखकर प्रणाम किया ॥ ५३—५४॥

इति चिन्तापरो सार्गे चिन्तयन्नगरं ययौ । भरतजीको आये देना माता कैरेयांने उन्हें ऐस-  
नगरं अष्टलक्ष्मीकं जनसम्वाधवर्जितम् ॥५६॥ वश शीघ्रनामे उठाकर हृदय लगाया और उन्होंनी गोदमें  
उत्थायालिङ्गय रमसा स्वाङ्कमारोप्य संस्थिता ५९ बैठा लिया ॥ ५५॥ फिर उनका डिल नेतृकर  
प्रविश्य राजभवनं राजलक्ष्मीविवर्जितम् ॥५७॥ अपने कुलकी कुदाल पूर्णा । वह चैत्य—“मेरे पिता,  
अपश्यत्कैकेयीं तत्र एकामेवासने स्थिताम् । भाई और शुभलक्षणा माता तुवालर्दिद है न ?  
ननाम शिरसा पादौ मातुर्भक्तिसमन्वितः ॥५८॥ ॥ ५६॥ चेटा ! आज वहे मात्यांने निनु तुम्हें नकुशल  
देख पाया है ।”

आगतं भरतं दृष्ट्वा कैकेयीं प्रेमसम्भ्रमात् । माताके इस प्रकार पूछनेपर भरतजीने चिन्तापुरु-  
उत्थायालिङ्गय रमसा स्वाङ्कमारोप्य संस्थिता ५९ होकर दृःख्ला चिन्तसे मानसे पूछा—“माँ ! मेरे पिताजीं कहाँ हैं जो तुम यहाँ अकेले बैठी हो ? ॥ ५६—५७॥  
मूर्ध्यवधाय प्रच्छ कुशलं स्वकुलस्य सा । माँ ! तुम्हारे बिना नो पिताजींप्रकान्तमें कहाँ नहाँ रहते  
प्रे ; किन्तु इस समय वे दिन्यामीं नहीं देखे, सो यताओं तो कहाँ हैं ? ॥ ५७॥ पिताजीको न देखनेसे आज  
अप्त्यन्त भय और दृःख्ल हो रहा है ।”

पिता मे कुशली भ्राता माता च शुभलक्षणा ॥५०॥ तत्र कैकेयीने कहा “हे अनघ ! तुम्हारे लिये दृःख्ल-  
दृयमानेन मनसा मातरं समपृच्छत । की क्या बात है ? ॥ ५८॥ हे पितृकृत्सल ! अहमेवादि

पिता मे कुशली भ्राता माता च शुभलक्षणा ॥५०॥ तत्र कैकेयीने कहा “हे अनघ ! तुम्हारे लिये दृःख्ल-

दिश्या त्वम्य कुशली मया दृष्टोऽसि पुत्रक । की क्या बात है ? ॥ ५८॥ हे पितृकृत्सल ! अहमेवादि

इति पृष्ठः स भरतो मात्रा चिन्ताऽऽकुण्डेन्द्रियः ॥५१॥ तत्र कैकेयीने कहा “हे अनघ ! तुम्हारे लिये दृःख्ल-

दृयमानेन मनसा मातरं समपृच्छत । की क्या बात है ? ॥ ५८॥ हे पितृकृत्सल ! अहमेवादि

मातः पिता मे कुत्रास्ते एका त्वमिह संस्थिता ॥५२॥ तत्र कैकेयीने कहा “हे अनघ ! तुम्हारे लिये दृःख्ल-

त्वया विना न मे तातः कदाचिद्रहसि स्थितः । की क्या बात है ? ॥ ५८॥ हे पितृकृत्सल ! अहमेवादि

इदानीं दृश्यते नैव कुत्र तिष्ठति मे वद ॥५३॥ तत्र कैकेयीने कहा “हे अनघ ! तुम्हारे लिये दृःख्ल-

अदृश्या पितरं मेऽध्य भयं दुःखं च जायते । की क्या बात है ? ॥ ५८॥ हे पितृकृत्सल ! अहमेवादि

अथाह कैकेयी पुत्रं कि दुःखेन तवानघ ॥५४॥ तत्र कैकेयीने कहा “हे अनघ ! तुम्हारे लिये दृःख्ल-

या गतिर्धर्मशीलानामश्वेधादियाजिनाम् । की क्या बात है ? ॥ ५८॥ हे पितृकृत्सल ! अहमेवादि

तां गतिं गतवानद्य पिता ते पितृवत्सल ॥६५॥  
 तच्छ्रुत्वा निपपातोव्यर्था भरतः शोकविहृलः ।  
 हा तात क गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे ६६  
 असमपर्येव रामाय राज्ञे मां क गतोऽसि भोः ।  
 इति विलपितं पुन्रं पतितं मुक्तमूर्धजम् ॥६७॥  
 उत्थाप्यामृज्य नयने कैकेयी पुन्रमन्वीत् ।  
 समाश्वसिहि भद्रंते सर्वं सम्पादितं मया ॥६८॥  
 तामाह भरतस्तातो प्रियमाणः किमन्वीत् ।  
 तामाह कैकेयी देवी भरतं भयवर्जिता ॥६९॥  
 हा राम राम सीतेति लक्ष्मणेति पुनः पुनः ।  
 विलपन्नेव सुचिरं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥७०॥  
 तामाह भरतो हेऽम्ब रामः सन्निहितो न किम् ।  
 तदानीं लक्ष्मणो वापि सीता वा कुन्त्र ते गताः ॥७१॥

## कैकेयुवाच

रामस्य यावराज्यार्थं पित्रा ते सम्भ्रमः कृतः ।  
 तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विघ्नमाचरम् ॥७२॥  
 राजा दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्यम् ।  
 याचितं तदिदानीं मे तयोरंकेन तेऽखिलम् ॥७३॥  
 राज्यं रामस्य चकेन वनवासो मुनिव्रतम् ।  
 नृतः सत्यपरो राजा राज्यं दत्त्वा तवं च हि ॥७४॥  
 रामं सम्प्रेपयामास वनमेव पिता तव ।  
 सीताप्यनुगता रामं पातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥७५॥  
 सांभ्रात्रं दर्शयन्नाममनुयातोऽपि लक्ष्मणः ।  
 वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥७६॥  
 प्रलपन् रामरमेति ममार वृपसत्तमः ।  
 इति मातुर्वचः श्रुत्वा वज्राहत इव द्रुमः ॥७७॥  
 पपात भूमौ निःसंज्ञस्तं दृष्ट्वा दुःखिता तदा ।

यज्ञ करनेवाले धर्मपरायण पुरुषोंकी जो गति होती है उसीको आज तुम्हारे पिता भी प्राप्त हुए हैं” ॥६५॥

यह छुनते ही भरत शोकाकुल होकर पृथिवीमें गिर पड़े; और बोले—“हा तात ! हा तात ! मुझे दुःख-समुद्रमें छोड़कर आप कहाँ चले गये ? ॥ ६६ ॥ हाय ! महाराज रामको मुझे सौंपे बिना ही आप कहाँ चले गये ?” इस प्रकार विलाप करते और बिसुए हुए केशोंसे पृथिवीपर पड़े अपने पुत्रको उठाकर कैकेयीने उसके आँसू पोछकर कहा—“वेदा ! धीरज रखो; तुम्हारा कल्याण हो। मैंने तुम्हारे लिये सब कुछ ठीक कर लिया है” ॥ ६७-६८ ॥

तब भरतजीने पूछा—“मरते समय महाराजने क्या कहा था ?” इसपर कैकेयीदेवीने निर्भय होकर भरत-जीसे कहा—॥६९॥ “वे ‘हा राम ! हा राम ! हा सीता ! हा लक्ष्मण !’ इस प्रकार बहुत समयतक बारम्बार विलाप करते हुए अपना (शरीर) त्यागकर स्वर्गको गये हैं” ॥७०॥

तब भरतजीने पूछा—“माता ! तो क्या उस समय राम, सीता और लक्ष्मण भी उनके पास नहीं थे ? वे तीनों उस समय कहाँ गये थे ?” ॥७१॥

कैकेयी बोली—तुम्हारे पिताने रामको युवराज बनानेकी तैयारी की थी, उस समय तुम्हें राज्य दिलानेके लिये मैंने उसमें विज्ञ खड़ा कर दिया ॥७२॥ पूर्वकालमें एक बार प्रसन्न होकर राजाने मुझे दो वर देनेको कहा था। इस समय उनमेंसे एकके द्वारा मैंने तुम्हारे लिये सम्पूर्ण राज्य और दूसरेसे रामके लिये मुनिव्रतपूर्वक वनवास माँग लिया। इसलिये तुम्हारे पिता सत्यसंघ महाराज दशरथने तुम्हें ही राज्य देकर रामको वनमें भेज दिया। पातिव्रत्यका पालन करनेवाली सीता भी रामके साथ ही वनमें चली गयी ॥७३-७५॥ तथा लक्ष्मण भी भ्रातृस्नेह प्रकट करते हुए रामके अनुगामी हुए। इस प्रकार इन सबके वनको चले जानेपर उन्हेंका स्मरण करते हुए और ‘राम ! राम !’ करके विलाप करते हुए दृष्टश्रेष्ठ महाराजने शरीर छोड़ दिया। माताके ये वचन सुनकर भरतजी वज्राहत वृक्षके समान अचेत होकर पृथिवीपर गिर पड़े।

कैकेयी पुनरप्याह वत्स शोकेन किं तव ॥७८॥  
 राज्ये महति सम्प्राप्ते दुःखस्यावसरः कुतः ।  
 इति ब्रुवन्तीमालोक्य मातरं प्रदद्विष्व ॥७९॥  
 असम्भाष्यासि पापे मे घोरे त्वं भर्तृघातिनी ।  
 पापे त्वद्भर्तजातोऽहं पापवानस्मि साम्प्रतम् ।  
 अहमग्निं प्रवेष्यामि विषं वा भक्षयाम्यहम् ॥८०॥  
 खड्जेन वाथ चात्मानं हत्वा यामि यमक्षयम् ।  
 भर्तृघातिनि दुष्टे त्वं कुम्भीपाकं गमिष्यासि ॥८१॥  
 इति निर्भत्स्य कैकेयीं कौसल्याभवनं ययौ ।  
 साऽपि तं भरतं दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुदोद ह ॥८२॥  
 पांदयोः पतितस्तस्या भरतोऽपि तदाऽरुदत् ।  
 आलिङ्ग्य भरतं साध्वी राममाता यशस्विनी ।  
 कृशाऽतिदीनवदना साश्रुनेत्रेदमव्रवीत् ॥८३॥  
 पुत्र त्वयि गते दूरमेवं सर्वमभूदिदम् ।  
 उक्तं मात्रा श्रुतं सर्वत्वया ते मातृचेष्टितम् ॥८४॥  
 पुत्रः सभायो वनमेव यातः  
 सलक्षणो मे रघुरामचन्द्रः ।  
 चीराम्बरो वद्वजटाकलापः  
 सन्त्यज्य मां दुःखसमुद्रसमाम् ॥८५॥  
 हा राम हा मे रघुवंशनाथ  
 जातोऽसि मे त्वं परतः परात्मा ।  
 तथापि दुःखं न जहाति मां वै  
 विधिर्वर्लीयानिति मे मनीषा ॥८६॥  
 स एवं भरतो वीक्ष्य विलपन्तीं भृशं शुचा ।  
 पादौ गृहीत्वा प्राहेदं शृणु मातर्वचो मम ॥८७॥  
 कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिपेचने ।  
 अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ॥८८॥  
 पापं भेदस्तु तदा मातर्वक्षहत्याशतोऽवम् ।  
 हत्वा वसिष्ठं खड्जेन अरुन्धत्या समन्वितम् ॥८९॥

उन्हें ऐसी दशामें देख कैकेयीनि दुःखित होकर फिर कहा—“ब्रेटा ! तुम शोक क्यों करते हो ? ॥७६-७८॥ ऐसे महान् राज्यको पाने पर दुःखका कारण ही कहाँ रह जाता है ?” माताको इस प्रकार कहती देख भरतजीनि ग्रोधमे जलते हुए से कहा—॥७९॥ “अर्हा पापिनी ! न बात करनेयोग्य नहीं है ! अर्हा घोरे ! न अपने पतिको हत्या करनेवाली है ! अर्हा पापे ! तेरे गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण अब तो मैं भी प्रत्यक्ष ही महापापी हूँ । मैं या तो अग्रिमे प्रवेश कर जाऊँगा या शिव व्या दूँगा ॥८०॥ अथवा खड़गसे आत्मवान् करके यमदेवको चला जाऊँगा । हे भर्तृघातिनि ! हे दुष्टे ! न भी कुम्भीपाकनरकारे पढ़ेगा” ॥८१॥

कैकेयीको इस प्रकार डॉट्टर वे कौमन्यकि दूर गये । भरतको देखने ही गाता कौमन्या मुक्तकण्ठमें रोने लगी ॥८२॥ तब भरतजी भी उनके चरणोंमें पड़कर रोने लगे । उन्हें गले टगावर ( चिन्तासे ) नहा दुर्घट और दानवदना वशस्त्रिनी रामनाना कौमन्यानि नेत्रोंमें जल भरकर कहा—॥८३॥ “ब्रेटा ! तुम्हारे बाहर चले जानेसे जो-जो अनर्थ हुए हैं अपनी नाताको वे सब करतूतें तुमने उसके मुखसे उत ही ली होंगी ॥८४॥ मेरा पुत्र रघुश्रेष्ठ रामचन्द्र अपनी पत्नी सीता और लक्षणके सहित चार-बरा धारण कर और जटाजट बौधकर उसे दुःख-समुद्रमें डूबोकर बनवाने चला गया ॥८५॥ हा राम ! हा नरे रम्यवंदादिरोगणि ! आप साक्षात् परम पुरुष परमात्माने मेरे नर्भसे जन्म लिया, तथापि दुःखने मेरा पड़ा नहीं लोड़ा । इससे मेरा विचार है कि विधाता ही बलवान् है” ॥८६॥

भरतजीने उन्हें इस प्रकार शोकसे अत्यन्त विलाप करती देख उनके चरण पकड़कर कहा—“माता ! मेरी बात सुनो—॥८७॥ कैकेयीनि श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिपेकके समय जो कुछ करता की है, अथवा उसने और भी जो कोई कार्य किया है उसे यदि मैं जानता होऊँ अथवा उसमें मेरी सम्मति हो ॥८८॥ तो हे मातः ! मुझे सौ ब्रह्महत्याओंका पाप लगे ! अथवा अरुन्धतीके सहित श्रीवस्तिष्ठजीको खड़गसे मारनेसे जो पाप होता है वही पाप मुझे भी लगे !”

भूयात्तपापमसिलं मम जानामि यद्यहम् ।  
इत्येवं शपथं कृत्वा रुद्रो भरतस्तदा ॥१०॥  
कौसल्या तमथालिङ्ग्य पुत्र जानामि मा शुचः ।  
एतसिन्नतरे शुत्वा भरतस्य समागमम् ॥११॥  
असष्टो मन्त्रिभिः सार्थं प्रययौ राजमन्दिरम् ।  
रुदन्तं भरतं दृष्टा वसिष्ठः प्राह सादरम् ॥१२॥  
शुद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः ।  
भुक्त्वा मर्त्यसुखं सर्वमिष्टा विपुलदक्षिणः ॥१३॥  
अश्वमेधादिभिर्यज्ञर्लभ्या रासं सुतं हरिम् ।  
अन्ते जगाम त्रिदिवं देवेन्द्राद्दर्शिनं प्रभुः ॥१४॥  
तं शोचसि वृथेव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनम् ।  
आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः ॥  
शरीरं जडमत्यर्थमपवित्रं विनश्वरम् ।  
विचार्यमाणे शोकस्य नावकाशः कथञ्चन ॥१६॥  
पिता वा तनयो याऽपि यदि मृत्युवशं गतः ।  
मृढास्तमनुयोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम् ॥१७॥  
निःसारे खलु संसारे वियोगो ज्ञानिनां यदा ।  
भवद्वैराग्यहेतुः स शान्तिसार्थं तनोति च ॥१८॥  
जन्मवान्यदि लोकेऽस्मिस्तहिं तं मृत्युरन्वगात् ।  
तस्मादपरिहायोऽयं मृत्युर्जन्मवतां सदा ॥१९॥  
स्वकर्मविशतः सर्वजन्मनां प्रभवाप्ययौ ।  
विजानन्नप्यविद्वान्यः कथं शोचति वान्धवान् ॥२०॥  
ब्रह्माण्डकोटयो नष्टाः सृष्टयो बहुशो गताः ।  
शुष्यन्ति सागराः सर्वे कैवास्था क्षणजीविते ॥२१॥  
चलपत्रान्तलभास्तु चिन्दुवत्क्षणभङ्गरम् ।  
आयुस्त्यजत्यवेलायां कस्तत्र प्रत्ययस्तव ॥२२॥  
देही प्राक्तनदेहोत्थकर्मणा देहवान्पुनः ।

इस प्रकार शपथ करके भरतजी रो उठे ॥८९-९०॥  
तब कौसल्याने उन्हें हृदयसे लगाकर कहा—“ब्रेटा !  
मैं यह सब जानती हूँ, तुम किसी प्रकारकी चिन्ता  
न करो ।”

इसी समय भरतजीका आना सुनकर मन्त्रियोंके  
सहित वसिष्ठजी राजमन्दिरमें आये और भरतको रोते  
देखकर आदरपूर्वक बोले—॥९१-९२॥ “महाराज  
दशरथ वृद्ध, ज्ञानी और सत्य-पराक्रमी थे । वे मनुष्य-  
जन्मके समस्त सुख मोक्षकर, बहुत-सी दक्षिणाके  
सहित अश्वमेधादि यज्ञोदाश भगवान्‌का यज्ञ कर  
और रामचन्द्रके रूपमें साक्षात् विष्णुभगवान्‌को पुत्र-  
रूपसे पाकर अन्तमें स्वर्गलोकमें जाकर देवराज इन्द्रके  
आधे आसनके अधिकारी हुए हैं ॥९३-९४॥  
वे सर्वथा अशोचनीय और मोक्षके पात्र हैं, उनके लिये  
तुम बृथा ही शोक करते हो; देखो, आत्मा तो नित्य,  
अविनाशी, शुद्ध और जन्म-नाशादिसे रहित है ॥९५॥  
और शरीर जड, अत्यन्त अपवित्र और नाशवान् है ।  
इस प्रकार विचार करनेपर शोकके लिये कोई स्थान  
नहीं रह जाता ॥९६॥ यदि कोई पिता या पुत्र मर  
जाना है तो मृद्गन ही उसके लिये छाती पीटकर  
रोते हैं ॥९७॥ किन्तु, इस असार संसारमें यदि  
ज्ञानियोंको किसीसे वियोग होता है तो वह उनके  
लिये वैराग्यका कारण होता है और सुख तथा शान्तिका  
विस्तार करता है ॥९८॥ यदि किसीने इस लोकमें  
जन्म लिया है तो मृत्यु भी अवश्य ही उसके साथ लगी  
हुई है । अतः जन्म देनेवालोंके लिये मृत्यु सर्वदा  
अनिवार्य है ॥९९॥ ‘अपने कर्मानुसार ही सब  
प्राणियोंके जन्म-मरण होते हैं’ यह जानकर भी देखो  
मृद्गोग अपने बन्धु-बान्धवोंके लिये कैसे शोक करते  
हैं ॥१००॥ करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये, अनेकों  
सृष्टियाँ बीत गयीं, ये सम्पूर्ण समुद्र एक दिन सूख जायेंगे,  
फिर इस क्षणिक जीवनमें भला क्या आस्था की जाय ?  
॥१०१॥ यह आयु हिलते हुए पत्तेकी नोकपर  
लटकती हुई जलकी बूँदके समान क्षणमंगुर है,  
असमय ही छोड़कर चली जाती है; उसका तुम क्या  
विश्वास करते हो ? ॥१०२॥ इस जीवात्माने  
अपने पूर्व-देह-कृत कर्मोंसे यह शरीर धारण किया है  
और फिर इस देहके कर्मोंसे यह और शरीर धारण

तदेहोत्थेन च पुनरेवं देहः सदात्मनः । १०३।  
 यथा त्यजति वै जीर्णं वासो गृह्णाति नूतनम् ।  
 तथा जीर्णं परित्यज्य देही देहं पुनर्नवम् । १०४।  
 भजत्येव सदा तत्र शोकस्यावसरः कृतः ।  
 आत्मा न मियते जातु जायते न च वर्धते । १०५।  
 पद्मावरहितोऽनन्तः सत्यप्रज्ञानविग्रहः ।  
 आनन्दरूपो बुद्धचादिसाक्षी लयविवर्जितः । १०६।  
 एक एव परो ज्ञात्मा हृद्वितीयः समः स्थितः ।  
 इत्यात्मानं दृढं ज्ञात्वा त्यक्त्वा शोकं कुरु क्रियाम् ॥  
 तैलद्रोण्याः पितुर्देहमुद्धृत्य सचिवैः सह ।  
 कुत्यं कुरु यथान्यायमस्माभिः कुलनन्दन । १०८।  
 इति सम्बोधितः साक्षादुरुणा भरतस्तदा ।  
 विसुज्याज्ञानं शोकं चक्रे स विधिवत्क्रियाम् । १०९  
 पुरुणोक्तप्रकारेण आहिताग्रेर्यथाविधि ।  
 संस्कृत्य स पितुर्देहं विधिवृष्टेन कर्मणा । ११०।  
 एकादशेऽहनि प्राप्ते ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।  
 प्रोजयामास विधिवच्छतशोऽथ सहस्रशः । १११।  
 उद्दिश्य पितरं तत्र ब्राह्मणेभ्यो धनं वहु ।  
 द्वौ गवां सहस्राणि ग्रामान् रत्नाम्बराणि च । ११२।  
 अवसत्स्वगृहे तत्र राममेवानुचिन्तयन् ।  
 वसिष्ठेन सह भ्रात्रा मन्त्रिभिः परिवारितः । ११३।  
 रामेऽरण्यं प्रयाते सह जनकसुता-  
 लक्ष्मणाभ्यां सुधोरं  
 साता मे राक्षसीव प्रदहति हृदयं  
 दर्शनादेव सद्यः ।  
 अच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं  
 दूरतोऽपास्य राज्यं  
 तम् सीतासमेतं स्थितरुचिरमुखं  
 नित्यमेवानुसेवे ॥ ११४॥

इति श्रीमद्भ्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

करेगा । इसी प्रकार आत्माभीं सदा पुनः-पुनः देहकों प्राप्ति होती रहती है ॥ १०३ ॥ मनुष्य जिसे प्रकार पुराने वस्त्रोंको उतारकर फिर नये वस्त्र पहन लेता है उसी प्रकार देहबारा जाव पुराने शरीरको छोड़कर नवीन शरीर धारण कर लेता है । लेतः इनमें शांतिका क्या कारण है ? क्योंकि आत्मा तो न कभी मरता है, न जन्मता है और न वढ़ता ही है ॥ १०४-१०५ ॥ वह पड़-भाव-विकारांमें रहित, अनन्त, निरन्तररूप, आनन्दरूप, बुद्धि आदिका सार्व और अविनाशी है ॥ १०६ ॥ वह परात्मा एक, अद्वितीय और समग्राममें श्रित है । इस प्रकार तुम आत्माका दृढ़ ज्ञान प्राप्त कर शोकरहित हो । नमस्तु कार्य करो ॥ १०७ ॥ दृढ़ कुलनन्दन भरत ! अपने पिताका शरीर तैलको नायमें निकालकर मन्त्रियों और हम सब ऋषियोंके माध्यमें उसका विधिपूर्वक अन्त्येष्टि-नन्दकार करो ॥ १०८ ॥ तब गुरुजीके इस प्रकार ममदानेपर भरत-जीने अङ्गानजन्य शोकको छोड़कर गाजाका विधिवत् अन्त्य कुरुय किया ॥ १०९ ॥ गुरुजीके वरदनानुसार जैसे अद्वितीयका अन्तिम संस्कार करना चाहिये उसी प्रकार विधिपूर्वक पिताके देहका शाश्वानुकूल संस्कार कराकर ॥ ११० ॥ फिर एकादशाह आनेपर सेकड़ों-हजारों वेदज्ञ ब्राह्मणोंको विधिवत् भोजन कराया ॥ १११ ॥ तथा पिताके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको वहुत-सा धन, हजारों गोँठ, अंकों गोँठ और रुद्र तथा वज्रादि दिये ॥ ११२ ॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीका ही स्मरण करते हुए वे गुरु वसिष्ठजी, भाई शत्रुघ्न और मन्त्रियोंके साथ अपने घरमें रहने लगे ॥ ११३ ॥ घरमें रहते हुए वे मन-हा-मन सोचा करते थे कि 'जनकतन्दिना महारानों सीना और लक्ष्मणके सहित श्रीरघुनाथजीके भवयंकर बनगें चले जानेसे माना कैकेयी अपने दर्शनमात्रसे ही राक्षसीके समान मेरे हृदयमें दाह उत्पन्न करता है । अतः अब मैं निस्सन्देह शीघ्र ही सब राज-पाट छोड़कर बनको जाऊँगा और मधुर गुसकानसे जिनका मुखारविन्द अति शोभित हो रहा है उन राम और सीताकी नित्य-प्रति सेवा करूँगा' ॥ ११४ ॥

## अष्टम सर्ग

भरतजीका वनको प्रखान, मार्गमें गुह और भरद्वाजजीसे मैट तथा चित्रकूटदशन।

श्रीमहादेव उवाच

घुसिष्ठो मुनिभिः सार्धं मन्त्रभिः परिवारितः ।  
राज्ञः सभां देवसभासन्निभामविशद्विभुः ॥ १ ॥  
तत्रासने समासीनश्चतुर्मुख इवापरः ।  
आनीय भरतं तत्र उपवेश्य सहानुजम् ॥ २ ॥  
अब्रवीद्वचनं देशकालोचितमर्नदमम् ।  
वत्स राज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्य पितृशासनात् ॥ ३ ॥  
कैकेय्या याचितं राज्यं त्वदर्थे पुरुषर्पम् ।  
सत्यसन्धो दशरथः प्रतिज्ञाय ददौ किल ॥ ४ ॥  
अभिषेको भवत्वद्य मुनिभिर्मन्त्रपूर्वकम् ।  
तच्छ्रुत्वा भरतोऽप्याह मम राज्येन किं मुने ॥ ५ ॥  
रामो राजाधिराजश्च वयं तस्यैव किङ्कराः ।  
श्वःप्रभाते गमिष्यामो राममानेतुमञ्जसा ॥ ६ ॥  
अहं यूपं मातरश्च कैकेयीं राक्षसीं विना ।  
हनिष्याम्यधुनैवाहं कैकेयीं भारुगन्धनीम् ॥ ७ ॥  
किन्तु मां नो रघुथ्रेषुः हीहन्तारं महिष्यते ।  
तच्छ्रोभूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान् ॥ ८ ॥  
शत्रुघ्नसहितस्तूर्णं यूयमायात् वा न वा ।  
रामो वथा वने यातस्तथाऽहं वल्कलाम्बरः ॥ ९ ॥  
फलमूलकृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने ।  
भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते ॥ १० ॥  
इति निश्चित्य भरतस्तूणीमेवावतस्थिवान् ।  
साधुसाधिति तं सर्वे प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ११ ॥  
ततः प्रभाते भरतं गच्छन्तं सर्वसैनिकाः ।  
अनुजरम्पुः सुगन्त्रेण नोदिताः साश्वकुञ्जराः ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! एक दिन गुनीश्वरोंके सहित मन्त्रियोंसे घिरे हुए भगवान् वसिष्ठजी देवसभाके सदृश राजसभामें आये ॥ १ ॥ वहाँ दूसरे ब्रह्माजीके समान आसनपर विराजमान श्रीवसिष्ठजीने भाई शत्रुघ्नके सहित भरतजीको बुलाकर आसनपर बैठाया ॥ २ ॥ और उन शत्रुदमन भरतजीसे इस प्रकार देशकालोचित वाक्योंमें कहा—“वत्स ! तुम्हारे पिताके कथनानुसार आज हम तुम्हें राजपदपर अभिषिक्त करेंगे ॥ ३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! कैकेयीने तुम्हारे लिये राजा दशरथसे राज्य माँगा था । राजा सत्यपरायण थे, इसलिये प्रनिज्ञा करनेके कारण उन्होंने उसे दे दिया ॥ ४ ॥ अनः मुनिजनोंद्वारा मन्त्रोच्चारपूर्वक आज तुम्हारा अभिषेक होना चाहिये ।”

यह सुनकर भरतजी बोले—“हे मुनिनाथ ! राज्यसे मेरा क्या प्रयोजन है ? ॥ ५ ॥ महाराज राम ही राजाधिराज हैं, हम तो उन्हींके दास हैं । कल प्रातः काल रामजीको लानेके लिये हम शीघ्र ही वनको जायेंगे ॥ ६ ॥ मैं, आप सबलोग और राक्षसी कैकेयीके सिवा अन्य सब्र माताएँ—ये सभी वनको चलेंगे । मैं क्या करूँ ? मैं तो इस नाममात्रकी माता कैकेयीको अभी मार डालता, किन्तु श्रीरघुनाथजी मुझ खी-हत्यारेको क्षमा न करेंगे । अतः कुछ भी हो, कल प्रातःकाल होते ही, आप लोग चलें या न चलें, मैं तो शत्रुघ्नके सहित पैदल ही दण्डकारण्यको जाऊँगा । हे मुने । जिस प्रकार रामजी गये हैं उसी प्रकार जबतक रामचन्द्रजी न लौटेंगे तबतक मैं भी, शत्रुघ्नके सहित वल्कल-वल्ल और जटाजट धारणकर कन्द-मूल-फलादिका भोजन करूँगा और पृथिवीपर शयन करूँगा” ॥ ७-१० ॥

ऐसा निश्चयकर भरतजी मौन हो गये । तब सबलोग प्रसन्न होकर ‘साधु-साधु’ कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ११ ॥

तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर भरतजीके कूच करते समय हाथी और घोड़ोंके सहित समस्त सैनिक सुमन्त्र-

कौसल्याद्या राजदारा वसिष्ठप्रभुखा द्विजाः ।  
छादयन्तो भुवं सर्वे पूष्टुतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥१३॥

शृङ्गवेरपुरं गत्वा गङ्गाकूले समन्ततः ।  
उवास महती सेना शत्रुघ्नपरिचोदिता ॥१४॥

आगतं भरतं श्रुत्वा गुहः शङ्खितमानसः ।  
महत्या सेनया सार्धमागतो भरतः किल ॥१५॥

पापं कर्तुं न वा याति रामस्याविदितात्मनः ।  
गत्वा तदृधृदयं ज्ञेयं यदि शुद्धस्तरिष्यति ॥१६॥

गङ्गां नोचेत्समाकृष्य नावस्तिष्ठन्तु सायुधाः ।  
ज्ञातयो मे समायत्ताः पद्यन्तः सर्वतोदिशम् ॥१७॥

इति सर्वान्समादिश्य गुहो भरतसागतः ।  
उपायनानि संगृह्ण विविधानि वहून्यपि ॥१८॥

प्रययौ ज्ञातिभिः सार्धं बहुभिर्विविधायुधैः ।  
निवेद्योपायनान्यग्रे भरतस्य समन्ततः ॥१९॥

दृष्ट्वा भरतमासीनं सालुजं सह मन्त्रिभिः ।  
चीराम्बरं धनश्यामं जटामुकुटधारिणम् ॥२०॥

राममेवानुशोचन्तं रामरामेति वादिनम् ।  
ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाव्रवीद् ॥२१॥

शीघ्रमृत्थाप्य भरतो गाढमालिङ्ग्य सादरम् ।  
पृष्ठवानामयमव्यग्रः सखायमिदमव्रीत् ॥२२॥

भ्रातस्त्वं राघवेणात्र समेतः समवस्थितः ।  
रामेणालिङ्गितः सार्वनयनेनामलात्मना ॥२३॥

धन्योऽसि कृतकृत्योसि यत्त्वया परिभाषितः ।  
रामो राजीवपत्राक्षो लक्ष्मणेन च सीतया ॥२४॥

यत्र रामस्त्वया दृष्टस्तत्र मां नय सुब्रत ।  
सीतया सहितो यत्र सुप्तस्तदर्शयस्व से ॥२५॥

त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान् ।  
इति संस्मृत्य संस्मृत्य रामं साश्रुविलोचनः ॥२६॥

की प्रेरणासे उनके साथ चले ॥ १२ ॥ कौन्तन्या आदि महारानियों तथा वसिष्ठ आदि द्विजगण पृथिवीको आन्द्रादन कर उनके भाग-पीछे और इधर-उधर यथा योग्य रूपिते चलने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार शृंगवेरपुर पहुँचनेपर वह महान् सेना शत्रुघ्नका प्रेरणासे गंगातङ्ग पर जहाँ-तहाँ ठहर गया ॥ १४ ॥

भरतका आगमन सुन गुह्यको यह शंका छाई लिंग भरत वर्डी सेना के कर आये हैं अतः ये रामके अनजान में उनका कोई अनिष्ट करनेके लिये न जाने हों ? गुह्य उनके पास जाकर उनका मर्म जानना चाहिये । यदि उनका भाव ठीक हो तब तो वे भगे ही पर चले जाये ॥ १५-१६ ॥ नहीं तो ( इसके विषयान्त उपाय करना पड़ेगा अतः ) मेरे जातिवाने अदा-दात्र नेकर सावधानी-ज्ञातयो मे समायत्ताः पद्यन्तः सर्वतोदिशम् ॥ १७ ॥ से सब और चौचत्तु रहें और सब नायोंको नीचवर गंगाके वर्षाचमे न्यायी बर दें ॥ १७ ॥

इस प्रकार सबको आङ्गा दे गुह नाना प्रकारको बहुत-सा भेंटे के कर अपने बहुतने हथियारचल जानि-भाइयोंके साथ भरतजीके पास आया । वहाँ उनके सामने सब साम्राज्य रखकर इधर-उधर देगते हुए उन्नें देखा कि मेघद्याम भरत चार-बल और जटामृट भारण किये मन्त्रियोंके साथ चैंडे हैं ॥ १८-२० ॥ वे राम-हीका स्मरण कर रहे हैं और 'रामनाम' का ही जप कर रहे हैं । यह देखकर उन्नें पृथिवीपर दिर रखकर भरतजीको ग्रणाम किया और बंला 'मैं गुह हूँ' ॥ २१ ॥

भरतजीने उसे शीत्र ही उठाकर आदरपूर्वक गाढ़ आलिंगन किया और प्रसन्न-मुखसे उसकी फुजाल पृष्ठ-कर उससे सखा-भावसे इस प्रकार बोले—॥ २२ ॥ "मैया ! तुम यहाँ श्रीरामचन्द्रजीके साथ रहे थे लैर निर्मलहृदय श्रीरामने नेत्रोंमें जल भरकर तुम्हारा आलिंगन किया था ॥ २३ ॥ तुमसे तीता और लूमण-के सहित कमलन्यन रामने वार्तालाप की अतः तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन सफल है ॥ २४ ॥ हे लुक्त ! तुमने श्रीरामचन्द्रजीको जहाँ देखा था एक्षें वहाँ ले चलो, जहाँ वे सीताके लहित संयोधे थे वह स्थान एक्षें दिखाओ ॥ २५ ॥ तुम रामके प्रियतम सखा और भाग्यवान् भल हो ।" इस प्रकार पुनः-पुनः रामका स्मरण करनेसे भरतजीके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ २६ ॥

गुहेन सहितस्त्र यत्र रामः स्थितो निशि ।  
यथौ ददर्श श्यनस्थलं कुशसमास्तुतम् ॥२७॥

सीताऽभरणसंलग्नस्वर्णविन्दुभिरचितम् ।  
दुःखसन्तस्त्रहदयो भरतः पर्यदेवयत् ॥२८॥

अहोऽतिसुकुमारी या सीता जनकनन्दिनी ।  
प्रापादे रत्नपर्यङ्के कोमलास्तरणे शुभे ॥२९॥

रामेण सहिता शेते सा कथं कुशविष्टे ।  
सीता रामेण सहिता दुःखेन मम दोषतः ॥३०॥

धिद्मां जातोऽस्मि केकेश्यां पापराशिसमानतः ।  
मन्त्रिभित्तमिदं हेशं रामस्य परमात्मनः ॥३१॥

अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः ।  
राममेव सदान्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः ॥३२॥

अहं रामस्य दासाये तेषां दासस्य किञ्चरः ।  
यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान् संशयः ॥३३॥

आतर्जनासि यदि तत्कथयस्व ममाखिलम् ।  
यत्र तिष्ठति तत्राहं गच्छाम्यानेतुमञ्जसा ॥३४॥

गुहस्तं शुद्धहृदयं ज्ञात्वा सखेहमवीत् ।  
देव त्वमेव धन्योऽसि यस्य ते भक्तिरीद्युमि ॥३५॥

रामे राजीवपत्राक्षे सीतायां लक्ष्मणे तथा ।  
चित्रकूटाद्रिनिकटे मन्दाकिन्यविदूरतः ॥३६॥

मुनीनामाश्रमपदे रामस्तिष्ठति सानुजः ।  
जानक्या सहितो नन्दात्सुखमास्ते किल प्रभुः ॥३७॥

तत्र गच्छामहे शीघ्रं गङ्गां तर्तुमिहार्हसि ।  
इन्द्रुक्त्वा त्वरितं गत्वा नावः पञ्चशतानि ह ॥३८॥

समानयत्सम्मन्यस्य तत्तुं गङ्गां महानदीम् ।  
स्वयमेवानेनायैकां राजनावं गुहस्तदा ॥३९॥

आरोप्य भरतं तत्र शत्रुमं राममातरम् ।  
वसिष्ठं च तथान्यत्र केकेश्यां चान्ययोपितः ॥४०॥

तीर्त्वा गङ्गां यथौ शीघ्रं भरद्वाजाश्रमं प्रति ।

इस प्रकार विरहव्याकुल हुए वे गुहके साथ उस स्थानपर पहुँचे जहाँ रात्रिके समय श्रीरामने निवास किया था । वहाँ जाकर उन्होंने उस कुशा विछे हुए शयन-स्थानको देखा ॥ २७ ॥ वह सीताजीके आभूषणों से झड़े हुए सुवर्णकणोंसे छुशोभित था । उसे देखकर भरतजीका हृदय दुःखसे भर आया और वे इस प्रकार विलाप करने लगे—॥ २८ ॥ “अहो ! जो अति सुकुमारी जनकदुलारी सीता राजमहलमें कोमल विछौनेसे युक्त अति सुन्दर रत्नपर्यकपर श्रीरघुनाथजीके साथ शयन किया करती थीं वे ही मेरे दोपसे श्रीरामचन्द्रजीके साथ इस कुशाओंकी साथरीपर किस प्रकार क्लेशपूर्वक सोती होंगी ? ॥ २९-३० ॥ मुझे धिक्कार है ! जो मैं मूर्तिमान् पापपुज्जके समान कैकेयीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ । हाय ! मेरेलिये ही परमात्मा रामको यह हेश उठाना पड़ा ॥ ३१ ॥ अहा ! महात्मा लक्ष्मणका जन्म अत्यन्त सफल है जो भगवान् रामके वनमें रहते समय भी सदा प्रसन्नमनसे उन्होंका अनुसरण करते हैं ॥ ३२ ॥ जो लोग रामके दास हैं उनके दासोंका दास भी यदि मैं हो जाऊँ तो मेरा जन्म सफल हो जाय—इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ ॥ भाई ! यदि तुम्हें मालूम हो तो मुझे यह सब बताओ कि राम कहाँ है ? वे जहाँ कहाँ भी होंगे, मैं उन्हें तुरन्त लानेके लिये वहाँ जाऊँगा” ॥ ३४ ॥

गुहने उनका चित्त शुद्ध देखकर स्नेहपूर्वक कहा—“स्वामिन् ! आपकी कंमलनयन राम, सीता और लक्ष्मणमें ऐसी विशुद्ध भक्ति है, अतः आप ही धन्य हैं । छोटे भाई लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्र चित्रकूट-पर्वतके पास मन्दाकिनी नदीके समीप मुनियोंके आश्रममें रहते हैं । वहाँ जानकीके सहित भगवान् राम आनन्द और सुखपूर्वक विराजमान हैं ॥ ३५—३७ ॥ चलिये, शीघ्र ही हमलोग वहाँ चलें । पहले आपलोग यहाँ गंगाजी पार कर लें ।” ऐसा कहकर उसने तुरन्त ही सेनाके सहित भरतजीको गंगाजीसे पार करनेके लिये पाँच सौ नावें मँगवायीं और स्वयं एक राजनीका ले आया ॥ ३८-३९ ॥ उसमें भरत, शत्रुघ्न, रामकी माता कौसल्या और वसिष्ठजीको चढ़ाया तथा एक दूसरी नावमें कैकेयी आदि अन्य राजमहिलाओंको सवार किया ॥ ४० ॥

इस प्रकार शीघ्र ही गंगाजीको पार कर वे भरहाज

दूरे स्थाप्य महासैन्यं भरतः सानुजो यथौ ॥४१॥  
आश्रमे मुनिमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम् ।

दृष्टा ननाम भरतः साष्टाङ्गमतिभक्तिः ॥४२॥

ज्ञात्वा दाशरथिं प्रीत्या पूजयामास मौनिराद् ।  
प्रवच्छ कुशलं दृष्ट्वा जटावल्कलधारिणम् ॥४३॥  
राज्यं प्रशासतस्तेऽद्य किमेतद्वल्कलादिकम् ।  
आगतोऽमि किमर्थं त्वं विषिनं मुनिसेवितम् ॥४४॥

भरद्वाजवचः श्रुत्वा भरतः साश्रुलोचनः ।  
सर्वं जानासि भगवन् सर्वभूताशयस्थितः ॥४५॥  
तथापि पृच्छसे किञ्चित्तदनुग्रह एव मे ।  
कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्यविधातनम् ॥४६॥  
वनवासादिकं वापि नहि जानामि किञ्चन ।  
भवत्पादघुगं भेद्य प्रमाणं मुनिसत्तम ॥४७॥  
इत्युक्त्वा पादघुगलं मुनेः स्पृष्ट्वाऽर्त्तमानसः ।  
ज्ञातुमर्हसि मां देव शुद्धो वाऽशुद्ध एव वा ॥४८॥  
मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठुति राजनि ।  
किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः ॥४९॥  
अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ रामस्य चरणान्तिके ।  
पनित्वा राज्यसम्भारान् समर्प्यत्रैव राघवम् ॥५०॥

अभिषेक्ये वसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह ।  
नेष्येऽयोऽयां रमानाथं दासः सेवेऽनिनीचवत् ॥५१॥  
इत्युदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचो मुनिः ।  
आलिङ्ग्य मूर्धन्यविद्राय प्रशशंस सविस्मयः ॥५२॥  
वत्स ज्ञातं पुरैतद्विष्यं ज्ञानचक्षुषा ।  
मा शुचस्त्वं परो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणादपि ॥५३॥

मुनिके आश्रमकी ओर चले । वहाँ अपनी महान् सेनाको आश्रमसे दूर छोड़कर भाई शत्रुघ्नके सहित भरत-जी आश्रमपर गये ॥४१॥ और प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी मुनिवर भरद्वाजको आश्रममें त्रैठे देख उन्हें अति भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४२ ॥

मुनीश्वरको जब माल्य हुआ कि वे दशरथनन् भरत हैं तो उन्होंने प्रातिपूर्वक उनकी पूजा की और उन्हें जटा-वल्कलादि धारण किये देख कुशल-प्रश्नके अनन्तर पृथा—॥४३॥ “भाई भरत ! राज्य-शासन करते हुए तुमने आज यह वल्कलादि कैसे धारण कर लिये और इस मुनिजनसेवित तपोवनमें तुम किसलिये आये हो ?” ॥४४॥

भरद्वाजके ये वचन सुनकर भरतने नेत्रोंमें जल भरकर कहा—“भगवन् ! आप सब जानते हैं, क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी हैं ॥४५॥ फिर भी आप जो पूछ रहे हैं वह मेरे ऊपर आपकी कुछ कृपा ही है । कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विन्न उपस्थित करनेवाला और वनवासादि-विषयक जो कुछ कार्य किया है, हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके चरणोंकी साक्षी करके कहता हूँ मुझे उसके विषयमें कुछ भी पता नहीं था” ॥४६-४७॥ ऐसा कह उन्होंने अति आर्तचित्त हो मुनिके चरण-युगल पकड़कर कहा—“भगवन् ! आप स्वयं जान सकते हैं कि मैं दोपी हूँ या निर्दोष ॥४८॥ हे स्वामिन् ! महाराज रामके रहते हुए मुझे राज्यसे क्या प्रयोजन है ? हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तो सदासे ही श्रीराम-चन्द्रका दास हूँ ॥४९॥ अतः हे मुनिनाथ ! मैं श्री-रामचन्द्रजीके पास जाकर उनके चरण-कर्मलोंमें पड़कर यह सारी राजपाटकी सामग्री उन्हें यहाँ सौंप दूँगा ॥५०॥ तथा वसिष्ठ आदि पुरजन और जनपद-वासियोंके साथ मिलकर उनका राज्याभिषेक कर अयोध्या ले जाऊँगा और अति तुच्छ दासके समान उन लक्ष्मीपतिकी सेवा करूँगा” ॥५१॥

मुनीश्वरने भरतके ये उद्घार सुनकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और विस्मयपूर्वक शिर सूँघकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥५२॥ वे बोले—“वेदा ! अपने ज्ञान-क्षुओंसे मैंने पहले ही ये होनेवाली वातें जान ली थीं । तुम शोक न करो; तुम तो लक्ष्मणकी अपेक्षा भी रामके परम भक्त हो ॥५३॥ हे अनघ ! मैं सेनाके

आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि ससैन्यस्य तवानघ ।  
अद्य भुक्त्वा ससैन्यस्त्वं श्वो गन्ता रामसन्धिम् ॥

यथाऽङ्गापयति भवांस्तथेति भरतोऽब्रवीत् ।  
“रेद्वाजस्त्वपः स्पृष्टा मौनी होमगृहे स्थितः ॥५५॥

”दध्यौं कामदुघां कामवर्षिणीं कामदो मुनिः ।  
असृजत्कामधुक् सर्वं यथाकाममलौकिकम् ॥५६॥

भरतस्य ससैन्यस्य यथेष्टुं च मनोरथम् ।  
यथा वर्ष सकलं वृत्सांस्ते सर्वसैनिकाः ॥५७॥

वसिष्ठं पूजयित्वाग्रे शास्त्रद्वेष्टुं कर्मणा ।  
पश्चात्प्रसैन्यं भरतं तर्पयामास योगिराद् ॥५८॥

उपित्वा दिनमेकं तु आश्रमे स्वर्गसन्धिभे ।  
अभिवाद्य पुनः प्रातर्भरद्वाजं सहानुजः ।  
भरतस्तु कृतानुजः प्रययौ रामसन्धिम् ॥५९॥

चित्रकूटमनुप्राप्य दूरे संस्थाप्य सैनिकान् ।  
रामसंदर्शनाकाङ्क्षी प्रययौ भरतः स्वयम् ॥६०॥

शत्रुघ्नेन सुमन्त्रेण शुहेन च परन्तपः ।  
तपस्त्रिमण्डलं सर्वं विचिन्वानो न्यवर्तत ॥६१॥

अद्विद्वा रामभवनमपृच्छुद्दिष्मण्डलम् ।  
कुत्रास्ते सीतया साध्यं लक्ष्मणेन रघूतमः ॥६२॥

ऊचुर्ये गिरेः पश्चाद्वज्ञाया उत्तरे तटे ।  
विविक्तं रामसदनं रम्यं काननमण्डितम् ॥६३॥

सफलैराग्रपनसैः कदलीखण्डसंवृत्तम् ।  
चम्पकैः कोविदारेश्च पुन्नार्गेविपुलैस्तथा ॥६४॥

एवं दर्शितमालोक्य मुनिभिर्भरतोऽग्रतः ।  
हर्षदध्यौं रघुश्रेष्ठभवनं मन्त्रिणा सह ॥६५॥

सहित तुम्हारा आतिथ्य-सल्कार करना चाहता हूँ ।  
आज सेनासहित तुम यहाँ भोजन करो, कल रामके  
पास जाना” ॥५४॥

भरतजीने कहा—“आपकी जैसी आज्ञा होगी, वही  
होगा ।” तब मुनिवर भरद्वाज आचमन कर मौन  
होकर यज्ञशालामें बैठे ॥५५॥ वहाँ बैठकर उन कामप्रद  
मुनीश्वरने समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु-  
का स्मरण किया । तब उस कामधेनुने इच्छानुसार  
सम्पूर्ण अलौकिक भोग प्रस्तुत कर दिये ॥५६॥ उसने  
सेनाके सहित भरतजीके सम्पूर्ण मनोरथोंको इस प्रकार  
पूर्ण किया जिससे वे समस्त सैनिक सन्तुष्ट  
हो गये ॥५७॥ फिर उन योगिराजने शास्त्रानुकूल  
प्रथम वसिष्ठजीकी पूजा की और तदनन्तर सेनाके  
सहित भरतजीको तृप्त किया ॥५८॥

इस प्रकार उस स्वर्ग-सदृश आश्रममें एक दिन रहकर<sup>१</sup>  
प्रातःकाल मुनिवरको प्रणाम कर उनकी आज्ञा ले  
माईके सहित भरतजी रामचन्द्रजीके पास चले ॥५९॥  
चित्रकूटके निकट पहुँचनेपर उन्होंने सैनिकोंको दूर  
खड़ा कर दिया और स्वयं राम-दर्शनकी लालसासे  
आगे बढ़े ॥६०॥ परंतप भरतजी शत्रुघ्न, सुमन्त्र और  
गुहके साथ समस्त तपस्त्रियोंके आश्रमोंमें खोजते-खोजते  
फिर आये ॥६१॥ किन्तु उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी कुटी  
कहीं न मिली । तब उन्होंने शृष्टि-मण्डलीसे पृथ्वी—  
“सीता और लक्ष्मणके सहित श्रीरघुनाथजी कहाँ  
रहते हैं ?” ॥६२॥ उन्होंने कहा—“सामनेवाले  
पर्वतके उस ओर श्रीमन्दाकिनीके उत्तरीय तटपर वना-  
वलीसे सुशोभित रामकी परम रमणीक एकान्त कुटी  
है ॥६३॥ वह फलयुक्त आम्रवृक्ष, पनस और कटली-  
खण्ड ( केलेकी क्यारियों ) से घिरी हुई है । तथा  
उसके चारों ओर बहुत-से चम्पक, कोविदार और  
पुन्नाग आदिके भी वृक्ष सुशोभित हैं” ॥६४॥ मुनियों-  
के इस प्रकार वतलानेपर भरतजी प्रसन्नतापूर्वक मन्त्रियों-  
को साथ ले सबसे आगे रघुनाथजीके निवास-स्थान-  
को चले ॥६५॥ आगे बढ़नेपर उन्होंने दूरहीसे रामका

ददर्श दूरादतिभासुरं शुभं  
रामस्य गेहं मुनिवृन्दसेवितम् ।  
वृक्षाग्रसंलग्नसुवल्कलाजिनं  
रामाभिरामं भरतः सहानुजाः ॥६६॥

मुनिजनसेवित अति सुन्दर और भासुमान सुन्दर भवन देखा । जिसमें वृक्षकी शाखाएँ वन्यकल्प वस्त्र और मृगचर्म टैंगे हुए थे और श्रीरामचन्द्रजीके वास करनेके कारण जो परम रमणीक था ॥ ६६ ॥

इति श्रीमद्ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे  
अयोध्याकाण्ड१४४ः सर्गः ॥ ८ ॥

### नवम सर्ग

भगवान् राम और भरतका मिलन, भरतजीका अयोध्यापुरीको लौटना और श्रीरामचन्द्रजीका अनिमुनिके आश्रमपर जाना ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ गत्वाऽश्रमपदसमीपं भरतो भुदा ।  
सीतारामपदैर्युक्तं पवित्रमतिशोभनम् ॥ १ ॥  
स तत्र वज्राङ्कशवारिजाञ्जित-  
वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः ।  
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गला-  
न्यचेष्ट्यत्पादरजःसु सानुजाः ॥ २ ॥  
अहो सुधन्योऽहमसूनि राम-  
पादारविन्दाङ्कितभूतलानि ।  
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं  
ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ॥ ३ ॥  
इत्यङ्कुतप्रेमरसाप्लुताशयो  
विगाढचेता रघुनाथभावने ।  
आनन्दजाशुस्तपितस्तनान्तरः  
शनैरवापाश्रमसञ्जिधिं हरेः ॥ ४ ॥  
स तत्र दृष्टा रघुनाथमास्थितं  
दूर्दिलश्यामलमायतेक्षणम् ।  
जटाकिरीटं नववल्कलाम्बरं  
प्रसन्नवक्त्रं तरुणारुणद्युतिम् ॥ ५ ॥  
विलोक्यन्तं जनकात्मजां शुभां  
सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम् ।

श्रीमहादेवजी घोले—हे पार्वति ! तदनन्तर श्रीभरतजी अति मग्न मनसे सांता और रामके चरण-चिह्नोंसे सुशोभित आश्रमके समीप अति सुन्दर और पवित्र स्थलमें पहुँचे ॥ १ ॥ वहाँ उन्होंने सब और भगवान् रामचन्द्रके वज्र, अंकुश, कमल और वज्रा आदिके चिह्नोंसे सुशोभित तथा पूर्णिमाके लिये अति मंगलमय चरण-चिह्न देखे । उन्हें देखकर भाई शत्रुघ्नके सहित वे उस चरण-रजमें लोटने लगे ॥ २ ॥ और मन-ही-मन कहने लगे—“अहो ! मैं परम धन्य हूँ, जो आज श्रीरामचन्द्रजीके उन चरणारविन्दोंके चिह्नोंसे सुशोभित भूमिको देख रहा हूँ जिनकी रजको ब्रह्मा आदि देवगण और सम्पूर्ण श्रुतियाँ भी सदा खोजती रहती हैं” ॥ ३ ॥

इस प्रकार जिनका हृदय अङ्कुत प्रेमरससे भरा हुआ है, मन रघुनाथजीका भावनामें हृदा हुआ है तथा वक्षःस्थल आनन्दाश्रुओंसे भीगा हुआ है वे भरतजी, धीरे-धीरे श्रीहरिके आश्रमके निकट पहुँचे ॥ ४ ॥ वहाँ उन्होंने दूर्वा-दलके समान श्याम-शरीर और विशाल-नयन श्रीरघुनाथजीको बैठे हुए देखा, जो जटाओं-का सुकुट और नवीन वल्कल-वल्ल धारण किये थे तथा ग्रसन्नवदन और नवीन सूर्यके समान प्रभायुक्त थे ॥ ५ ॥ एवं जो शुभलक्षण श्रीजनक-नन्दिनीकी ओर निहार रहे थे तथा श्रीलक्ष्मणजी जिनके चरणकम्लोंकी सेवा कर रहे थे । उन्हें देखते ही श्रीभरतजीने दौड़कर

तदाभिद्राव रघूतमं शुचा  
 हर्षाच्च तत्पादशुगं त्वराग्रहीत् ॥६॥  
 रामस्तमाकृष्ण सुदीर्घवाहु-  
 देभ्यां परिष्वज्य सिपिञ्च नेत्रजैः ।  
 जलैरथाङ्गोपरि संन्येवेशयत्  
 पुनः पुनः संपरिषख्जे विशुः ॥७॥  
 अथ ता मातरः सर्वाः समाजग्मुस्तवराऽन्विताः ।  
 राघवं द्रष्टुकामास्तास्वपार्ता गौर्यथा जलम् ॥८॥  
 रामः स्वमातरं वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयोः ।  
 ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिङ्ग्यातीव दुःखिता ॥९॥  
 इतरात्र तथा नत्वा जननी रघुनन्दनः ।  
 ततः समागतं दृष्ट्वा वसिष्ठं मुनिपुज्ज्वम् ॥१०॥  
 साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुनः ।  
 यथार्हमुपवेश्याह सर्वनिव रघूद्वहः ॥११॥  
 पिता मे कुशली किं वा मां किमाहातिदुःखितः ।  
 वसिष्ठस्तमुवाचेदं पिता ते रघुनन्दन ॥१२॥  
 त्वद्विषोगाभितसात्मा त्वमेव परिचिन्तयन् ।  
 रामरामेति सीतेति लक्ष्मणेति ममार ह ॥१३॥  
 श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभं गुरोर्बचनमञ्जसा ।  
 हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् रामः सलक्ष्मणः ॥१४॥  
 ततोऽनुरुद्धुः सर्वा मातरश्च तथापरे ।  
 हा तात मां परित्यज्य क्षगतोऽसि घृणाकरा ॥१५॥  
 अनाश्रोऽस्मि महावाहो मां को वा लालयेदितः ।  
 सीता च लक्ष्मणश्चैव विलेपतुरतो भृशम् ॥१६॥  
 वसिष्ठः शान्तवच्चनैः शमयामास तां शुचम् ।  
 ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्वात्वा ते वीतकलमणाः ॥१७॥  
 राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाञ्छिणे ।  
 पिण्डान्विर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः ॥१८॥

हर्ष और शोकयुक्त होकर तुरन्त उनके चरण-युगल पकड़ लिये ॥ ६ ॥ बड़ी भुजाओंवाले श्रीरामचन्द्रजीने अपनी दोनों वाहुओंसे उन्हें उठाकर आलिङ्गन किया और उन्हें गोदमें बैठाकर अपने आँसुओंसे संचते हुए बारम्बार हृदय लगाया ॥ ७ ॥ फिर प्यासी गैरै जिस प्रकार जलकी ओर दौड़ती हैं उसी प्रकार कौसल्या आदि समस्त माताएँ रघुनाथजीको देखनेके लिये बड़ी शीघ्रतासे चलीं ॥ ८ ॥ रामजीने अपनी माताको देखते ही शीघ्रतासे उठकर उनका चरण-वन्दन किया और उन्होंने अत्यन्त दुःखसे नेत्रोंमें जल भरकर पुत्रको हृदयसे लगाया ॥ ९ ॥ फिर श्रीरघुनाथजीने उसी प्रकार अन्य माताओंको भी प्रणाम किया । तदनन्तर, सुनिश्चेष्ट वसिष्ठजीको आते देख ॥ १० ॥ उन्हें साष्टांग प्रणामकर बारम्बार कहने लगे ‘मैं धन्य हूँ, मैं धन्य हूँ’ ।

फिर श्रीरघुनाथजीने सबको यथायोग्य बैठाकर पूछा—॥ ११ ॥ “कहिये, हमारे पिताजी कुशलसे हैं ? उन्होंने मेरे वियोगसे अत्यन्त दुःखातुर होकर मेरेलिये क्या आज्ञा दी है ?” तब वसिष्ठजीने कहा—“हे रघुनन्दन ! तुम्हारे पिताने तुम्हारे वियोगसे अति सन्तास होकर ‘हे राम ! हे राम ! हे सीते ! हे लक्ष्मण !’ इस प्रकार तुम्हारा ही चिन्तन करते हुए अपने प्राण छोड़ दिये” ॥ १२-१३ ॥

कानोंमें शूलके समान लगानेवाले गुरुके इन वचनोंको सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण ‘हाय ! हम मारे गये’ इस प्रकार रोते हुए सहसा गिर पड़े ॥ १४ ॥ तब समस्त माताएँ और अन्यान्य सभी उपस्थित लोग रोने लगे । श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार कहने लगे—“हा तात ! हे दयामय ! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये ? ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! मैं अनाथ हो गया; अब मुझे कौन लाड़ लड़ायेगा ।” फिर इसी प्रकार सीता और लक्ष्मण भी बहुत विलाप करने लगे ॥ १६ ॥

तब वसिष्ठजीने शान्तिमय वाक्योंसे वह शोक शान्त किया और फिर सब लोग मन्दाकिनीपर जाकर स्नान करके पवित्र हुए ॥ १७ ॥ वहाँ सबने जलाकांक्षी महाराज दशरथको जलाञ्छलि दी तथा लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीने पिण्डदान किया ॥ १८ ॥ ‘जो